

नोंदणी क्रं. एफ.१६०९४(मुंबई)





महाराष्ट्र शासन
मराठी भाषा विभाग
राज्य मराठी विकास संस्था
एल्फिन्स्टन तांत्रिक विद्यालय, ३, महापालिका मार्ग,
धोबीतलाव, मुंबई - ४००००१ दूरध्वनी : (०२२) २२६३१३२५ / २२६५३९६६
संकेतस्थळ https://rmvs.marathi.gov.in इ-पत्ता rmvs_mumbai@yahoo.com

निवेदन

महाराष्ट्र राज्याचे सांस्कृतिक धोरण २०१० अंतर्गत मराठी भाषेतील प्रतिमुद्राधिकाराची (कॉपीराइटची) मुदत संपलेले दुर्मिळ ग्रंथ महाजालावर उपलब्ध करून द्यावे असे म्हटले आहे. त्यानुसार मराठी भाषा विभागाच्या आदेशाप्रमाणे (शासननिर्णय क्र. रासांधो १०१२/ प्र. क./२०१२/भाषा-३ दि. २८ मार्च २०१३) राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे असे ग्रंथ आणि नियतकालिके महाजालावर उपलब्ध करून देण्याचा प्रकल्प राबवण्यात येत आहे. त्याच बरोबर प्रतिमुद्राधिकाराच्या कक्षेत येणारी काही साधनेही प्रतिमुद्राधिकारधारकांची उचित अनुमती प्राप्त झाल्यास संस्थेद्वारे संगणकीकृत करून अभ्यासकांसाठी उपलब्ध करून देण्यात येत असतात.

चित्रकार दीनानाथ दलाल ह्यांनी सन १९४७ ते १९७१ दरम्यान प्रसिद्ध केलेल्या दीपावली ह्या नियतकालिकाच्या अंकांचे संगणकीय स्वरूपात जतन करण्याबाबतचा प्रस्ताव चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे राज्य मराठी विकास संस्थेस प्राप्त झाला होता. सदर प्रस्तावानुसार दुर्मिळ मराठी ग्रंथांचे संगणकीकरण ह्या प्रकल्पांतर्गत दीपावली नियतकालिकांचे अंक संगणकीकरण करून ते सार्वजनिकरीत्या आणि विनामूल्य उपलब्ध करून देण्यासंदर्भात राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे सहमती दर्शविण्यात आली.

चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई ह्या संस्थेद्वारे सदर अंक संगणकीकरणासाठी उपलब्ध करून देण्यात आले. सदर संस्थेच्या सहकार्यामुळेच आपल्याला ही सामग्री संगणकीय स्वरूपात उपलब्ध होत आहे.

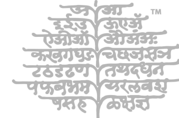
या अंकांच्या पीडीएफ प्रती आपण विनामूल्य उतरवून घेऊ शकता. असे करताना खालील सूचना लक्षात घेऊन त्यांचे पालन करावे.

१. सदर ग्रंथांच्या पीडीएफ प्रती या वैयक्तिक वापरासाठी विनामूल्य उतरवून घेता येतील तसेच इतरांनाही विनामूल्य देता येतील. पण कोणत्याही कारणासाठी त्याचा व्यावसायिक वापर करता येणार नाही.
२. सदर ग्रंथांचे दुवे इतरांना देताना त्यासाठी कोणतीही रक्कम आकारता येणार नाही.
३. पीडीएफ प्रतींवर असलेली राज्य मराठी विकास संस्था, मुंबई व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांची मुद्रा आपणास काढता येणार नाही.
४. आपल्या अभ्यासासाठी, संशोधनासाठी या सामग्रीचा उपयोग करताना आपण योग्य तो श्रेयनिर्देश केला पाहिजे.

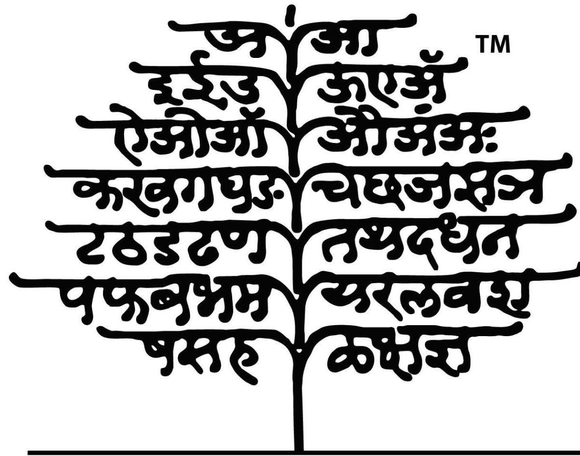
वरील अटींचा भंग झालेला आढळल्यास कायदेशीर कारवाई करण्यात येईल.

स्पष्टीकरण : सदर सामग्री ही केवळ ऐतिहासिक दस्तऐवज म्हणून उपलब्ध करण्यात आली असून या सामग्रीतून व्यक्त होणारी मते, विचारसरणी इ. त्या त्या लेखक, संपादक इ. कर्त्यांची आहे. त्यांपैकी कोणतेही मत, विचारसरणी इ. यांचा पुरस्कार महाराष्ट्र शासन, मराठी भाषा विभाग, राज्य मराठी विकास संस्था व चित्रकार दीनानाथ दलाल मेमोरिअल समिती, मुंबई यांपैकी कुणीही करत नसून त्या त्या मताचे वा विचारसरणीचे दायित्व उपरोक्त विभागांवर/ संस्थांवर असणार नाही.

अनुक्रमणिका







मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास

राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत

अनुक्रमणिका



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत



भारतका श्रेष्ठ हिन्दी वार्षिक १९६२ : मूल्य ३ रु.

दीपावळी

दलाल आर्ट स्टुडिओ प्रका

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका



राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक

वर्ष दसवाँ
१९६२

दलाल आर्ट स्टूडिओ प्रकाशन

श्रेयनामावलि

अनंत रंगी कलाकृति :

▲ चैत्रसंगीत ▲ श्रावणगीत ▲ गीतगोविंद ▲ विरहगीत ▲ भावगीत ▲ गीतरामायण
▲ रंगसंगीत ▲ सुनीत

विशेष आकर्षण :

▲ कृशन चंदर का खास दीपावली के लिए लिखा हुआ लघु-उपन्यास : दिल और धरती
▲ भारतीय लोकनृत्य : चित्रमाला

कथा :

▲ विष्णु प्रभाकर ▲ पु. ल. देशपाण्डे ▲ महेंद्र कुलश्रेष्ठ ▲ हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ▲ जयवन्त दळवी
▲ सुखबीर ▲ वामन चोरघडे ▲ रा. रं. बोराडे ▲ दत्ता कदम ▲ प्रेम कपूर

कविता :

▲ बच्चन ▲ नीरज ▲ अनन्तकुमार पाषाण ▲ ब्रजकिशोर नारायण ▲ शैवाल सत्यार्थी
▲ चंद्रकांत सोनवलकर ▲ श्यामसुंदर घोष ▲ अनिलकुमार

ललित लेख :

▲ वेढब बनारसी ▲ अनन्तकुमार पाषाण ▲ वसन्त सबनीस ▲ मनोहर चंद्रावरकर ▲ जयसिंह राठौर

****

संपादक : दीनानाथ दलाल
कार्य. संपादक : सुधाकर तोरणे

अनुक्रमणिका

हृद्गत !



दीपावली राष्ट्रीय हिंदी वार्षिक का यह दसवाँ संकलन हमारे रसज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

वर्ष में केवल एक बार हम अपने पाठकों के बीच उपस्थित होते हैं और यही बात ध्यान में रखते हुए प्रतिवर्ष कुछ 'नवीन' उनके लिये प्रस्तुत करने की प्रमाणिक चेष्टा हम किया करते हैं। इस वर्ष भी हमारा वही प्रयत्न रहा है और हमें विश्वास है कि पाठक इस संकलन का हर्ष से स्वागत करेंगे।

'दीपावली' को हिंदी तथा मराठी के श्रेष्ठ साहित्यिकों तथा उदयोन्मुख साहित्यिकों की उत्कृष्ट रचनाओं से सुशोभित करने का भरसक प्रयत्न हमारा इस वर्ष भी रहा है।

इस वर्ष न्यू इरा प्रिंटिंग प्रेस के श्री. फली कांगा ने इसमें संकलित चित्रमाला उत्कृष्ट पद्धति से छपवायी है। मुद्रण की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर थी। न्यू इरा प्रिंटिंग प्रेस के कामगार साथियों ने मुद्रण का काम बड़ी ही लगन तथा अपनापे से किया है। हम उन सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

मेसर्स टॉम ॲण्ड बे के साथी गणेशराव ताम्बे तथा साथी दाभोलकर हमें प्रतिवर्ष सहयोग देते आये हैं। हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

बॉम्बे प्रोसेस के संचालक साथी मोहनराव कामत तथा शंकर ॲण्ड कंपनी के साथी विन्सुपंत कडव इन्होंने इस अंक की शोभा को बढ़ाया है।

हम अपने दोस्त कृशनचंदर के प्रति विशेष कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने हमारे कहने पर खास दीपावली के लिये अपना बिलकुल नया लघु-उपन्यास लिख कर समय पर दिया।

आज अधिक लोकप्रिय बनने वाले 'भारतीय लोकनृत्यों' की एक नयन-रम्य चित्र-माला हम इस अंक में प्रस्तुत कर रहे हैं। यह निश्चित रूपसे पाठकों को आल्हाद तथा विशेष ज्ञान प्रदान करेगी।

सम्पादन-कार्य में साथी मनोहर चंदावरकर का सहयोग शब्दों में अंकित करना उन्हें नापसंद होगा। साथी प्रतापसिंह गिल, बाबा परुलेकर, कु. सुरेखा तोर्से, श्रीकृष्ण ठाकूर तथा ॲन्टोनी डिसोझा की सहायता भी बहुमोल है। इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना जरूरी है।

यह दीपावली तथा नूतन वर्ष हमारे रसिकों, पाठकों, लेखकों, विज्ञापन-दाताओं तथा हितैषियों को सुखसमृद्धि का हो।

—सम्पादक

यह वार्षिक, मालिक, संपादक, मुद्रक तथा प्रकाशक श्री. दीनानाथ दलाल ने न्यू इरा प्रिंटिंग प्रेस, ८३, डॉ. ॲनी बेझंट रोड, बम्बई १८, में छपाकर दलाल आर्ट स्टुडियो, ४०/४२, केनेडी ब्रिज, बम्बई ४ में प्रकाशित किया।

विष्णु प्रभाकर





इलाज़ पैसे से नहीं होता, देखो तो वर्षा ऋतु में आकाश धरती को प्रेम का कैसा अजस्त्र दान देता है। पर यह गुलाव...... आह ! अपना-अपना भाग्य है......

वर्षा है कि हुए जा रही है। कहनेवाले कहते हैं कि उनकी याद में कभी निरन्तर दस दिन तक ऐसी वर्षा नहीं हुई। झालानी खुश है कि वर्षा हुए जा रही है। हरियाली उसे अच्छी लगती है। सोंधा-सोंधा वातावरण उसे उछाह से भर देता है।

कुर्सी मंगवाकर वह लान में जा बैठता है। उसके सामने फूलों के अनेक गमले हैं। क्यारियों में भी नाना-रूप गंधवाले अनेकानेक पुष्प मन के रोमांस को सहला रहे हैं। लेकिन......

सहसा उसकी दृष्टि ठिठक जाती है...इस कम्बख्त गुलाब को क्या हुआ है ? आकाश मुक्त होकर धरती की झोली प्रेम से भर दे रहा है। परन्तु यही प्रेम गुलाब का श्राप बन रहा है। कैसा बदसूरत है यह फूल। न रंग, न रूप; न गंध, निरा अरोमांटिक है। मुरझाया, मरा-सा, प्रेमिका के विछोह में श्रीहीन प्रेमी जैसा.......

याद आ जाता है कि वर्षा में गुलाब नहीं पनपता। जैसे......

"सुनो"। —पीछे श्रीमती झालानी हैं।

" सुनाओ । "

" विशु की अवस्था अच्छी नहीं है । "

" पुरानी खबर है । "

रमा चीख उठी, " तो दो क्षण बाद नई खबर सुन लेना कि मर गया । "

मुकुल ने उधर बिना देखे उत्तर दिया—" वह भी स्वभाविक है। एक दिन सभी मरते हैं । "

" लेकिन यह मरना नहीं है। "

" तो बाबा। इसे हत्या कह लो। आत्महत्या कह लो। कुछ भी कह लो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परिणाम सभी का एक है। अच्छा, अच्छा, तुम नाराज हो। मैं भी नाराज हूं। तुम कहोगी—दुनिया में इतना पैसा है फिर भी विशु अच्छे इलाज के अभाव में मर रहा है। न, न, इलाज पैसे से नहीं होता, देखो तो वर्षा ऋतु में आकाश धरती को प्रेम का कैसा अजस्रदान देता है। पर यह गुलाब...आह अपना, अपना भाग्य है। "

रमा चिल्ला पड़ी, " तुमसे कोई बातें बनानी सीखे। "

" आहा। नारी के हृदय पर अधिकार करने का यही एकमात्र अस्त्र है। न रूप, न शक्ति, न सम्पदा, केवल यही ' वक्तृत्व कला ' और मैं इसमें पटु हूं। बोलो तो, कह दो कि तुम मेरे धन पर रीझी हो। न, न, धन पाप है। प्रेम का शत्रु है। "

रमा के लिए यह सब कुछ नया नहीं है और असत्य भी नहीं है। और आज के रोमांटिक-वातावरण को वह अनदेखा कर रही हो, सो भी नहीं है। पर जीजी का एकमात्र सहारा १२ वर्ष का उसका विशु मरनासन्न हो, तब यदि वह यह तर्क कर बैठे तो उसमें उसका कोई अपराध नहीं है। एकाएक बोल उठी–" धन पाप है तो फेंक क्यों नहीं देते। "

" यही तो तुम नहीं जानती। धन की गति इकतरफा है। वह खींचा जा सकता है, फेंका नहीं जा सकता। भले ही पानी धरती से जाए, परन्तु वर्षा का रुख कभी आकाश की ओर नहीं होता। कभी होगा भी नहीं। "

" खाक। " रमा क्रुद्ध हो उठी, " तर्क करते-करते आप अपने को भूल जाते हैं और भूल जाते हैं कि आप क्या बक रहे हैं। "

" आत्म-विस्मृति की इस चरम-सीमा को ही प्रेम कहते हैं रमा, मुक्ति भी यही है। "

रमा आगे न सह सकी। पैर पटकती हुई वहां से चली गई। देखती तो पाती कि तभी मुकुल झालानी ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ी। क्षण-भर स्तब्धता का अभिनय करते बैठे रहे फिर फुसफुसा उठे–खूब वर्षा हो रही है और गुलाब उसी तरह श्रीहीन है—

अमां छोड़ो भी गुलाब को। आज नहीं तो कल इसमें रक्तवर्णी मांसल-फूल खिलेंगे और भाभी का विशु भी रोगमुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो उठेगा।

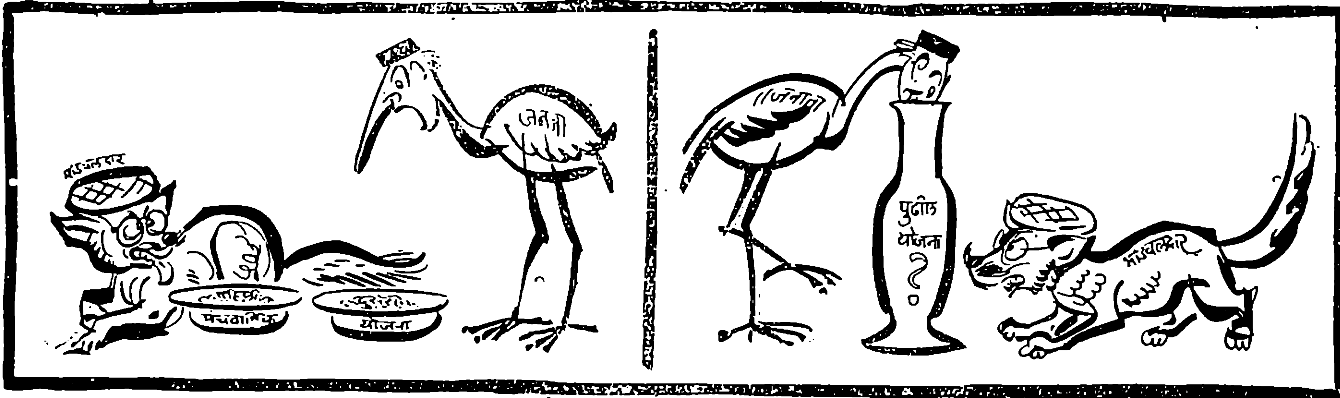
शायद।...

भाभी, विशु और गुलाब का फूल।...

" हूं। " मुकुल ने शरीर को ढीला छोड़ दिया। और दूरातिदूर भूत में भटक गया। जहां न वर्षा थी, न हरित वसना, यौवन मदमाती वसुधा थी, न गुलाब का मुरझाया निस्तेज पुष्प था। थे उसके दूरदराज के भाई मुकुन्द झालानी, भाभी शीला झालानी और उनके दो बच्चे टुनू और विशु।...

मुकुंद, एक उभरता-उठता कलाकार पर निरा अव्यवहारिक। न

नई इसापनीति



एक धूर्त शृगाल ने एक सीधे-सादे बगुले को भोजन का आमंत्रण दिया। नियत समय पर उपस्थित अतिथी के सम्मुख एक थाली में मधुर खीर रखकर दूसरी थाली में खीर अपने लिए ले ली। बगुला भूखा था तथापि वह भोजन का मज़ा लूट नहीं सका। परंतु शृगाल ने बड़े मज़े के साथ दोनों थालियों की खीर खा डाली। कुछ दिनों के बाद बगुले ने शृगाल को भोजन के लिए आमंत्रित किया। मधुर आम्ररस एक सुराही में रखकर भोजन की सिद्धता की। शृगाल सुराही के मधुर रस को पी नहीं पाया। रसपान करते समय गिरे हुए रस की बूंदों के स्वाद को ही शृगाल जान सका। भूख से व्याकुल बना हुआ शृगाल दुम दबाकर चुपचाप वहाँ से लौट गया।

उसमें कलाकारों की-सी सहज-सुलभ ईर्ष्या, न उनका सा प्रकृत-दम्भ, प्रगति उस पर रीझती तो कैसे रीझती। मुकुल ने बहुतेरा ईशारा किया पर अर्जुन की दृष्टि की तरह उसकी नजर कला पर ही थी। हर तर्क का उसके पास एक ही उत्तर था-मैं केवल स्रष्टा हूं अर्थात् ब्रह्मा। न विष्णु, न शिव।

बीसवीं सदी में काल्पनिक देवताओं की बातें करता है, तभी तो पनप न सका...।

मुकुल एकाएक उठकर खड़ा हो जाता है। सामने मखमल-सा लान है। हरे-भरे पौधे हैं। श्वेत, पीत, रतनारे फूल हैं। मोती और सूरजमुखी की असंख्य कलियां यौवन की अंगड़ाई लेने को जैसे आतुर-उतावली हो उठी हैं। और मुग्धा प्रकृति मानों अपने रूप को निहार-निहार आप ही निहाल हो रही है। मुकुल हंस पड़ता है, क्या किया मुकुन्द ने। घुल-घुलकर प्राण दे दिए। भाभी को निराधार छोड़ गया और यह भाभी भी वैसी ही पगली। टुनु को खो दिया। पर जिन्दगी से समझौता नहीं किया। भला बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में नारी कभी विधवा हो सकती है।

एकाएक आहट पाकर चिहुंक उटता है। मिस चंचल चोपड़ा सामने आकर गुडमार्निंग कहती है। कहती है–"बौस! आज......"

वाक्य पूरा करता है झालानी, "......वर्षा का सुहावना दिन है। छुट्टी चाहिए। मंजूर है। सबको कह दो।......"

"थैंक यू बौस–" चंचल खिल उठती है, "कोई अर्जेंएट वर्क, बौस?"

"अर्जेंएट तो आज छुट्टी है, शेष सब गौण।"-वह हंस पड़ता है।

चंचल हंस पड़ती है। एक क्षण लोलुप नेत्रों से झालानी को देखती है फिर भाग जाती है।

"आह! अब प्राण बचे।" कहकर झालानी फिर कुर्सी में गड़ जाता है। "काश कि संसार में छुट्टी ही छुट्टी होती।" उसने जोर से कहा।–उत्तर दिया रमा ने, "तब यह सम्पदा, यह वैभव, ये सब कहां से आते।"

"अब हर बात क्या एक साथ सोचनी चाहिए। फिर देखा जाएगा। चलो–चलो अब तो पिकनिक पर चलें।"

"मन तो करता है पर...।"

"हां, हां, पर-वर कुछ नहीं चलो।"

"भाभी आज स्कूल जाएंगी और विशु की हालत ठीक नहीं है।"

"वे भी छुट्टी ले लेंगी। यह दूसरी बात है कि हमारी और उनकी छुट्टी में अंतर है। पर अर्थ और परिणाम एक ही है। ना, ना, बहस नहीं। ऐसे सुन्दर मौसम को बहस करके मलिन न करो। चलो, चलो।"

मुकुल मानो रमा को घसीटता-सा अन्दर ले जाता है। फिर पिकनिक की तैयारी की वह धूम मचती है कि सब दर्शन, यहां तक



कलश और नींव का पत्थर

— बच्चन

अभी कल ही
पंचमहले पर
कलश था,
और
चौमहले,
तिमहले,
दुमहले से
खिसकता अब
हो गया हूं नींव का पत्थर!

काल ने धोखा दिया,
या फिर दिशा ने,
या कि दोनों में विपर्ययः
एक ने ऊपर चढ़ाया,
दूसरे ने खींच
नीचे को गिराया:
अवस्था तो बढ़ी,
लेकिन अवस्थित हूं
कहां घटकर।

आज के साथी सभी मेरे
कलश थे,
आज के सब कलश
कल साथी बनेंगे।
हम इमारत,
जो कि ऊपर से
उठा करती बराबर
और नीचे को
धँसी जाती निरंतर!

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

कि शीला भाभी और उसका विशु ये सब उसके सर्वग्रासी पेट में समा जाते हैं।

लौटते हुए बहुत देर हो जाती है। प्रकृति उसी तरह योगी के उत्साह से भरी है। इसलिए समय की दासता सबको अखरी। घर पहुंचते-पहुंचते दस बज चुकते हैं। रमा एकाएक कहती है-"जरा विशु को देख आऊं।" और उत्तर की चिन्ता किए बिना ड्राइवर से कहती है—"शीला भाभी के घर चलो।"

मुकुल भी प्रतिवाद और स्वीकृति का झमेला नहीं करता। भीतर जाकर पलंग पर जैसे बिखर जाता है। और सोचने लगता है। कमरे का हरा-हरा प्रकाश उसे अच्छा लगता है। उसकी दृष्टि दीवार पर के नारी के चित्र पर टिक जाती है। सहसा देखने पर वह चित्र चन्द टेढ़ी-मेढ़ी लाइनों और रंगों के कुछ बेतरतीब धब्बों का समूह है। नारी के शरीर में भी त्वचा के नीचे और क्या है—कुछ टेढ़ी-मेढ़ी हड्डियां और मांस मज्जा के लोथड़े,...

सहसा कहीं आहट हुई।

लेटे लेटे वह बोला—"रमा।"

जिस आवाज ने उत्तर दिया वह बड़ी कर्कश थी। एक बार ही कांप कर उठ बैठा। देखता क्या है पिस्तौल लिए ४-५ नकाबधारी व्यक्ति सामने खड़े हैं।

क्षण-भर में सहस्रों तूफान मस्तिष्क से गुजर जाते हैं। फिर अपने को चौंकाता हुआ वह बोल उठता है—"आइए आइए। न, न, इसकी क्या जरूरत है।"

"चुप रहो। चाबी कहां है?...खबरदार उधर नहीं।...हाथ ऊपर।"

"चाबी जेब में है।"

एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर चाबी निकाल ली।

मुकुल ने कहा—"जेब में पर्स भी है। काफी रुपए हैं।"

वह भी निकाल लिया।

"और।"

"चुप रहो......इसका मुँह बांध दो।"

दो व्यक्ति उसका मुँह बांधते हैं। हाथ-पैर भी बांध देते हैं। बंधते-बंधते वह कहता है, "सुनो तो। सब कुछ ले लेना। लेकिन खाली डिब्बे छोड़ जाना। हां, हां, मैं कहता जा हूं डिब्बे सब छोड़ जाना। याद करने का कोई आधार तो चाहिए। भगवान के लिए भी मूर्ति की......।"

आगे जो कुछ मुंह से निकलता है वह सब अनसुना रह जाता है। बहुत देर तक वह मन ही मन बोलता है। उन नकाबपोशों को आते-जाते देखता है: कितने भयानक, कितने कायर।...

सहसा जैसे वह तेजी से बोल उठता है-"जहां धन है वहीं तो। हां, हां वहीं तो—"

फिर वह आंखें मींच लेता है।

फिर एक चीत्कार सुनकर आंखें खोलता है। रमा जैसे उसके ऊपर आकर गिर पड़ती है। पागलों की तरह उसके बन्धन खोलती है। एक साथ प्रश्नों की बौछार किए चली जाती है-"हाय, हाय

नई इसापनीति



पशुसंगठन में गिरा हुआ एक कमजोर शेर भूख से कंगाल बना हुआ था। कुटिलनीति से शिकार प्राप्त करने के इरादे से वह एक गुफा में बीमारी का बहाना किये बैठा। उस शेर की पूछताछ करने के लिये जो पशु उस रास्ते से गुजरे उन सबको उसने आत्मसात किया था; परंतु एक शृगाल ने शेर का यह बहाना जान लिया और कुछ फासले पर से ही उसने शेर की पूछताछ की। शेर ने जब अपनी मीठी भाषा से उस शृगाल को अपने पास आने की प्रार्थना की तब वह बोला, "ऐ, पशुश्रेष्ठ तुम्हारी गुफा से लौटनेवाले पशुओं के पदचिन्ह यहाँ कहीं नहीं दिख रहे हैं; इसलिए दूर से ही तुम्हें प्रणाम करता हूँ।"

तुम ठीक तो हो ? चोट तो नहीं लगी ? यह क्या हुआ ? कौन थे ? कैसे हो ? बोलते क्यों नहीं ? चोट तो नहीं लगी ?"

फिर टोह-टोहकर उसके सारे शरीर को देखती है। मुकुल उठकर खड़ा हो जाता है। "–तुम्हारे खाली डिब्बे छोड़ गए कि नहीं ?" ड्राइवर अक्र सूचना देता है कि अलमारी बिलकुल खाली है।

"आह सचमुच कायर थे।"

"मैं अभी पुलिस को फोन करती हूं।"

"न, न, पहले देख तो लो पुलिस के लिए कुछ बचा भी है।"

ड्राइवर कहता है–"पुलिस को फोन किया जा चुका है।"

भीड़ बढ़ने लगती है। लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। थाना-पुलिस होते-होते रात बीत जाती है। मुकुल झालानी उनके जाने के बाद एक दीर्घ निश्वास छोड़ता है और कह उठता है–"अब जान बची।"

इस झमेले में फिर कई दिन बीत गए। दस दिन बाद देखने में आता है कि मुकुल शीला भाभी के घर मौजूद है। रमा पहले से ही वहां है। इन्हें देख कर अचकचाती है–"आप।"

–"विशु कैसा है ?" और उत्तर की अपेक्षा न करके विशु की खाट पर जा बैठता है और हाथ से ताप देखता है। जैसे बिजली छू जाती है। "आह भट्टी जल रही है।"

"भाभी।"

"हां भैया।"

"बुखार बहुत तेज है। डाक्टर क्या कहता है ?"

"डाक्टर आया कहां जो कुछ कहता।"

"क्या डाक्टर अभी तक नहीं आया ? लड़के को एक बार ही मार डालोगी।"

भाभी हंसी–"सभी के भाग्य में तो डाक्टर होते नहीं। फिर भी वो अच्छे हो ही जाते हैं।"

मुकुल उठकर खड़ा हो जाता है–"तुम कैसी मां हो भाभी। ना, ना, यह नहीं हो सकता। मैं यह हत्या नहीं होने दूंगा। अभी डाक्टर को बुलाता हूं।"

"अभी।"

"हां, हां, अभी और हां, मैं सोचता हूं रमा, भाभी हम लोगों के साथ चल कर रहें तो......।"

हतप्रभ भाभी बोल उठती है।—"यह तुम्हारी कैसी सनक है भैया।"

मुकुल हंस पड़ता है !–"सनक, तुमने बिल्कुल ठीक शब्द का प्रयोग किया भाभी। लेकिन इसकी व्याख्या मैं अपने लान में बैठ कर करूंगा। अब तो चलूं डाक्टर को बुला लाऊं। अरे, रमा, इस तरह मेरा मुंह क्या देख रही हो। कम से कम विशु के अच्छा होने तक तो भाभी वहीं रहेंगी।"

और फिर एकदम मुड़ता है।

"सुनो।" रमा कहती है।—

"कहो।"

"पुलिस आई थी उसे शक है कि डाकू भाभी की मदद करते हैं और भाभी........।"

"हो सकता है। असहाय नारी के मददगार बहुत होते हैं।"

रमा पाण्डुरंग हो। मुकुल झालानी को देखती है। भाभी हंस पड़ती है–"मदद तो तुम भी करना चाहते हो।"

"हां।"

"और शक भी करते हो।"

"शक तो हारे जुआरी का दाव है। हो सकता है सनक में पुलिस के सामने तुम्हारा नाम ले दिया हो। पुलिस तो शास्त्र पढ़ती है। मानती है जहां अभाव है वहां पाप है।"

"क्या कहते हो, तुमने पुलिस से कहा।" रमा अविश्वास से चीख उठती है।

"उत्तेजित होना दुर्बलता है। पराए घर में शोभा नहीं देता। स्वभाव में भला मैं तुम क्या करेंगे।"

रमा निरस नहीं होती। कह बैठती है–"स्वभाव की बात आदमी पर लागू नहीं होती।"

झालानी खूब हंसता है।–"तुम भी शास्त्र पढ़ती हो। यही मुसीबत है। पुलिस के काम में हम क्यों दखल दें। भाभी तुम चलो ना मेरे साथ।"

रमा बोल उठती है–"अब मैं कहती हूं, भाभी वहां नहीं जाएगी।"

भाभी हँसती है–"हां भैया। पुलिस तुम्हें भी परेशान करेगी।" डाकू से परिचय सचमुच ही हो गया है। तुम्हारा रुपया लाया था। अब एक डाकू का रुपया दूसरे डाकू की मार्फत लेती ? नतीजा यह हुआ कि पुलिस ले गई। भला रुपये की भी क्या है। पुलिस पर रीझा।"

भाभी खूब हँसती है। झालानी भी हँसता है। "जड़ कहीं का। अच्छा भाभी डाकू का पता तो बता दिया ना।"

भाभी ने दृष्टि मिलाई—"जिससे परिचय है उसे धोखा दूं। ऐसी सलाह तो तुम न दोगे वह खुद जाए तो जाए...।"

तभी विशु पुकार लेता है। झालानी को कैसा लगा जान नहीं पाती। रमा सहसा उठकर कहती है–"अब चलो।"

"चलो।"

● ●

अनुक्रमणिका






मराठीचा विकास: महाराष्ट्राचा विकास





अभिनेत्रियों की तलाश

आप तो बहुत ही उपयुक्त होंगी। अध्यापकी में क्या रखा है। पी. एच्. डी. तो आजकल कुकुर मुत्ते के समान कोने-कोने दिखाई दे रहे हैं......

पानी बरस रहा था ऐसे जैसे गरीबों पर मुसीबत बरसती है। स्टेशन पर बिजली का प्रकाश न होता तो जान पड़ता पृथ्वी के भीतर कोई स्थान है। गाड़ी आनेवाली ही थी स्टेशन पर शोर हो रहा था जैसे किसी स्कूल में छुट्टी हुई हो। यों लखनऊ बड़ा स्टेशन है किंतु आज न जाने क्यों यात्रियों की संख्या कम ही थी जैसे कोई बड़ा धनी हो किंतु दया की मात्रा कम हो। आसनसोल पैसेंजर आधा घंटा लेट थी। जान पड़ता है रेल गाड़ी में भी आत्मा होती है। तीन घंटे देर से आना तो उसका सनातन धर्म था। आज संभवतः वर्षा के कारण यात्रियों पर उसने करुणा की।

दूसरे दर्जे में एक युवती ने प्रवेश किया। ऊपर के बर्थों पर दोनों ओर दो सज्जन ऐसी नींद में सोये हुए थे कि उन्हें पता नहीं चला कि गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी है। कुली ने युवती का बिस्तरा एक खाली बर्थ पर बिछाया और सूटकेस सीट के नीचे रख और पैसे लेकर चला गया। युवती ने साड़ी की शिकन हाथ से ठीक की। अलकों की दो-चार शाखाओं को जो चलने के कारण माथे पर लहरा गई थीं हाथों से हटाकर सिर पर लौटाया। प्लास्टिक के हरे जालीदार झोले में से कोई पुस्तक निकाली और पढ़ने लगी। वह बीच के बर्थ पर लेटी हुई थी। उसके सामने की बर्थ भी खाली थी। तीसरी बर्थ पर सेना विभाग के कोई सज्जन लेटे हुए थे। स्टेशन आने पर वह उठ बैठे और चायवाले से चाय लेकर पीने लगे। फिर लेट गये। गाड़ी ने सीटी दी और अभी रेंगना आरंभ ही हुआ था कि एक सज्जन ने दरवाज़ा खोला, चढ़ गये और कुली के सिर से होल्डाल और छोटा सा सूटकेस खींचा, कुली के हाथ में पैसे रख दिये और दरवाज़ा बंद कर दिया। फिर उन्होंने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। बिस्तरा बिछाया। दो मिनट बिस्तरे पर बैठे। फिर उठे, दोनों ओर दरवाज़ों में सिटकिनियां लगाईं और आकर बैठ गये। ज़ोर-ज़ोर से सोचने लगे—'इटंरव्यू ने गाड़ी आज छुड़वा ही दी थी।' युवती ने पुस्तक से सिर हटाकर एक बार उनकी ओर देखा और फिर वह पढ़ने लगी।

सज्जन महोदय यौवन के मध्यान्ह में थे। रंग सांवले से कुछ साफ़ थी, मूछों की एक मोटी रेखा नाक के नीचे और अधर के ऊपर थी। टेरिलीन का बुशशर्ट और हल्के नीले रंग की पतलून थी। बांई कलाई में सोने की सुंदर घड़ी और सोने का ही बैंड था।

युवती की अवस्था बाईस-तेईस साल की होगी। वसंत का आगमन उसके प्रत्येक

बेढब बनारसी

अंग से निखर रहा था। आंखे काली-काली मानों दो काले सागर हैं। यमुना की तरंगों से बाल, उषा से कपोल। और आम की पत्ती से पतले अधरों के अंदर मक्का के दाने के समान दांतों की पंक्तियां थीं। युवक ने इधर-उधर देखकर सिगरेट का डब्बा निकाला और बोला मैं सिगरेट पीऊँ, कोई आपत्ति तो नहीं है। युवती ने पुस्तक के अंदर ही से कहा—मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। युवक ने सिगरेट जलाया। सिगरेट पीने के पश्चात उसने पूछा—रोशनी बंद कर दूं। युवती ने कहा—मैं अभी पढ़ रही हूं। युवक बोला—हां, मैं भूल गया। क्षमा कीजिये। और युवक भी सोने का उपक्रम करने लगा।

फैजाबाद स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो युवक उठ बैठा। युवती भी उठकर बैठ गई। फिर वह खिड़की खोलकर चायवाले को पुकारने लगी। किंतु कोई चायवाला इस युग की ईमानदारी के समान दिखाई नहीं दिया। युवक शायद जागता था उठ बैठा, बोला देखिये मैं बुलाता हूं। युवती ने कहा,—नहीं रहने दीजिये, देखा जायगा। किंतु युवक ने उसकी बात सुनी नहीं। दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गया। और दो मिट्टी के कुल्लहड़ों में चाय लाया। एक कुल्लहड़ युवती की ओर बढ़ाते हुए कहा लीजिये। युवती हिचकिचायी और बोली आपने क्यों कष्ट किया। युवक बोला—इसमें कष्ट क्या। प्लेटफार्म से कहीं बाहर तो जाना नहीं

अनुक्रमणिका





पड़ा। मैं भी पीना चाहता था, आपके लिये भी लेता आया। युवती ने पतली-पतली उँगलियों से चाय ले ली और मुँह को लगाई। बोली चाय क्या है गर्म शरबत है बस। युवक बोला—हां साहब यही हाल है। मैं तो दिल्ली से बम्बई तक यात्रा करता रहा हूँ। स्टेशनों पर सब जगह यही है। चाय के नाम पर गर्म पानी, भोजन के नाम पर ठगी है। कुली अपने को किसी मंत्री से कम नहीं समझता, शिकायत के नाम पर सब बहरे, और शिष्टता का तो स्वर्गवास हो गया। युवती के अधरों पर मुस्कराहट की एक किरण आ गयी। यंत्रवत उसके मुख से निकल पड़ा—आप बंबई जा रहे हैं। युवक ने उत्तर दिया—इस समय तो बनारस जा रहा हूं। वहां से कलकत्ता फिर बंबई। क्या करूं पंद्रह दिनों से घूम रहा हूं। मेरे सेटजी की आज्ञा है कि एक महीने के अंदर फिल्म का काम शुरू हो जाना चाहिये। आप समझिये कि फिल्म का कार्य सरल नहीं है। केवल रुपये से सब नहीं होता। कुछ अभिनेता और अभिनेत्रियां मिल गयी हैं। चार अभिनेत्रियों की खोज और है। दो तो दिल्ली में मिल गयी हैं। बनारस में भी देखता हूं। कलकत्ते में भी देखूंगा। अनेक बातें देखनी पड़ती हैं न, इसमें भी।

युवती ने यह सब पूछा नहीं था फिर भी युवक ने सिखाये प्रवाह की भांति कह डाला। युवती ने युवक की ओर ध्यान से देखा फिर कहा—बंबई तो सुना है अभिनेत्रियों का गढ़ है। वहां से आप बाहर खोजने निकले! आश्चर्य है! युवक ने उत्तर दिया, हां, है तो। एक बात यह है, हमारे सेठ जी नये विचारों के आदमी हैं। फिल्म जगत को सुधारकर उसकी काया पलट करना चाहते हैं। पैसा पैदा करना उनका उद्देश्य नहीं है। वह चाहते हैं नयी प्रतिभाएं सामने आये। उनकी मंशा है जितनी अधिक शिक्षित अभिनेत्रियां हों उतना ही अच्छा। कोई फ़िल्म कंपनी आरंभ में जबकि युवतियां अभिनय का क ख ग भी नहीं जानतीं एक हज़ार रुपये मासिक नहीं देता। सेठ साहब



फूल, बाग़ और गुलदस्ता

नी र ज

एक दिन बाग़ में जब लौट के आई थी बहार,
हर कली-फूल पै नूतन निखार आया था,
रात के घर में कि उतरी थी सितारों की परी,
या किसी दर्द पै मरहम को फाग आया था!

फूल सौ रंग के, सौ तरह की खुशबू उड़कर
खंडहरों तक को बदल देती थी मयखानों में!
रात-रानी का जब छिड़ता था चाँदनी में सितार,
रेशमी स्वप्न महक उठते थे वीरानों में।

बाग़ था या कि किसी झील में धीरे-धीरे
स्वर्ण-हंसों का कोई तैर रहा जोड़ा हो,
या किसी शोख़ नवोढ़ा ने कुसुम्भी आंचल
पहले केसर में भिगोया हो फिर निचोड़ा हो!

केतकी, चम्पा, चमेली, गुलाब औ' गेंदा,
साथ रहते थे सभी, साथ मुस्कराते थे,
फाग के गीत जो गाते थे वे जब मिल-जुलकर
दूसरे बाग़ उन्हें चाव से दुहराते थे!

इतना अपनाव था उन गंध के शहज़ादों में
कुन्द मुरझाता तो पाटल उदास होता था,
केतकी की जो नहीं आँख ज़रा नम होती,
रातों उपवन में हरसिंगार नहीं सोता था।

एक का दर्द था हर एक पड़ोसी का दर्द,
और उपवन की खुशी थी हरेक गुंचे की ख़ुशी,
ऐसे नाज़ुक से किसी तार में वे सब थे गुंथे
बिजलियाँ तक न चुरा पाईं वह हमजोल हंसी!

एक दिन एक हवा आई मगर पच्छिम की
जाने क्या कह गई हर डाल से चुपके-चुपके,
बिन किसी बात झगड़ने लगे सब फूल औ' पात,
क्यारी-क्यारी में जहालत के अंगारे धधके!





लड़ उठा फूल से हर फूल, औ' हर शाख़ से शाख़
कोंपलों तक से अदावत की गंध आने लगी।
ऐसे दिन-रात निकाले गये नफ़रत के जुलूस
फ़ाग की लाश कफ़न तक को छटपटाने लगी।

'पद्म' कहता था कि दक्खिन का हूँ मैं रूप-कंवल
मेरी उत्तर के गुलाबों से न बन पायेगी।'
और गर साथ हमें गूँथा गया माला में
सारी बगिया की हँसी धूल में मिल जायेगी।

तिरछी कर आँख तभी बोल उठी 'जूही' भी
मेरी चितवन में है बंगाल का जादू-टोना,
मुझको बेला यह विहारी न तनिक भाता है
दूर रखना लू से ढल जाय न मेरा सोना।

फिर तो जो 'मालती' महाराष्ट्र की अब तक चुप थी
गंध-वेणी की गिरह खोल करके यूँ बोली,
पास यह केतकी गुजरात की आये न मेरे
वरना दीवाली यह बन जायेगी पल में होली।

गरज है यह कि वे सब फूल जो इस गुलशन के
साल-हर-साल से रहते थे सगे भाई से
आज इस बात पे लड़ते थे कि ख़ुशबू उनकी
है अलग ऐसे, अलग गीत ज्यों रुबाई से।

उड़ते-उड़ते यह खबर पहुँच गई माली तक
हर किसी शाख़ से चुनके हर एक-रंग के फूल
उसने तैयार किया एक बड़ा गुलदस्ता
सतबरन-चीर कि ज्यों ओढ़के आई हो धूल!

अब न बेला ही रहा बेला, न चम्पा, चम्पा,
एक की पंखुरी दूजे से सटी थी ऐसी,
दायें हो देखो तो दिखती जुही सिर्फ़ जुही,
बायें हो देखो तो दिखती थी चमेली जैसी!

भिन्न थे रंग, मगर आज सभी मिलकर वे
और ही एक नये रंग को जनम देते थे!
था कि फिर से न बिछुड़ने को कभी जीवन में
हाथ में हाथ लिए दोस्त क़सम लेते थे।

हम भी गुलदान के यदि एक कुसुम बन जायें
गंध इस प्रान्त की उस प्रान्त को सह सकती है,
रंग रह सकते हैं, तस्वीर भी रह सकती है,
'नेकता में भी सदा एकता रह सकती है।

आरंभ से ही एक हज़ार रुपये मासिक दे रहे हैं। अभिनय योग्य हो जाने पर तो वह पांच हज़ार से आरंभ करेंगे। यह सब नया 'सेट' चाहते हैं नहीं तो कितनी विख्यात तारिकाएं हैं।

युवती को संभवतः युवक की बातों में आकर्षण जान पड़ा। उसने पूछा—आप किस कंपनी के प्रतिनिधि हैं। युवक ने सरलता से उत्तर दिया—प्रतिनिधि क्या हूं। सेठजी की कृपा है। मुझपर विश्वास है। मैं उनका निजी मंत्री हूं किंतु इस कार्य के लिये उन्होंने मुझे ही चुना। कंपनी का नाम है 'स्वराज फिल्म्स'। इस कंपनी में कोई हिस्सेदार नहीं है। दो करोड़ रुपये सेठजी ने उसके लिये अलग कर दिये हैं। यह तो आरंभ की बात है। अपना स्टूडियो बनायेंगे और शूटिंग होने लगेगी तब और देंगे।

युवती और भी जानने के लिए उत्सुक थी। उसने पूछा—सेठजी का क्या व्यवसाय है? युवक ने हंसते हुए कहा—सेठजी का व्यवसाय? अमेरिका की छः विभिन्न कंपनियों में उनके शेयर हैं जिससे औसत दस लाख डालर मुनाफ़ा प्रति वर्ष आता है। यहां मोतियों का व्यापार होता है। आप विश्वास न करेंगी मैंने उनके यहां बीसों टब मोती भरे देखे हैं।

युवती ने कहा—इतनी बड़ी कंपनी, ऐसी उसकी विशेषता! किंतु किसी पत्र में उसका समाचार नहीं। युवक ने उत्तर दिया—सेठ साहब प्रचार से बहुत दूर भागते हैं। फिर भी सिनेमा-संबंधी पत्र-पत्रिकाओं में तो छपा ही होगा। युवती ने कहा— मैंने तो कहीं नहीं पढ़ा।

युवक बोल उठा—क्या आप सिनेमा-संबंधी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ती हैं? आप की सिनेमा में रुचि है क्या? युवती ने साधारण भाव से कहा—हां मनोरंजन के लिये पढ़ लेती हूँ। युवक बोला बहुत अच्छा है। मैं तो कहूंगा आप ऐसी विदुषी महिलाओं को तो सिनेमा में आ जाना चाहिये। तभी सिनेमा का गौरव बढ़ेगा।

युवती ने पूछा—आपको कैसे पता कि मैं विदुषी हूं। युवक मुस्कराया बोला—हीरा





कहीं छिप सकता है। फिर आपको मैंने बताया सेठजी मोतियों का व्यापार करते हैं। और पहचानता हूं। सेठजी के यहां नित्य ही दस-पांच स्त्रियां आती-जाती हैं। कोई चंदे के लिये, कोई सिफारिश के लिये। मगर वाह रे सेठजी। राम के चरित्र के संबंध में तो पढ़ा है, देखा सेठजी को। जब कोई महिला मिलने आती है उनकी आंखें धरती पर ही रहती हैं।

थोड़ी देर तक युवती चुप रही। फिर उसने पूछा-यदि मैं चलूं तो क्या वेतन मिलेगा? युवक ने कुछ चौंककर कहा-आप! बात यह है कि सेठजी मेरी सिफारिश पर करेंगे। जो मुनासिब कहियेगा दिलवा दूंगा क्षमा कीजियेगा। आपकी शिक्षा कहां तक हुई है।

युवती ने कहा-मैंने अंग्रेज़ी में एम्. ए. पास किया है। इसी साल एक कालेज में अध्यापिका हुई हूं। पी. एच. डी. करने का विचार है।

युवक बोला-अरे यह तो विधि ने बात बैठा दी। जो फिल्म बन रहा है उसमें एक अध्यापिका का रोल है। आप बहुत ही उपयुक्त होंगी। अध्यापकी में क्या रखा है। पी. एच. डी. तो आजकल कुकुर मुत्ते के समान कोने-कोने दिखायी दे रहे हैं। आपको आरंभ में ढाई हज़ार मासिक दिला दूंगा।

फिर कोई बात नहीं हुई। प्रातः काल जब वाराणसी गाड़ी पहुंची, युवक ने पूछा-आपने सोचा कुछ?

युवती ने उत्तर दिया-सोचा तो बहुत कुछ। आप यहां कहां ठहरेंगे! युवक उत्साहित हुआ। उसने कहा होटल डी पैरीस में ठहरूंगा! ज़रा डीसेंट ढंग से रहने का आदी हूं। युवती ने कहा-आप व्यर्थ परेशान होते हैं। आप मेरे साथ ठहरिये। आपको कोई कष्ट नहीं होगा। युवक मन में तो चाहता ही था। तैयार हो गया।

युवती जब घर पहुंची उसके पिता ने स्वागत किया युवक का सामान ड्राइंग रूम में रखा गया और वहीं वह सोफे पर बैठ गया। सिगरेट में सलाई लगाई। युवती के साथ उसका पिता भी अंदर गया और लड़की से पूछा यह कौन साथ आया है। युवती ने कहा-गाड़ी में मिला। कहता है सिनेमा अभिनेत्रियों की खोज कर रहा हूं। बातों से तो बहुत चलता-पुर्जा मालूम पड़ता है। इसीलिये साथ लेती आई। आप बात करेंगे तो ठीक-ठीक पता लग जायगा।

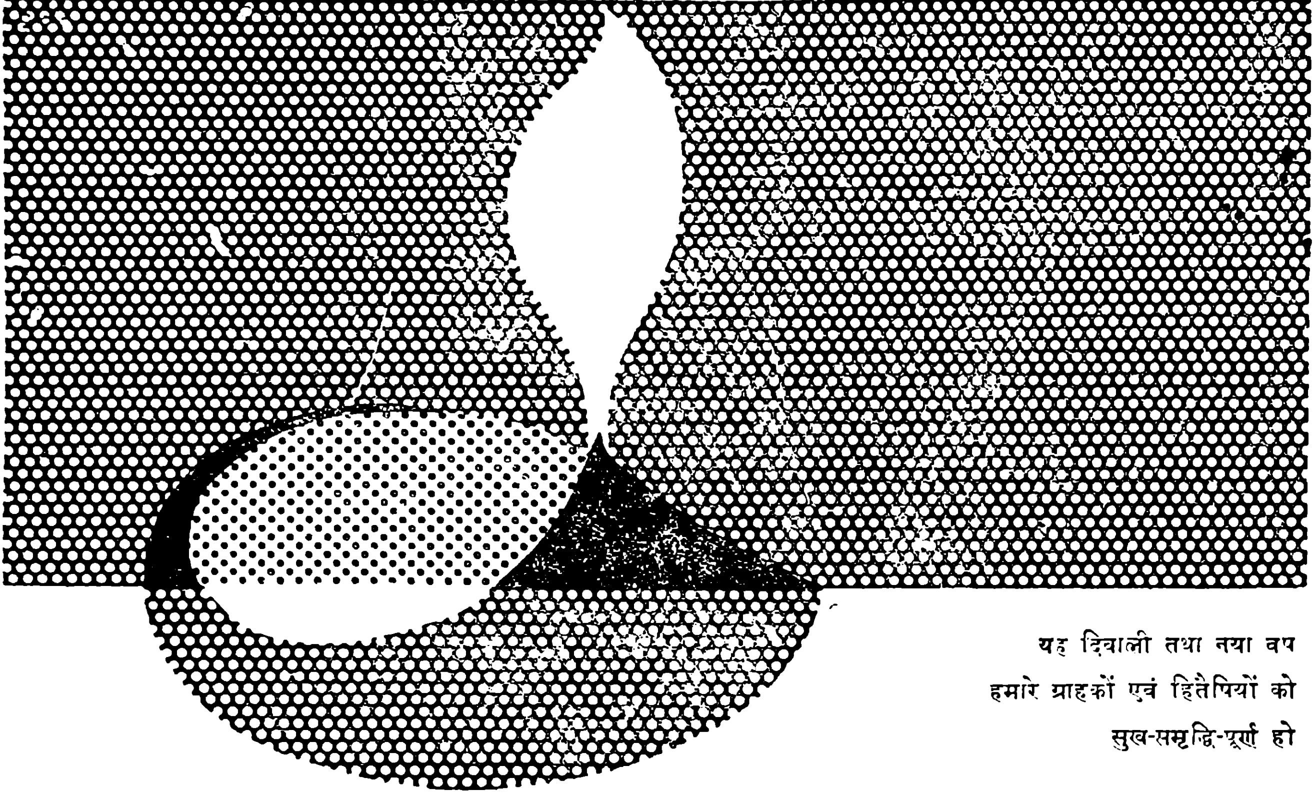
अच्छा चाय के समय बातें होंगी पिता ने कहा। चाय आयी। युवती के पिता शमशेर सिंह-चाय पीते जाते थे और युवक को देखते जाते थे। फिर उन्होंने कहा-अभी-आता हूं। अंदर जाकर अलमारी में से उन्होंने मोटी सी जिल्द बंधी कापी निकाली। उसमें बहुत सा इधर-उधर देखा। चाय समाप्त होने पर उन्होंने पूछा-आपका शुभ नाम। युवक ने उत्तर दिया-मुझको लोग निर्मल कुमार कहते हैं। शमशेर सिंह ने कहा-यह तो आपका फिल्मी नाम जान पड़ता है। असली नाम क्या है। युवक ने उत्तर दिया, यही एक मेरा नाम है। शमशेर सिंह ने कहा--अच्छा सोचिये तो आपका असली नाम कन्हैया लाल है। इसके अतिरिक्त आप अपने को दुर्गादत्त, आलोक शरण तथा फनि भूषण भी कहते हैं। अकसर लोग अपने कई नाम रखते हैं।

युवक यह सुनकर नील कमल के समान हो गया। बोला मैं इन नामों को क्या जानूं। निर्मल कुमार मेरा नाम है। यदि आप हंसी कर रहे हैं तो यह भी कोई मज़ाक है। यदि, अपमान कर रहे हैं तो घर बुलाकर ऐसा करना कौन सभ्यता है? शमशेर सिंह ने कहा-न मज़ाक कर रहा हूं, न अपमान। आपने चार बार इन्हीं चार नामों से रेलगाड़ी में लोगों को धोखा देकर ठगा है। आपके नाम वारंट है। आप मेरे साथ कोतवाली तक चलिए। • •

नई इसापनीति



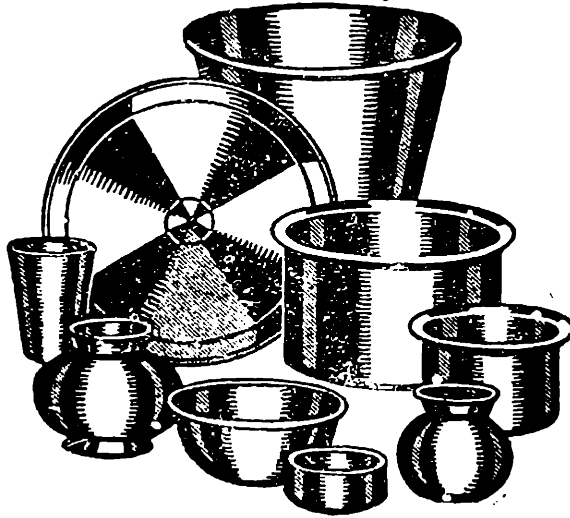
एक भूखा और लालची शृगाल एक फलों के बाग में गया। रास्ते में जो फल उसे मिले उन्हें गले उतारने वह आगे बढ़ता जा रहा था तब उसे मीठे और रसीले अँगुरों की बेल दिखाई पड़ी। शृगाल अनेक बार उस बेल के पास से गुज़रा था, परंतु ऊपर के अँगूर निकालना उसके लिये आसान नहीं हुआ। वह बहुत उछला-कूदा, ज़मीनपर लोटा; परंतु नैष्ठिक उपवास से प्राप्त पुण्य के अतिरिक्त उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। अंत में यह देखकर कि उसे कोई नहीं देख रहा है वह निराशा से लौटा। किसी जानकार के यह देखकर उससे पूछने पर "उन खट्टे अंगुरों की चींटों से रक्षा करने के हेतु से मैं यह सारी निस्वार्थ सेवा कर रहा था" इस तरह पिचके गालवाले शृगाल ने प्रकट किया।



यह दिवाली तथा नया वर्ष
हमारे ग्राहकों एवं हितैषियों को
सुख-समृद्धि-पूर्ण हो

मेसर्स हुकूमचंद ईश्वरदास

(स्थापना १८७८)
१६७, गुरुवार (वेताळ) पेठ, पूना २



गुजरात मेटल फैक्टरी

(स्थापना १९०४)
२१, नागेश पेठ, पूना २



TOM & BAY

श्रावणगीत

अनुक्रमणिका



सबसे पहले दलीप ने नहीं, बल्कि सन्ध्या ने दलीप को देखा। दलीप पालनगढ़ के दूसरे किसानों के साथ छकड़ों में गन्ने लाद के धनपत राय शूगर मिल में गन्ने पहुंचाने गया था। यह शूगर मिल सन्ध्या के बाप की थी। और इसी मिल में सन्ध्या ने देखा कि एक नवयुवक, जो बड़ा सुन्दर था, लेकिन देखने में बिल्कुल किसान लगता था तुलाई के सेक्शन में बाबू से लड़-झगड़ रहा था। लड़ते-झगड़ते जब तुलाई के बाबू ने उस नवयुवक किसान को अंग्रेजी में गालियाँ दीं, तो वह नवयुवक किसान भी पलटकर बड़ी शुद्ध अंग्रेजी में उसे उत्तर देने लगा। और सन्ध्या यह देखकर भौंचक्की रह गई कि यह कैसा किसान है, जो इस क़दर पढ़ा-लिखा होकर गरीब किसानों के कपड़े पहने हुए, हमारी मिल में गन्ना बेचने आया है?

सन्ध्या बचपन से तेरह वर्ष की उमर तक मसूरी में पढ़ी। फिर जब उसकी माँ मर गई, तो सेठ धनपत राय ने उसे लन्दन और पैरिस में शिक्षा के लिए भेज दिया। जहां से वह सात साल के बाद कुछ ही दिन हुए लौटी थी। इसलिए उसे अपने देश का वातावरण नया-नया और अजनबी लग रहा था।

सन्ध्या को बचपन ही से ललित-कलाओं से बड़ी दिलचस्पी थी। उसे गाने से शौक़ था, चित्रकला से शौक़ था और थेटर आर्ट्स पर तो उसकी जान जाती थी। उसने तीन साल लन्दन में रहकर पश्चिमी

दुलीप सिंह ने एकदम घूमकर अपना हाथ उसके कंधों पर रख दिया और तेज़ लहजे में बोला : मुहब्बत की फ़सल उगाने के लिए उतना ही वक्त चाहिए, जितना मुहब्बत की फ़सल काटने के लिए! और मैं इन दोनों में से सिर्फ़ एक को वक्त दे सकता हूँ!

फिर कुछ पलों की दुखद् खामोशी के बाद वह बोला : खुले आसमान में घूमते हुए सफेद बादलों को देखकर किसका जी मुहब्बत करने को नहीं चाहता? हरे और नीले पंखोंवाले नीलकंठ को नदी की चंचल लहरों पर मचलते हुए देखकर किसका जी मुहब्बत से छलकती हुई आँखों में डूब जाने को नहीं चाहता? लेकिन जिन्दगी की जिम्मेदारियाँ, मुहब्बत की जिम्मेदारी से बहुत बड़ी हैं।...

संगीत सीखा था और चार साल पैरिस में रहकर चित्रकला और थेटर-कला में महारत हासिल की थी। मेकप विभाग में और स्टेज की रोशनियों के बंदोबस्त में उसकी जानकारी और अनुभव बहुत विशाल थे। उसका इरादा था, कि अपनी मिल में एक ड्रामा-ग्रुप बनाए। इस सम्बन्ध में वह कई बार अपने बाप से बात-चीत कर चुकी थी। जो इस प्रकार के प्रस्तावों के बड़े विरोधी थे।

सन्ध्या उस समय जब कि झगड़ा हो रहा था, किसानों की नज़रों से ओझल एक कापी हाथ में लिए, किसानों के खाके बना रही थी। जब झगड़ा ज्यादा बढ़ गया, तो वह दौड़ी-दौड़ी अपने पिता के ऑफिस में गई, और सेठ धनपत राय ने उसी समय तुलाई के बाबू और उस झगड़नेवाले और अंग्रेजी बोलनेवाले किसान को अपने ऑफिस में बुलवाया। जिस निडर और बेख़ौफ़ अन्दाज़ में दलीप मिल मालिक के ऑफिस में गया, वह अन्दाज़ सन्ध्या को बहुत अच्छा लगा। उसे दलीप का मज़बूत चेहरा और ऊंची गरदन और ऊंचा माथा भी बहुत भला लगा। उसकी चाल में एक विचित्र विश्वास और प्रतिष्ठा थी, जिसने सन्ध्या के मन में एक विचित्र कंपन-सा पैदा कर दिया और वह खोई-खोई सी अपने कोने में अपने खाकों की कॉपी लिए खड़ी रह गई। और दलीप के सामने न जा सकी।

फिर उसने अपने बाप के विशाल और आलीशान ऑफिस का पिछला प्रायवेट दरवाज़ा खोलकर, अपने बाप और दलीप की सारी बात–चीत भी सुन ली। सेठ धनपत राय बड़े नर्म स्वर में दलीप को समझा रहा था,

"मेरे ख्याल में तुलाई के बाबू ने ग़लती से गन्ना कम तौल दिया है!"

"ग़लती से नहीं सेठ जी, जान-बूझ कर कम तौला गया है।"

सेठ ने कहा, "इन्सान से गलती हो ही जाती है। झगड़ा करने से क्या फ़ायदा?" इतना कहकर सेठ ने जेब में हाथ डालकर पचास रुपये निकाले और दलीप को देकर कहने लगा, "ये पचास रुपये तुम ऊपर ले जाओ मगर झगड़ा मत करो!"

दलीप का चेहरा आरक्त हो गया। उसने गुस्से से कांपते हुए स्वर में कहा,

"मैं यहाँ गन्ना बेचने आया हूँ, ईमान बेचने नहीं आया।"

यह बात सुनकर सेठ ने भी तुरंत बड़े कड़े स्वर में कहा, "मैं भी यहाँ गन्ना खरीदने बैठा हूं, ईमान खरीदने के लिए नहीं बैठा हूँ। ये पैसा जो मैं तुम्हें दे रहा हूँ, रिश्वत नहीं है, गन्ने की कीमत है।"

दलीप बोला, "सिर्फ़ मुझीको ज्यादा रुपये देने से काम नहीं चलेगा, सेठ जी! सब किसानों को जिनका गन्ना कम तौला गया है, सबको रुपया देना पड़ेगा।"

"सबको मिलेगा!" सेठ ने टेलिफ़ून उठाकर दलीप के सामने तुलाई के सेक्शन-मास्टर को ताकीद कर दी। और दलीप सेठ जी को धन्यवाद देने के बाद कमरे से बाहर निकल गया।

दलीप के जाने के बाद सन्ध्या अपने बाप के पास आई और बोली, "पिताजी ये झगड़ालू किसान कौन था? जो इस गुस्ताख़ी से बात कर रहा था!"

सेठ बोला, "बेटी! ये कोई किसान नहीं है। पालनगढ़ के सब किसानों को मैं जानता हूँ बेहद सीधे और शरीफ़ हैं। जो तौल दिया, उन्होंने कुबूल कर लिया। जो दे दिया उन्होंने ले लिया ये तो हवेली के ठकुरों का लड़का है, जो कुछ दिन पहले पालनगढ़ के ज़मींदार थे। उसका नाम दलीप है, और उनके पूरे ख़ानदान में यह पहला लड़का है, जिसने कॉलिज से बी-एजी. की डिगरी हासिल की है। इसलिए अपने आप को बहुत समझता है। बद-किस्मती से इसने एग्रीकलचरल कॉलिज की डिगरी हासिल की है इसलिए अपने आपको किसान समझता है, और उलटे-सीधे

लोगों से उलटी-सीधी बातें सीख ली हैं, इसलिये इसके दिल में को-ऑपरेटिव्ह-फॉर्मिंग कर के अपनी और किसानों की हालत ठीक करने का सौदा समाया है। मुझे सब रिपोर्ट मिलती रहती है। ये बहुत ग़लत और ख़तरनाक आदमी है। मगर ज़माना मार-पीट कर उसको ख़ुद ठीक कर लेगा"...सेठ यहाँ तक कहकर रुक गया। फिर उन्होंने संध्या की कॉपी की ओर संकेत कर के पूछा "यह क्या है?"

"ख़ाकों की कॉपी है!" संध्या ने कहा और अपने बाप को ख़ाके दिखाए बिना कॉपी झुलाती हुई कमरे से बाहर निकल गई!

आज पालनगढ़ के किसान बहुत ख़ुश थे। दलीप की समझदारी से आज उन्हें मिल से इतना पैसा मिला था जितना उन्हें आज तक कभी मिल से प्राप्त नहीं हुआ था। इसलिए आज वे ख़ुश-ख़ुश गाने गाते हुए, छकड़े चलाते हुए, दलीप को दुआएं देते हुए वापिस अपने घरों को जा रहे थे।

पहाड़ियों पर सूर्य अस्त हो रहा था। और बादलों के किनारे सुनहरी और नारंगी थे और हवा, दूर पहाड़ियों में जंगली पेड़ों और फूलों की अजनबी ख़ुश्बूओं से लदी हुई थी और उस सुन्दर पृष्ठभूमि में गाते हुए, मेहनती किसानों के रेस करते हुए छकड़े बहुत भले मालूम होते थे।

सन्ध्या की मोटर सड़क पर एक गड्ढे में फंसी थी। वह सूर्य-अस्त के दृश्य के चित्र बनाने के लिए मिल से बहुत दूर निकल गई थी। वापिसी पर उसकी मोटर एक गड्ढे में फंस गई और मिल की तरफ़ से आनेवाले किसानों के छकड़े जो एक दूसरे से रेस करते हुए जा रहे थे, गर्द-व-गुबार के मरगोले बखेरते हुए उसके सामने से गुज़रते गए। वह लोग जो इस क़दर ख़ुश गाने गाते हुए और अपने छकड़ों की रेस में व्यस्त थे कि उन्हें रुककर सन्ध्या की मदद करने का ख़याल तक न आया। दरजनों छकड़े उसके सामने से भागते हुए गुज़र गए। फिर अंतिम एक छकड़ा भी तेज़ी से दौड़ता हुआ उसके सामने से गुज़र गया।

आगे जाकर वह छकड़ा रुका। और उसमें से दलीप निकला और मुड़कर पैदल चलता हुआ वापिस गाड़ी के पास आया और सन्ध्या का मिट्टी और धूल से सना हुआ चेहरा देखकर बहुत हंसा और बोला, "मेकैप अच्छा है।"

"शटअप!" सन्ध्या ने गुस्से से कहा और साड़ी के पल्लू से अपने चेहरे को बार-बार साफ़ करने लगी।

"बहुत ख़ूब! अच्छा तो मैं चलता हूं।" कहकर दलीप जाने लगा तो शाम के बढ़ते हुए साये देखकर सन्ध्या ने बेचैनी से कहा, "ऐ मिस्टर!"

"मेरा नाम दलीप है!" दलीप रुककर बोला।

"जो कुछ भी है।" सन्ध्या नर्म स्वर में बोलने की कोशिश करते हुए कुछ कड़वेपन और आज्ञा के स्वर में कह गई, "ज़रा मेरी गाड़ी निकाल दो!"

दलीप ने अपने दोनों हाथ कमर पर रख लिए और चंचल निगाहों से सन्ध्या को ताकते हुए बोला, "गाड़ी तुम्हारी! गड्ढा सड़क का! मैं मुफ़्त में किसी का काम क्यों करूँ?"

"मैं तुम्हें दस रुपये दूँगी —" सन्ध्या बोली।

"अच्छा!" दलीप बोला, "मगर तुमको भी मेरे साथ मिल कर ज़ोर लगाना होगा! सन्ध्या गाड़ी से उतर आई और दलीप के साथ मिलकर ज़ोर लगाने लगी। गाड़ी गड्ढे से तो निकल आई, मगर पंक्चर हो चुकी थी। दलीप ने इशारा कर के कहा, "ये व्हील तो पंक्चर है!"

"मेरे पास स्टपनी है!" सन्ध्या बोली।

"तो लाओ मैं फ़िट किए देता हूँ।"

"तुमने मोटर का काम कहाँ से सीखा?" सन्ध्या ने पूछा।

"शहर से।"

"शहर क्या करने गए थे?"

"पढ़ने गया था!"

"क्या पढ़ा?"

"तुम्हारा सर!" दलीप जलकर बोला, "सब कुछ मुझीसे पूछती जाती हो, अपना नाम तक नहीं बताती हो!"

"मेरा नाम सन्ध्या है!" वह बोली, "ये धनपत राय शूगर मिल मेरे बाप की है।"

"ओह!"—दलीप ने रुककर कहा, "मगर इससे पहले तुम्हें वहाँ कभी नहीं देखा!"

"मैं यहाँ नहीं थी मेरी माताजी के देहांत के बाद मुझे पिताजी ने लन्दन भेज दिया था पढ़ने के लिए।"

"वहाँ कितने साल रहीं?"

"सात साल! तीन साल लन्दन और चार साल पैरिस!"

"इन सात सालों में क्या सीखा?"

"तुम्हारा सर!" सन्ध्या बोली, "मुझसे बातें किए जा रहे हो, स्टपनी नहीं लगाते हो!"

"लगा तो रहा हूँ! बातें भी करता जाऊँ तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है?" दलीप स्टपनी चढ़ाते हुए बोला "इधर शाम को क्या करने आई थी?"

"सूर्य-अस्त की तस्वीर बनाने आई थी!"

"बना ली?"

"हूं!"

"दिखाओ!"





" पहले तुम स्टपनी तो लगाओ ! "

"लगा ली देखो ठीक है ? "

" हाँ ठीक है ? "

" तो अब तस्वीर दिखाओ ! "

" मोटर में पड़ी है । " सन्ध्या मोटर का पट खोलकर उसे अंदर बुलाते हुए बोली, " अंदर आकर देखो ! "

दलीप सन्ध्या के साथ अंदर आ गया और कुछ क्षण तक तस्वीर को बड़े ध्यान से देखता रहा। सन्ध्या बोली, "मैंने यह तस्वीर यहाँ मोटर की खिड़की में बैठकर बनाई है। है न खूबसूरत ? "

दलीप ने तस्वीर को देखा, फिर खिड़की से बाहर देखने लगा और धीरे से कहने लगा, " हाँ मोटर की खिड़की में बैठकर वाक़ई दुनिया खूबसूरत दिखाई देती है ! "

उसके लहजे की गहरी कड़वाहट से सन्ध्या चौंक गई। दलीप का सोच में डूबा हुआ चेहरा देखकर बोली, " तुम अमीर लोगों से इस क़दर नफ़रत क्यों करते हो ? "

दलीप ने कहा, " जब एक लाख आदमी ग़रीब हो जाते हैं, तब एक आदमी लखपति बनता है। "

" सभी लखपति बुरे नहीं होते। मुझे देखो मैं भी लखपति हूँ। क्या तुम्हें बुरी दिखाई देती हूँ ? "

दलीप ने ग़ौर से सन्ध्या के ताज़ी बहार जैसी-सुन्दरता को देखा, फिर धीरे से सर हिला के बोला, " किसान अपना खून देकर गन्ने का रस निकालते हैं। वह रस तुम्हारे कारखाने में शक्कर में ढल जाता है। उसका मुनाफ़ा तुम्हारी रगो में उतरता है। मुनाफ़ा-ख़ोर करो तो क्या है ? किसान का ताज़ा खून है, जो तुम्हारी रगो में दौड़ रहा है। ये भी एक तरह का Transfusion of blood है। जो हर रोज़ तुम्हें दिया जा रहा है। फिर..."

" ओह ! तुम कैसी खौफनाक बातें करते हो। " संन्ध्या ने झल्लाकर कहा।

" तुमने पूछा तो मैंने बताया, वर्ना मुझे बात करने की ज़रूरत क्या थी ? "

" ओह-ओह-तुम बहुत बड़े आदमी हो। उतर जाओ मेरी गाड़ी से ! "

दलीप मुस्कराकर गाड़ी का पट खोलकर उतर गया। सड़क पर खड़े होकर उसने उपहासपूर्ण ढंग से सन्ध्या को 'गुडबाई' कहा और पलटकर अपने छकड़े पर सवार होकर चला गया। संन्ध्या देर तक अपनी गाड़ी में बैठी मुड़कर उसी छकड़े को सड़क पर जाते हुए देखती रही।

जब छकड़ा मोड़ पर गायब हो गया, तो उसने इन्जन खोला।

● ●

२

जब ज़मीनदारी खत्म हो गई और पालनगढ़ के संग्रह परिवार का दीवाला पिट गया, तो उसी परिवार का एक होनहार पुत्र दलीप सिंह ने बहुत मिन्नत-समाजत और खुशामद करने के बाद अपने रईस और ज़मीनदार परिवार के व्यक्तियों को इस पर सहमत कर लिया, कि वह काहिली और बेकारी की ज़िन्दगी छोड़कर अपनी ज़मीनों को इकट्ठा कर के एक को-ऑपरेटिव फ़ार्म खोलें, वर्ना भूखे मर जाएंगे। भूखे मर जानेवाली बात तो अब परिवार के विभिन्न व्यक्तियों की समझ में आने लगी थी। लेकिन काम करने वाली बात अभी उनके पल्ले नहीं पड़ती थी। इसलिए बहुत दिनों तक इस समस्या पर चर्चा होती रही। आखिर बड़ी कोशिशों के बाद, वह लोग फ़ार्म खोलने पर तैयार हुए। कुल मिलाकर तीन सौ साठ एकड़ जमीन होती थी। और दलीप का विचार था, कि अगर मिलकर मेहनत की जाए, तो फ़ार्म बड़े मज़े से चल सकता है।

मगर संग्रह परिवार के मशहूर और अनुवांशिक ज़मीनदार अगर रईस मिज़ाज़ न होते, तो क्या होते ? उनमें से एक साहिब को मुर्ग़ पालने का शौक़ था। दूसरे केवल चिड़ियाँ पालते थे। तीसरे सिर्फ़ शायरी करते थे। चौथे शतरंज में मुब्तिला थे। पाँचवें पतंगबाज़ी में मसरूफ़ थे। छटे दिन में तीन सौ पान खाते थे उनके पान की पीक अगर जमा की जाती, तो उससे दस एकड़ ज़मीन की सिंचाई हो सकती थी ! सातवें का इरादा लखनऊ की एक रंडी को घर डालने का था। लेकिन जब से ज़मींदारी खत्म हुई थी, वह खुद उस रंडी के घर पड़ गए थे और परिवारवालों ने उन्हें बिरादरी से निकाल दिया था। नवें नीम पागल थे। उनका ख्याल था कि उनका आधा सर तोते का है और आधा मैना का !



इन सब लोगों को इकट्ठा करना और उनसे काम लेना, दलीप सिंह ऐसे, सर फिरे और धुन के पक्के नवयुवक का ही काम था। और बड़ा उत्साह-भंजक कार्य था इस सम्बन्ध में आए दिन दिलचस्प घटनाएं हुआ करती थीं।

एक दिन दलीप को फ़ार्म के किसी ज़रूरी काम के लिए शहर जाना पड़ा। उसने अपने शायर चाचा को जो परिवार में कुछ उचित मनुष्य थे और पढ़े-लिखे भी थे और शायरी भी करते थे, अपने पास बुलाकर कहा, "चाचाजी मैं तो एक ज़रूरी काम से शहर जा रहा हूँ। मेरे जाने के बाद मुमकिन है, फ़ार्म पर कुछ लोग इटरव्यू के लिए आएं!"

"कैसा इंटरव्यू?" शायर चाचा ने पूछा।

"मैंने अखबारों में इश्तहार दिया था कि मुझे फ़ार्म पर काम करने के लिए कुछ नवजवानों की ज़रूरत है।"

"क्या ज़रूरत है।" शायर चाचा ज़रा भड़ककर बोले, "खान्दान के इतने लोग यहाँ फ़ार्म पर जमा हैं। हमारे होते हुए तुम्हें बाहर के आदमी की ज़रूरत क्यों पड़ती है?"

"आप देख तो रहे हैं, किस तरह का काम होता है, यहाँ!" दलीप ने तनिक धीमे स्वर में कहा, ताकि उसमें शिकायत का पहलू कम से कम झलके "बहरहाल ये एक लम्बी बहस है। शहर से आकर इस मसले पर बात करेंगे। आप मेरी ग़ैर हाजिरी में इतना कर लीजिए कि जो लोग फ़ार्म पर काम करने के सिलसिले में आएं, उनका इंटरव्यू ले लीजिएगा"

"ले लेंगे!" शायर चाचा ने दलीप को इतमीनान दिलाते हुए कहा, "तुम बेफ़िक्र होकर जाओ।"

चलते-चलते दलीप ने फिर कहा, "ज़रा माकूल आदमी रखिएगा देखकर!"

"हाँ-हाँ हम समझ गए।" शायर चाचा बोले, "अब तुम जाओ!"

दलीप के जाने के बाद शतरंज खेलनेवाले चाचा, शायर चाचा के पास आ गए और उनसे शतरंज खेलने के लिये हठ करने लगे शायर चाचा ने बताया, कि उन्हें अभी खेतों में हल चलाना है। "मगर एक बाजी से क्या हो जायगा।" कहकर बड़े ठाकुर ने अपने छोटे भाई को फुसला लिया और दोनों शतरंज खेलने में मसरूफ़ हो गए। डेढ़-दो घण्टे बाद जब उन्होंने सर उठा के देखा, तो अपने इर्द-गिर्द बहुत से शहरी और देहाती नौजवानों को मौजूद पाया। ये लोग इंटरव्यू के सिलसिले में आए थे। फ़ार्म पर काम करने के लिए।

बड़े ठाकुर ने छूटते ही अपने सबसे करीब खड़े हुए नौजवान से पूछा, "क्या नाम है, तुम्हारा?"

मगर ये ज़िम्मेदारी तो शायर चाचा के सुपुर्द की गई थी। इसलिए उन्होंने जल्दी से सब लोगों को एक लाईन में खड़ा किया। और बड़े ठाकुर से बोले, "इन्टरव्यू ऐसे लाइन में खड़े कर के लिया जाता है। बारी-बारी सबको बुलाया जाता है। और उनसे सवाल किए जाते हैं। और जो सवालों का जवाब सबसे अच्छी तरह से दे, तो उसे नौकर रख लिया जाता है। ये है कायदा आज-कल के इन्टरव्यू का आप देखते जाइए, मैं अभी आपकी आंखों के सामने इंटरव्यू कर के दिखाता हूं।" शायर चाचा इतना कहकर सम्भलकर बड़े ठाकुर के साथ चारपाई पर बैठ गए। और उन्होंने सबसे आगे खड़े हुए एक देहाती नौजवान को अपने सामने बुलाया। और उससे सवाल-जवाब करने लगे।

"क्या नाम है तेरा?"

"हस्सू!"

"हस्सू क्या नाम हुआ?"

"नाम तो हासिम है, पर सब हस्सू-हस्सू कहते हैं!" देहाती शरमाकर बोला।

"शतरंज आती है?" बड़े ठाकुर ने फौरन बेचैन हो पूछा।

"नहीं—हम का जानीं।"

"तो जाओ, डिसमिस!" बड़े ठाकुर फ़ौरन बोल उठे। शायर चाचा ने बड़े भाई को समझाया। ऐसे इंटरव्यू नहीं लिया जाता!

"फिर कैसे लिया जाता है?"

"आप देखते रहिये, मैं बात करता हूँ।"

"अच्छा तुम बात करो। तुम ही बात करो। हम चुप हुए जाते हैं।" बड़े ठाकुर किसी क़दर उदास होकर बोले।

इतने में दूसरा देहाती सामने आ चुका था।

"तुम्हारा नाम?"

"तोता राम!"

"कहाँ के?"

"माधवपुर के।"

"कुछ पढ़े-लिखे हो?"

"चार जमात पढ़ा हूं!"

"जानते हो अमीर मीनाई कौन है?"

"हाँ, जानूँ हूँ। अमीर वो होवे, जो गरीब का लहू चूसे!" तोता राम बेधड़क बोला।

"अरे—अहमक़!" शायर चाचा खफ़ा होकर बोले, "अमीर मीनाई एक शायर का नाम है। खैर तुम्हारे ऐसा घामड़ हमें नहीं चाहिए, जाओ!"

वह चला गया, तो तीसरा देहाती सामने आया, अधेड़ उम्र का था और सूरत-शकल से खासा तेज़ और चालाक मालूम होता था।

शायर चाचा ने उसका सर से पांव तक का अवलोकन करने के

अनुक्रमणिका

बाद पूछा, "क्या काम जानते हो?"

"सब जानता हूँ।" वह खेत मज़दूर जंचे-तुले स्वर में बोला, "हलवाही, बोवाई-निलाई, ढलाई-कटाई सब जानता हूँ! ज़मीन का सब काम जानता हूं।"

"ज़मीन का सब काम जानते हो? अच्छा तो बताओ ये ज़मीन किस ग़ज़ल में है?" शायर चाचा ने पूछा

इब्ने मरियम हुआ करे कोई
मेरे दर्द की दवा करे कोई!

देहाती किसान हक्का-बक्का हो के शायर चाचा का मुंह देखने लगा। और शायर चाचा ने विजयी निगाहों से चारों तरफ़ देखा। उनकी निगाहें, साफ कह रही थीं, बड़े आये थे, इंटरव्यू देने के लिए। कर दिया न चित मैंने! फिर अभिभावुकता से किसान को देखकर बोले, "बोलो-बोलो-जवाब दो!"

— वह बोला, "दर्द की दवा तो बैदजी जानें हुजुर! हम तो खेत मजूर हैं! खेती-बाड़ी का सब काम जानें!"

"जाओ-जाओ-तुम्हें अगर इस आसान शेर की ज़मीन मालूम नहीं है, तो खेती-बाड़ी का काम हमारी ज़मीन पर कैसे कर सकोगे? भागो!"

अब चौथे नौजवान की बारी आई। ये एक सिख नौजवान था! उम्र मुश्किल से बीस बरस के क़रीब होगी। लड़का सा, दुबला-पतला, मझाना क़द-मूंछों की बारीक रोएं और महीन खशखशी दाढ़ी-सर पर ऊदे रंग की पगड़ी बांधे हुए। एक ढीली बुशशर्ट और पतलून में था।

"नाम?" शायर चाचा ने पूछा।

"मोहन सिंह!"

"क्या काम करते हो?"

"आज-कल बेकार हूँ!"

"कहाँ तक तालीम पाई है?"

"मेट्रिक पास हूँ।" वह लड़का बोला, "मगर मैं तो यहाँ खेती-बाड़ी के काम के लिए..."

शायर ने उसे फ़ौरन-टोका, "ज्यादा बातें मत करो, जो पूछा जाए, वही बताओ! जानते नहीं, ये इंटरव्यू है, इंटरव्यू!"

"बहुत बेहतर" नौजवान सिख ने संभलकर सभ्य स्वर में कहा, "पूछिए!"

"हुम" शायर ने कहा और कुछ क्षण रुककर बोले,

वह आए इतना तो मीर ने देखा
फिर इसके बाद चराग़ों में रोशनी न रही।

"यह किसका शेर है?"

मोहन सिंह बोला, "मीर का है!"

शायर चाचा का चेहरा उतर गया। सोच-सोच कर फिर बोले, "अच्छा बताओ यह शेर किसका है?"

रेखती के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब
सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।

मोहन सिंह ने कहा, "यह ग़ालिब का है।"

इस पर शायर चाचा मान गए बड़े ठाकुर से बोले, "लड़का लायक़ मालूम होता है। इसे रख लेना चाहिए।"

बड़े ठाकुर बोले, "इससे पूछो शतरंज जानता है?"

पूछने से पहले ही लड़के ने जवाब दिया, "जी, हाँ! शतरंज भी खेल लेता हूं।"

बड़े ठाकुर खुश होकर शायर चाचा से कहने लगे, "रख लो, इसे तो ज़रूर रख लो यह नौजवान काम का मालूम होता है।" फिर मोहन सिंह को सम्बोधित कर बोले, "इधर आओ शतरंज की एक बाज़ी हो जाए!"

मोहन सिंह हैरान होकर बोला, "मगर मैं तो यहाँ खेती-बाड़ी का काम करने आया था। मैंने सुना था, इधर खेती-बाड़ी का काम होता है।"

"होता है, होता है, वह भी होता है।" बड़े ठाकुर उसे दिलासा देते हुए बोले, "पहले तुम हमसे शतरंज खेलो फिर जब दलीप शहर से आ जाएगा, तो तुमको काम से लगा देगा।"

मोहन सिंह बड़े ठाकुर के साथ शतरंज खेलने लगा। और शायर चाचा ने बाकी सब लोगों को डिसमिस कर दिया।

● ●

३

दोपहर के करीब जब दलीप ट्रेक्टर के सिलसिले में बात-चीत कर के शहर से लौटा, तो उसने देखा, कि एक पेड़ के नीचे उस के मुर्गबाज़ चाचा अपने एक मुर्ग को नहलाकर पोंछ रहे हैं। और उसकी चोंच पर पावडर छिड़ककर कह रहे हैं! "अब जाओ, खेलो, मेरे रुस्तमे हिन्द!" मुर्ग स्वतंत्र होकर कुड़कुड़ाता हुआ गर्दन फुलाए एक ओर को चला गया।

एक छप्पर के नीचे दलीप ने देखा, कि उसका पतंगबाज़ चाचा एक दरजन बच्चों की लाइन से डोरी समेत मांझा तैयार करवा रहा है और पतंग बना रहा है। एक तरफ चिड़ीमार चाचा अपने चहेते तोते हीरामन के पिंजरे के सामने उकड़ूं बैठे उससे कह रहे हैं, "कला-बाज़ी खाओ, हीरामन कला-बाज़ी खा के दिखाओ!"

"क्यों दिखाये?" तोता बोला, "ज़मीनदारी खत्म हो गई!"

दलीप ने एक छप्पर पर नज़र डाली। यहाँ रसोई थी। इस छप्पर में दो-तीन खटियां पड़ी थीं। यहां ठकुराइनें पान खा रही

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

थीं या ताश खेल रही थीं। एक तरफ़ दाल उबल-उबल कर बाहर गिर रही थी।

दलीप ने बेज़ार होकर नज़र फेर ली। तो उसे सामने खेत में शायर चाचा हल चलाने की कोशिश में व्यस्त दिखाई दिए। उन्हों-ने बैलों की जोड़ी किसी न किसी तरह हल के आगे जोत दी थी और अब बैलों के सामने खड़े होकर बड़े सभ्य ढंग से उनसे कह रहे थे, "अजी हज़रत आगे बढ़िये—आगे बढ़िये—हल चलाइये!"

मगर ज्यों—ज्यों शायर चाचा बैलों के आगे बढ़ते जाते ग़रीब बैल सर झुकाकर पीछे हटते जाते और शायर चाचा परेशान हो कर कहने लगे, "ये क्या तमाशा है? दुनिया आगे बढ़ रही है, आप पीछे हटते जा रहे हैं। वल्लाह! हल चलाइये! देखिये ये सारी ज़मीन आपकी क़दम-बोसी के लिए इन्तज़ार कर रही है! शायद इसी मौक़े के लिए चचा ग़ालिब कह गए हैं—आगे बढ़ के जो उठा ले हाथ में मीना उसीका है!"

जब इस पर भी बैल आगे न बढ़े, बल्कि ख़ामोश निगाहों से शायर चाचा को देखकर कान फटफटाते रहे, तो शायर चाचा ने रूठकर कहा, "वल्लाह आप दाद तक नहीं देते! अजब घामड़ी हैं आप भी!"

इस पर दलीप ने आगे बढ़कर और मुस्कराकर कहा, "चाचा, बैलों के आगे खड़े होकर नहीं बैलों के पीछे खड़े होकर हल चलाया जाता है।"

शायर चाचा एकदम बेज़ार होकर बोले, "अजब नामाकूल तरीक़ा है साहिब हल चलाने का! हमने तो आज तक किसी महफ़िल में किसीके पीठ पीछे शेर नहीं पढ़ा। फिर हम किसीके पीछे हल कैसे चला सकते हैं? हाँ साहब ऐसी बदतमीज़ी हमसे नहीं होगी!" इतना कहकर शायर चाचा खेत छोड़कर चले गए और दलीप पलटकर मुर्ग़बाज़ चाचा के पास गया। और उनसे कहने लगा, "मैं आपको घास काटने के लिए कह गया था।"

मुर्ग़बाज़ चाचा कड़ककर बोले, "देखते नहीं हो, अभी तो मैं अपने रुस्तमे—हिन्द को नहला के फ़ारिग़ हुआ हूँ। मारे मशक़्क़त के कमर दुहरी हुई जा रही है। फिर भी मैं घास जरूर काट देता। मगर यकायक मुझे ख़्याल आया। आज तो इतवार है, और इतवार के रोज़ कोई शरीफ़ आदमी काम नहीं करता!"

दलीप बोला, "नहीं चाचाजी, किसानों को इतवार के रोज़ भी काम करना पड़ता है!"

"साहब! ये तो ग़रीब किसानों पर बड़ा जुल्म है!" मुर्ग़बाज़ चाचा बोल उठे "बड़ी नाइन्साफ़ी है कि इतवार के रोज़ भी हम किसानों को छुट्टी न मिले! नहीं जनाब, हम किसान लोग कभी इतवार को काम नहीं करेंगे!"

इतना कहकर मुर्ग़बाज़ चाचा तुरंत वहाँ से खिसक गए, दलीप को गुस्सा तो बहुत आया मगर उसने अपने गुस्से को पी लिया। उसे अच्छी तरह मालूम था, कि इन लोगों को सीधी राह पर लाने के लिए बड़े धैर्य और समय की आवश्यकता है। अपना पित्ता मारना होगा। तभी ये लोग ठीक हो सकते हैं। गुस्सा करने से कुछ प्राप्त न होगा। इसलिए उसने अपने गुस्से को अच्छी तरह पी लिया। और अपने चेहरे पर मुस्कराहट लाकर उस छप्पर के नीचे गया, जहां पतंगबाज़ पृथ्वीराज बच्चों की लम्बी कतार के साथ पतंग-डोर, मांझे और चरख़ी में व्यस्त थे। दलीप उनसे कहने लगा बड़ी नरमी से, "भैया! मैं आपको बैलों के लिए छप्पर बांधने के लिए कह गया था!"

"अमाँ यार तुम भी ग़ज़ब करते हो!" पृथ्वीराज तुनककर बोला, "अभी तो मैं पतंग का मांझा लगाने से फ़ारिग़ नहीं हुआ हूँ। छप्पर कैसे लगा दूं!"

"तो मांझे से फ़ारिग़ होकर छप्पर बांध दीजिए।"

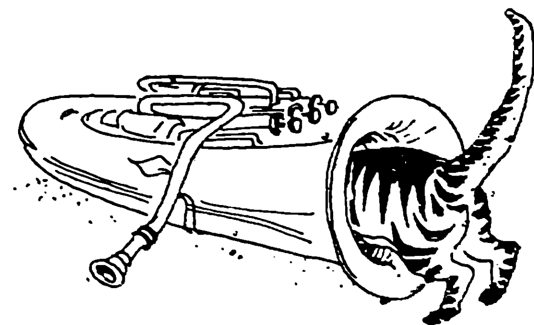
"मांझे से फ़ारिग़ होकर, तो मैं पतंग बनाऊंगा!"

"तो पतंग बनाने में कौनसी सदियां लग जाएंगी।" दलीप ने जवाब दिया, "एक कागज़ चाहिये और दो लकड़ी की खपच्चियां! दो मिनट का काम है?"

"मियाँ, तुम काम की नज़ाकत तो समझते नहीं हो।" पृथ्वीराज बोला, "अनाड़ी जो ठहरे। तुम्हें क्या मालूम कि पतंग महज़ कागज़ और लकड़ी की खपच्ची का नाम नहीं है, एक पतंग में कांप, ठड्डा होता है, पन्ना होता है, कन्नी होती है, तुक्का होता है, पनछल्ला होता है। सुबह से शाम हो जाती है, तब कहीं जाकर एक अच्छी पतंग तैयार होती है।"

दलीप वहाँ से निराश होकर बड़े ठाकुर के पास पहुंचा, तो वह मोहन सिंह के साथ शतरंज खेल रहे थे और जब दलीप को मालूम हुआ कि किन क्वालिफिकेशन के बलबूते पर मोहन सिंह को नौकर रखा गया है तो वह बहुत ही ख़फ़ा होकर बोला, "मगर चाचाजी हमें शतरंज का खिलाड़ी नहीं, खेती-बाड़ी का काम करने वाला चाहिये।"

बड़े ठाकुर ने कहा, "वह भी कर लेगा, वह भी कर लेगा।







जो आदमी शतरंज की चाल इतनी अच्छी चलता हो, उसके लिए खेती-बाड़ी क्या मुश्किल है ? "

दलीप ने कहा, " उनकी चाल तो मैं अभी देख लेता हूं । " फिर उसने मोहन सिंह को सम्बोधित किया, " जरा आओ मेरे साथ ! " मोहन सिंह तुरंत उठ खड़ा किया । और दलीप उसे खेतों में ले गया और उसके हाथों में दरांती देकर बोला, " तुम्हारा नाम क्या है ? "

" मोहन सिंह । "

" तुम्हारे माँ-बाप कहां हैं ? "

" मां तो मर चुकी है, बापू शूगर फ़ेक्टरी में काम करता है । "

" तुमने कहाँ तक पढ़ा है ? "

" मैट्रिक पास हूँ ! "

" तो शूगर मिल में नौकरी क्यों नहीं कर ली ? "

" वहाँ मुझे कोई नौकरी नहीं मिली । "

" हूँ ! " कहकर दलीप सोच में पड़ गया ! मोहन सिंह को ऐसा मालूम हुआ, जैसे दलीप उसे काम से इन्कार करनेवाला है। इसलिए उसने बड़े विनय से कहा, " सच बात यह है, कि मैं मिल में काम करना नहीं चाहता। मुझे खेती-बाड़ी का शौक है। मैंने यह काम कभी नहीं किया है लेकिन शौक़ बहुत है। मुझे खुले आसमान तले, खुली हवा में काम करने का शौक है। दिल से मैं एक किसान हूँ। काम नहीं जानता, लेकिन सीख जाऊंगा। और जब तक न सीखूं आप मुझे एक पैसा न दीजिए। "

दलीप ने तेज़ निगाहों से मोहन सिंह की तरफ देखा, उसे उस नवयुवक का अबोध, स्नेहपूर्ण और विश्वासयुक्त स्वर बहुत पसंद आया। अभी कुछ क्षण पहले वह उसे साफ़ जवाब देने की सोच रहा था। लेकिन उसकी बातें सुनकर उसका दिल पिघल गया और उसने अपना इरादा बदल दिया, बल्कि दिल ही दिल में तजुर्बे के तौर पर कुछ महीने मोहन सिंह को अपने साथ रखने पर तैयार हो गया। उसने एक दरांती खुद उठा ली और मोहन सिंह को इशारा करते हुए बोला, " आओ, काम करो—मेरे साथ–उन मेंढ़ों पर उगी हुई घास काटो । "

" घास ? "

" हां-लोग कहते हैं, घास काटना बहुत आसान काम है। लेकिन वास्तव में यह बहुत मुश्किल काम है। सबसे पहले दरांती पकड़ना सीखो फिर घास के गुच्छे पकड़ना सीखो। फिर दरांती से घास काटना। फिर घास काटकर गट्ठा बनाना इस काम के चार मरहले हैं, चारों तुम्हें सीखने होंगे। "

मोहन सिंह दलीप के निकट बैठ गया और दलीप उसे सिखाने लगा। मोहन सिंह एक अच्छा शिष्य साबित हुआ। बहुत जल्द उस ने घास काटना सीख लिया। और फिर दलीप और मोहन सिंह, दोनों बैठकर घास काटने लगे।

थोड़ी देर के बाद मोहन सिंह के मुख से एक चीख निकल गई। दलीप ने घास काटते-काटते अपना हाथ रोककर पूछा " क्या हुआ ? "

मोहन सिंह सर झुकाए खामोश हो गया। उसकी उंगली कट गई थी। और उसके हाथ से खून निकलकर घास पर बह रहा था। दलीप ने अपनी दरांती फेंक दी और पीछे मुड़कर मोहन का हाथ पकड़कर उसे ऊंचा किया, और बहते हुए लहू को देखकर बोला, " अरे–र–र–रे उंगली कट गई। "

मोहन की आंखों में आँसू आ गए। अपने ओंठ चबाते हुए धीरे से बोला, " बहुत दर्द हो रहा है। "

दलीप ने मोहन के हाथ को छूते हुए कहा, " ये हाथ तुम्हारे कितने कोमल और नर्म हैं, सरदारजी ! जैसे किसी लड़की के हों ! मालूम होता है, जैसे जिन्दगी भर इन हाथों ने कोई सख्त काम नहीं किया है। "

मोहन सिंह रोआंसा होकर बोला, " एक तो हमारी उंगली कट गई है, उस पर आप मज़ाक़ करते हैं। "

" सॉरी ! " दलीप गम्भीर होकर बोला, " ठहरो—मैं तुम्हारे लिए दवा लाता हूं। "

थोड़ी देर के बाद दलीप दवा और पट्टी लेकर आया, और उसने मोहन सिंह की उंगली साफ़ करके उस पर दवा लगाकर उस पर पट्टी बांधने लगा। पट्टी बांधते-बांधते वह कहता जाता था, " आजकल हमारे देश में नर्म और गुलगुले नवयुवकों की एक नई नस्ल तैयार हो रही है, जो मांस और हड्डी के बजाय, स्पंज के बने हुए मालूम होते हैं। ये लोग रॉक एन रोल के सिवा ज़िन्दगी की ओर कोई कला नहीं जानते ! "

" मुझे रॉक एन रोल से नफ़रत है। " मोहन सिंह बोला, " और मुझे ऐसे तमाम नौजवानों से नफ़रत है। और मैं तुम्हें चंद रोज़ के बाद काम सीख के बताऊंगा कि मैं कैसा नौजवान हूँ। मुझे मौक़ा दीजिये दलीप बाबू ! "

* * * *

उसी रात को सन्ध्या और उसका बाप डायनिंग रूम में बैठे हुए खाना खा रहे थे। तो सेठ धनपत राय ने सन्ध्या के हाथ पर पट्टी बंधी देखकर पूछा, " तुम्हारी उंगली को क्या हुआ ? "

सन्ध्या बोली, " पिताजी मैं पास के एक गाँव में तस्वीर बनाने गई थी। वहीं इस उंगली में कांटा चुभ गया ! "

सेठ ने सूप प्लेट में चमचा डालते हुए कहा, " कांटों से नहीं खेला करते बेटी ! "

कुछ सोचकर सन्ध्या के कपोल आरक्त होते गए मगर वह मुँह से कुछ नहीं बोली। सर झुकाकर खाने लगी।

४

संग्रहा परिवार के बच्चे अपने निकम्मे माता-पिता के अनुकरण में दिन-रात आवारा घूमते थे। और अपने मां-बाप की देखा-देखी उनके काम भी वही हो गए थे, जो उनके माँ-बाप के थे। मोहन सिंह ने खेतों में काम करने के अलावा उन बच्चों को पढ़ाने की ड्यूटी भी अपने जिम्मे ले ली। और दलीप, मोहन सिंह की इस सतर्कता पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। जब उसने देखा, कि दूसरे दिन ही प्रातःकाल मोहन सिंह कहीं से एक ब्लेक-बोर्ड उठा लाया है, और बच्चों को जमाकर के उसने उनके हाथों में तख्तियां देकर उन्हें ब्लेक-बोर्ड के सामने बिठा दिया है। और उनसे 'क' लिख कर कह रहा है। "यह 'क' है। 'क' से काम होते हैं। जो बच्चे काम करते हैं, वह जीवन में इनाम पाते हैं। इसलिए बोलो बच्चो 'क' से काम!"

पृथ्वीराज पतंगबाज़ का बड़ा बेटा बोल उठा, "'क' से काम नहीं होता मास्टर जी, कन्कौवा होता है, जो मेरे पिताजी रोज़ उड़ाते हैं।"

तो चिड़ियाँ पालनेवाले चाचा का बेटा बोला, "जी नहीं 'क' से कबूतर होता है। मेरे पिताजी के पास बहुत से कबूतर हैं।"

"——जी नहीं, 'क' से कविता होती है, जो पिताजी कहते हैं।" शायर चाचा का लड़का बोल उठा।

"गलत 'क' से काक होता है, शराब की बोतल का, जो पिताजी रोज़ पीते हैं"

"अच्छा! अच्छा!!" मोहन सिंह जल्दी से बोला, "शोर-गुल मत करो। 'क' से कन्कोवा 'क' से कबूतर 'क' से कविता-'क' से कॉक सही—मगर 'क' लिखा इसी तरह जाता है जिस तरह मैंने उसे ब्लेक-बोर्ड पर लिखा है इसलिए अब तुम सब बच्चे इस अक्षर को अपनी-अपनी तख्ती पर इसी तरह लिखो।"

सब बच्चे 'क' के अक्षर को अपनी तख्तियों पर लिखने लगे। तो इतने में मोहन सिंह ने 'क' के बाद दूसरा अक्षर 'ख' लिख दिया और बोला, "देखो 'क' के बाद 'ख' आता है। 'ख' से खेत। जिनमें फ़सल उगती है। ये सामनेवाले खेत! जिनकी रोटी हम सब खाते हैं। इसलिए 'ख' से खेत होता है। समझ गए?"

सब बच्चे ज़ोर से बोले, "समझ गए!"

"क्या समझे—'ख' से क्या होता है?" मोहन सिंह ने पूछा, "जो बच्चा समझ गया हो वह हाथ ऊंचा करे।" सभी बच्चों ने हाथ ऊंचे कर दिए। मोहन सिंह ने मुर्गबाज़ चाचा के लड़के से पूछा, "इन्द्रजीत तुम बताओ? 'ख' से क्या होता है?"

"'ख' से खांचा होता है मास्टरजी!" इन्द्रजीत बोला!

""खाँचा?" मोहन सिंह ने हैरान होकर पूछा, "खाँचा क्या होता है?"

"खांचा वह होता है, जिसमें मुर्गे को बंद करते हैं!"

इस पर दूसरा लड़का उठ खड़ा हुआ और बोला, 'ख' से खेसरा कबूतर होता है, जो सीधा ऊपर उड़ता है!"

"गलत 'ख' से खिच्चम होती है।" पृथ्वीराज के बेटे श्याम सिंह ने जवाब दिया।

"खिच्चम क्या होती है?" मोहन सिंह ने श्याम सिंह से पूछा,

"लो मास्टरजी को ये भी नहीं मालूम, खिच्चम क्या होती है?" श्याम सिंह ने मुड़कर अपने दोस्तों से कहा और सारे

नइ सापनीति



एक भेड़िया अपनी सीमा को पारकर पानी के बहाने दूसरे की सीमा में घुसा। वहा सोते के किनारे एक बकरी के मासूम बच्चे को देखते ही उसके मुंह में पानी भर आया। वह एकाएक बकरी के बच्चे पर उबल पड़ा, "ऐ बकरी के बच्चे, मेरी तरफ़ के पानी को जूठा कर उस पर मुझे ही गालियां देता है!" बकरी के बच्चे ने नम्र शब्दों में कहा, "चाचा मैं तो बालक हूँ, इतना पानी भला कैसे जूठा कर सकता हूं? और गालियां! मेरा अहिंसक और शाकाहारी मुख की तोतली बोली अभी रामधुन भी तो ठीक से नहीं गा सकती।" भेड़िया गुस्से से लाल होकर बोला, "तूने नहीं तो तेरे बाप ने या चाचा-मामा ने दी होंगी और शायद तेरे बच्चे भी देंगे, हरामखोर!" ऐसा कहकर वह बकरी के बच्चे पर झपटा और उसे निगल गया।

लड़के-लडकियाँ हंस पड़े। फिर श्याम सिंह बड़े गर्व और घमंड से मुड़कर मास्टरजी से कहने लगा, "अजी, मास्टरजी खिन्चम उड़ती हुई पतंग की खिंचाई को कहते हैं! ऐसे...ऐसे..."श्याम सिंह हाथ के संकेत से खिंचाईकर के खिन्चम के अर्थ बताने लगा।

मोहन सिंह को पसीना आ गया। वह जल्दी से रूमाल निकाल कर अपना पसीना पोंछकर किसी कदर कड़े स्वर में बोला, "नहीं 'ख' से न खींचा होता है, न खेसरा-न खिन्चम! सब भूल जाओ याद रखो 'ख' से खेत होता है, खेत लिखो!"

सब बच्चे अपनी-अपनी तख्तियों पर झुककर लिखने लगे। दलीप मुस्कराकर वहाँ से चला गया। उन शैतान के बच्चों को काबू में लाना कोई आसान काम नहीं है। लेकिन जिस तत्परता और प्रेम से मोहन सिंह काम कर रहा था उससे उसे विश्वास हो चला था, कि अगर मोहन सिंह ने इस तरफ बराबर ध्यान दिया, तो वह दो-चार दिन में तो नहीं, दो-चार महीने में उन बच्चों को सीधे रास्ते पर लाने में कामयाब हो जाएगा!

लेकिन असल समस्या तो उन बच्चों की नहीं, उन बच्चों के माँ-बाप को ठीक करने की थी! उम्र के साथ-साथ उनकी आदतें इतनी पक्की हो चुकी थीं, कि उन्हें अपनी मरज़ी के अनुसार ढालने के सब तजुर्बे अभी तक असफल थे!

असमर्थ होकर दलीप ने पालनगढ़ के दूसरे किसानों से बात-चीत कर ली। और उन्हें अपनी फ़ार्म की फ़सल का आधा हिस्सा देने का वायदा कर के उन्हें फ़ार्म की ज़मीन पर गन्ना उगाने के काम पर राज़ी कर लिया। गाँव के किसान अपनी-अपनी ज़मीनों की देख-भाल के बाद, फ़ार्म पर आकर भी काम करने लगे, किसानों को काम पर जुटे देखकर परिवार के दूसरे ठाकुरों को बिल्कुल इतमीनान हो गया। और वह अपनी पिछली जिन्दगी के ढर्रे पर चलने लगे। काम-काज से उन्होंने बिल्कुल ही हाथ उठा लिया। और उधर दलीप ने भी उनकी सुस्ती और काहिली देखकर, उन्हें कहना-सुनना छोड़ दिया और अपने काम में लग गया। धीरे-धीरे खेतों में फ़सल सर उठाने लगी। और हरियाली चारों तरफ़ सर उठाने लगी। और दलीप का मन खुशी से भरपूर होने लगा। उसकी आँखों में आशा झलकने लगी। अगर इसी तरह काम होता रहा, तो धीरे-धीरे कुछ ही बरसों में वह सारे क़र्जे चुका देगा और अपने पुरखों की गिरवी रखी हुई हवेली वापिस ले लेगा। और संग्रहा परिवार के दिन फिर जाएंगे और उन लोगों को फिर से विराम और सुख नसीब होगा। किसीके लहू में नहाया हुआ सुख नहीं, बल्कि अपनी मेहनत से हासिल किया हुआ सुख!

मोहन सिंह हर समय उसके साथ-साथ रहता था। अब वह अपने काम में काफ़ी होशियार हो गया था। किसानों की सी ताक़त तो उसके शरीर में न थी और न ही वह अनुभव उसे प्राप्त था। लेकिन उसकी व्यस्त-गति और कार्य की लगन देखकर दलीप बहुत खुश होता था। और हर वक्त उसे अपने साथ रखता था। कभी-कभी अपने दिल के सपने भी उसे बताता, कभी उसे खेतों से परे अपनी हवेली के पीछे ऊंचे-नीचे टीलों के नीचे बहती हुई नदी के किनारे ले जाता। और मोहन सिंह से कहता,

"एक दिन मैं इस नदी से एक नहर निकालूंगा। और अपने फ़ार्म में ले आऊँगा। फिर हम मौसम की छल-छवियों से बच जाएंगे। और धनताल से पानी लेकर पानी का टैक्स देने पर मजबूर न होंगे इस नहर को काटना मेरे जीवन का सबसे बड़ा सपना है!"

मोहन सिंह ने हंसकर कहा, "एक नहर फ़रहाद ने भी काटी थी।"

दलीप देर तक चुप रहा। फिर वह मुँह फेरकर खड़ा हो गया। और धीरे-धीरे बोला, "मेरे पास मुहब्बत के लिए कोई वक्त नहीं है!"

मोहन सिंह ने कहा, "मुहब्बत का कोई वक्त नहीं होता!"

दलीप ने एकदम घूमकर अपना हाथ उसके कंधों पर रख दिया और तेज़ लहजे में बोला, "मुहब्बत की फ़सल उगाने के लिए उतना ही वक्त चाहिए, जितना मुहब्बत की फ़सल काटने के लिए। और मैं इन दोनों में से सिर्फ़ एक को वक्त दे सकता हूं!"

फिर वह कुछ पलों की दुखद खामोशी के बाद बोला, "मोहन सिंह खुले आसमान में घूमते हुए सफेद बादलों को देखकर किसका जी मुहब्बत करने को नहीं चाहता। हरे और नीले पंखोंवाले नीलकंठ को नदी की चंचल लहरों पर मचलते हुए देखकर किसका जी मुहब्बत से छलकती हुई आंखों में डूब जाने को नहीं चाहता लेकिन ज़िन्दगी की ज़िम्मेदारियां, मुहब्बत की ज़िम्मेदारी से बहुत बड़ी हैं! तुम अभी बच्चे हो! नहीं, समझ सकोगे!"

यकायक दलीप चुप हो गया। उसका परेशान और चिंतित चेहरा देखकर मोहन सिंह को उस पर बहुत तरस आया। उसका जी चाहा, कि वह दलीप के झुके हुए सर को अपने सीने पर रख ले और उसके परेशान बालों में धीरे-धीरे उंगलियाँ फेरे। मगर वह चुप रहा। और जब दलीप कुछ पलों के बाद, खेतों की तरफ मुड़ा, तो वह भी उसके कदमों के पीछे-पीछे खामोश हो कर चलता गया और चलते-चलते एक अजीब सी उदासी और थकान से उसके कदम भारी होते गए!

एक दिन मोहन सिंह ने फ़ार्म से एक रोज़ की छुट्टी ली। हुआ ये कि सेठ धनपत राय ने अपने मित्र सेठ जीवन लाल के लड़के मनमोहन को सन्ध्या के लिए पसंद कर लिया और बात भी पक्की कर ली। और जब उसने ठोंक-बजा कर अच्छी तरह इतमीनान कर लिया तो उसने सेठ जीवन लाल और मनमोहन की अपने घर पर दावत की। इस दावत के लिए उसने सेठ जीवन लाल और

उसके लड़के को कानपुर से बुलाया था। इसलिए इस मौके पर सन्ध्या की मौजूदगी बहुत ज़रूरी थी।

सेठ धनपत राय ने अपनी बेटी से इस सम्बंध में कोई बात नहीं की थी। उनका इरादा इस दावत के बाद बात-चीत करने का था। लेकिन सन्ध्या बाप की मनोभावना-भाँप चुकी थी। वैसे वह उन बातों से स्पष्ट रूप में अज्ञान दिखाई देती थी। मनमोहन उसे बहुत ही सज्जन और अच्छा नवयुवक दिखाई दिया। देखने में भी अच्छा था, बात-चीत करने में भी। उसके बाप की कानपुर में तीन मिलें थीं और चलासी के स्थान पर शराब बनाने का एक कारखाना था। मनमोहन भी अपने बाप का इकलौता बेटा था, जिस तरह सन्ध्या अपने बाप की इकलौती लड़की थी। हर रूप में ये रिश्ता अच्छा और उचित दिखाई देता था।

दावत बहुत ही कामयाब रही। ख़ास इस मौक़े के लिए सेठ धनपत राय ने लखनऊ से दो बावर्ची बुलवाए थे। जो मुग़लई खानों के माहिर समझे जाते थे! और सेठ जीवन लाल और उन के बेटे मनमोहन को भी बढ़िया खानों का बहुत शौक था। इसलिए लखनऊ के बावर्चियों के मुग़लई कबाब, अस्तंबोली क़ोर्मा, ज़ाफ़रानी तिक्के और चार स्वाद बहुत पसंद किए गए। पीने के लिए स्पेन और फ्रान्स की अपूर्व शराबें थीं। और बात-चीत का विषय शक्कर के भाव से रेयान और चमड़े के जूतों तक बदलता रहा। क्योंकि सेठ जीवन लाल को पूर्वी यूरोप की एक रियासत में बीस लाख जूते सप्लाई करने का आर्डर मिला था। और उस आर्डर की पूर्ति के लिये आगरे में जूतों की एक फ़ेक्टरी खोलने की बड़ी ज़रूरत थी। मतलब यह कि बहुत ही दिलचस्प और मज़ेदार बातचीत रही। जो संध्या के लिए शिक्षाप्रद थी।

उन लोगों के चले जाने के बाद, तीसरे पहर की चाय पर बाप ने बेटी से मुख्य विषय पर बात की तो सन्ध्या ने साफ़ इन्कार करना ही उचित समझा। सेठ धनपत राय को अपनी बेटी की प्रतिक्रिया पर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह समझ ही न सका कि सन्ध्या को क्या हो गया है।

"सेठ जीवन लाल का परिवार कानपुर का सबसे ऊँचा परिवार है। वह लोग अरबों की जायदाद के मालिक हैं।"

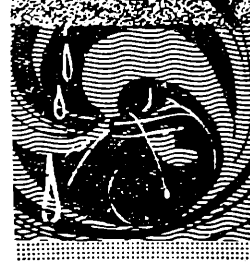
"मेरा बाप भी एक करोड़पति है!" सन्ध्या ने जवाब दिया।

"लड़का अच्छा है। शरीफ़ है, पढ़ा-लिखा है, और अक़ल-मंद है।"

"हाँ!" सन्ध्या ने मंजूर किया, "मेरे खयाल में वह तक़रीबन एक फ़रिश्ता है लेकिन जिस दिन मैं एक फ़रिश्ते से शादी करने पर तैयार हो जाऊंगी, तो आप को ज़रूर इत्तिला कर दूंगी।"

"ख़ूबसूरत भी है।"

"बिल्कुल खाँड का बना हुआ मालूम होता है।" सन्ध्या ने



चाय की पार्टी

अनन्त कुमार पाषाण

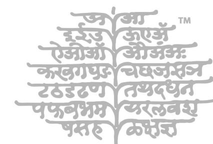
नीले शामियाने में यह कैसा उत्सव है!
चाय की पार्टी कब से चल रही है?
मेजबान गायब हैं, मेहमान कितने ही
मेज़ों के जंगल में पतझर के पत्तों से
उड़ते फिर रहे हैं।

दावत शुरू होने के बहुत-बहुत बाद ही
बिना किसी न्योते के मेहमान आये हैं,
हँसी की नदी के ताले खुल रहे हैं।
नज़र के पहाड़ों पर बादल घिर रहे हैं।

हर कुर्सी के नीचे अंधे तहख़ाने हैं,
लाल मेज़पोश पर काले चारख़ाने हैं।
चाय की केतलियाँ ठंडी हैं, खाली हैं;
तले आमलेटों में मुर्गी के बच्चों का
रुदन है।
दरियों के नीचे क्षत साँपों की देह है—
लहरों सी झुर्रियाँ जीवन के तटों पर
जमा हो रही हैं।
अपनी आवाज़ में अपने ही कानों की
बिना पाल की नावें डुबो सब चुके हैं,
शक्लों के घने पेड़ अपनी ही जड़ों पर
थके हुए झुके हैं।

कुर्सियाँ खिसक कर जा रही हैं,
खाने की चीजों को मेजें खा रही हैं।
सब थक गये हैं बुरी तरह ऊब कर
लेकिन कहीं कोई भी, उनका घर नहीं है

अनुक्रमणिका





कभी-कभी कोई जा कुरसी के नीचे, फिर
नीचे ही नीचे को गहरे तहख़ाने में
पत्थर-सा डूब कर ओझल हो जाता है।
कोई चढ़ सीढ़ियाँ बाहर आ जाता है।

अंधी भिखमंगन-सी याद पथ टटोलती,
घर के दरवाज़े के पास बुला रही है।
थक कर यह मंडली बाँहें रख मेज़ पर
सोती जा रही है।
मेजवान चिन्तित हो सबके पास जा-जा कर
सत्कार कर रहे हैं,
बच्चों-से बूढ़ों को प्यार कर रहे हैं।

लेकिन भेस बदले इस राजा को
अंधी भिखमंगन पहचान नहीं पाती है,
सब ही ख़ुद अपने को मेजवान समझे हैं—
माजरा देख मेजवान चिन्तित हैं,
थके हैं।

कुछ का यह कहना है
मेजवान शामियाने की छत पर ही रहते हैं,
कोई विचारवान
बूढ़ी कल्पना का पुत्र उन्हें कहते हैं।

मैंने पहचान लिया, अच्छी तरह जान लिया,
मेजवान हर्षित हो गले मिल रहे हैं,—
मानस में तुलसी की मञ्जरियाँ खिलती हैं,
शिशिर को गया देख हिम पिघल रहा है,
हंस मानसरोवर के घर लौट रहे हैं।

केशों के साँपों पर मोर नाच रहा है,
खुली हुई बाँहों में आश्रय की छतें हैं।
आँखों में परिचय के गीतों की गतें हैं।
सिंहकटि घेर कर लहराता है वसन्त—
पावस के नयन मुग्ध यह मिलाप तकते हैं।

दावत-चटोरों को दावत मुबारक हो,
हम तो अब अपना मेजवान पा गये।
दावत उसीकी है जो दावत छोड़ दे,
जीभ के चटोर तो बस मुँह की खा गये।

सर हिला के कहा, "उसे देखते ही जी चाहता है कि उसे मुंह में डाल लिया जाय!"

सेठ धनपत राय हैरत से अपनी बेटी की तरफ़ देखने लगे। क्या यह उनकी बेटी थी। तेरह साल की अबोध, शरमीली बच्ची, जिसे उसने पश्चिमी यूरोप में ऊंची शिक्षा के लिए भेजा था! वो तो कोई दूसरी ही लड़की थी। किसी दूसरी ही ज़मीन की पैदावार! उसने झल्लाकर कहा, "आखिर तुम मनमोहन में क्या ख़राबी देखती हो?"

"कोई ख़राबी नहीं देखती!"

"क्या बुराई है उसमें?"

"कोई बुराई नहीं! यही तो बुरी बात है।" सन्ध्या अपना अर्थ स्पष्ट करते हुए बोली, "मुझे बुरे आदमी पसंद हैं। कड़वे-तीखे और खुरदुरे! जो कभी-कभार दो हाथ भी लगा दिया करें। तो मुज़ायका न होगा!"

"कैसी बातें करती हो तुम!"

"कुछ नहीं सिर्फ अपनी पसंद बयान कर रही हूँ।

"तो क्या तुम मनमोहन से शादी नहीं करोगी?" उसका बाप गुस्से से तकरीबन चिल्ला पड़ा, "मुझे मालूम न था, मैंने तो सब कुछ तकरीबन तय कर लिया था।"

"मैं हरगिज़, हरगिज़ मनमोहन से शादी नहीं करूँगी!"

"क्या तुम्हें मालूम है!" उसका बाप अपने होंठ चबाते हुए बोला, "हमारी मिल से तीन-चौथाई मोलास उनके शराब के कारखाने को सप्लाई होता है! हर साल लाखों का फ़ायदा हमें उनके कारखाने से होता है!"

"तो गोया आप एक कारखाने की शादी दूसरे कारखाने से चाहते हैं, न कि एक इन्सान की दूसरे इन्सान से!" सन्ध्या शोकपूर्ण स्वर में बोली, "मुझे बहुत अफ़सोस है, पिताजी! मैं मोलास की ढेरी नहीं, एक लड़की हूं!"

इतना कहकर सन्ध्या अपनी आँखों में आंसू छिपाए तेज़ी से कमरे से निकल गई। और उसका बाप ईरानी ग़लीचे पर कदम जमाए सिगार की राख झाड़ता, हक्का-बक्का खड़ा रह गया।

अपनी स्टडी में जाकर, सन्ध्या ने रंगों के डिब्बे-ब्रश-एज़ल और चित्र-कला का अन्य सामान उठाया। गैरेज से गाड़ी निकाली और साठ मील की रफ्तार से बाहर सड़क पर चली गई। तस्वीर बनाने में वक्त अच्छा कट जाता है, और धीरे-धीरे दिल का दुख भी दूर होने लगता है।

कुछ मील आगे जाकर उसे अपनी गाड़ी रोक देनी पड़ी। उसी पुराने गड्ढे में जो अब बहुत बड़ा हो गया था। एक किसान का छकड़ा धंस गया था और किसान सर झुकाए दोनों हाथों से छकड़े को आगे धकेलने की नाकाम कोशिशें कर रहा था। गाड़ी की

अनुक्रमणिका





आवाज़ पर वह किसान चौंका और सर उठाकर सन्ध्या को देखने लगा। और अगले कुछ क्षण सन्ध्या पर अजीब सी हालत में गुज़रे। मगर उसे यह देखकर इतमीनान हुआ कि दलीप ने उसे नहीं पहचाना।

दलीप ने सर उठाकर चंद लमहों के लिए उसकी तरफ़ देखा, फिर बड़े इतमीनान से कमर सीधी कर के खड़ा हो गया। और बोला, "मेम साहब! जब तक मेरा छकड़ा इस गड्ढे से बाहर नहीं निकलेगा तुम्हारी मोटर भी आगे नहीं जा सकती!"

सन्ध्या को उसका व्यंग-पूर्ण स्वर बिल्कुल पसंद नहीं आया। झुंझलाकर सोचने लगी-यह कमबख्त मुझे पहचानने तक की कोशिश नहीं करता। एक बैल की तरह, अपनी धुन में अपने काम में मगन चला जाता है। उसके लिए मोहन सिंह भी कुछ नहीं और सन्ध्या भी कुछ नहीं। और अगर ये दोनों एक भी हों, तो भी कुछ नहीं। इसे सिर्फ़ अपने काम और अपने खेतों से मतलब है। गधा-बैल! सन्ध्या ने दिल ही दिल में कहा फिर ऊंची आवाज़ में बोली, "ओह—कहाँ बीच सड़क में तुमने अपने छकड़े को फंसाया है।"

"मैंने फंसाया है!!" दलीप आश्चर्य से बोला, "कल तुम कहोगी, ये सड़क का गड्ढा भी मैंने खोदा है!"

"तुम नहीं तो तुम्हारे बैलों ने खोदा होगा?" सन्ध्या के मुंह से निकला और वह भीतर-ही-भीतर मन में सोचने लगी ये क्यों सदा मुझसे लड़ता है। मैं सदा क्यों इससे लड़ती हूं। ये इतनी उपहास भरी निगाहों से मुझे क्यों देखता है। क्या समझता है ये? उसकी जरखरीद लौंडी हूं या गुलाम हूं? फिर वह ऊंची आवाज़ में बोली, "अगर इस सड़क पर किसानों की बैल गाड़ियाँ चलना बंद हो जाएं तो यहाँ एक गड्ढा भी दिखाई न दे।"

दलीप ने कहा, "अगर इस सड़क पर किसानों की बैलगाड़ियाँ चलना बंद हो जायें, तो तुम्हारी मिल भी बंद हो जाए और अगर तुम्हारी मिल बन्द हो जाए तो तुम्हारी मोटरें भी बंद पड़ी-पड़ी छकड़ा हो जाएं। मेम साहब तुम हो किस ख्याल में!"

सन्ध्या तुनककर बोली, "अच्छा-अच्छा, ज्यादा बातें मत करो, अपना छकड़ा गड्ढे से निकालो।"

"आधे घंटे से कोशिश कर रहा हूँ मगर निकलता ही नहीं।"

"लाओ मैं तुम्हारी मदद करती हूँ!"

"आप! आप!" दलीप ने सन्ध्या को सर से पांव तक यों देखा कि सन्ध्या का चेहरा सुर्ख हो गया। और सर से पांव तक उसका जिस्म गुस्से से कांपने लगा।

"क्यों मुझे क्या हुआ है?" वह झुंझलाकर बोली।

"मगर आपके हाथ मैले हो जाएंगे!" यकायक दलीप ने बहुत ही नर्म लहजे में कहा।

"कोई परवाह नहीं!"

"आप की साड़ी खराब हो जाएगी!"

"कोई हरज नहीं!"

"आपका मेकप बिगड़ जाएगा!"

"तुम्हें क्या?"

"जी नहीं—कहां मैं एक गरीब छकड़ेवाला कहाँ आप एक अमीर मिल-मालिक की लड़की। आप मेरी मदद कैसे कर सकती हैं"

जवाब में सन्ध्या दौड़कर छकड़े के पास चली गई। और उसे निकालने के लिए ज़ोर लगाने लगी। और दलीप से बोली, "ज़ोर लगाओ!"

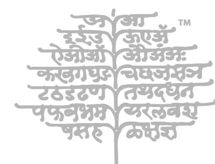
दलीपने कहा, "बहुत ज़ोर लगाता हूं, मगर ये तो चलना ही नहीं अपनी जगह से!"

तीन-चार बार दोनोंने कोशिश कर के देखा। जब छकड़ा किसी तरह गड्ढे से न निकला, तो सन्ध्या बोली, "छकड़ा भारी है!"

"नहीं गड्ढा गहरा है।" दलीप ने उसकी बात काटकर कहा। और सन्ध्या को बहुत गुस्सा आया मेरी हर बात काटता है। कोई बात मेरी इसे अच्छी नहीं लगती। कैसा तेज़ाबी लहज़ा है इसका! किस क़दर मग़रूर है ये! अपनी तमाम तकलीफ़ों और मुसीबतों के बावजूद ये ठाकुरज़ादा, किस क़दर मग़रूर और अपनी जात में मगन है! मगर मैं उसकी मगन का खोल चीर डालूंगी! इसे पहचानना होगा मुझे! मेरे कदमों में गिरना होगा इसे। नहीं तो मैं इसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगी! गुस्से से सन्ध्या ने अपने दांत पीस लिए। मगर मुंह से कुछ भी न बोली। दलीप उसकी तरफ़ देखकर मुस्कराता रहा।

इतने में दो छकड़े पीछे से और आ निकले और उनसे किसान उतरे। और उन्होंने दलीप को पहचान लिया। और फिर वह सब मिलकर धंसे हुए छकड़े को निकालने के लिए ज़ोर लगाने लगे। चंद मिनटों में छकड़ा निकल गया। सन्ध्या भी इस कोशिश में शामिल थी। ज़ोर लगाने के लिए नहीं, अपनी अजीब सी शर्मिन्दगी मिटाने के लिए और जब छकड़ा निकल आया, तो दलीप उस पर बैठ गया। तो उसने सन्ध्या का शुक्रिया अदा करने के बजाय कहा, "देखा मेम साहब अगर अमीर-गरीब दोनों मिलकर ज़ोर लगाएं तो इस देश की गाड़ी बहुत जल्द गड्ढे से निकल सकती है!"

"नामाकूल..." कहते-कहते सन्ध्या की ज़बान रुक गई। क्योंकि अब दलीप ने उसकी तरफ़ से मुंह फेर लिया था। और दूसरे किसानों से बात-चीत करने में इस तरह व्यस्त हो गया था, जैसे उसके लिए, सन्ध्या वहाँ थी ही नहीं। सन्ध्या पांव पटककर अपनी गाड़ी में चली गई। और धीरे से गड्ढे के क़रीब से गाड़ी





निकालकर, इतनी तेज़ गाड़ी की रफ्तार कर दी कि दलीप के बैल बिदकते-बिदकते बचे। गाड़ी चंद लमहों में छकड़ां को पीछे छोड़ती आगे ग़ायब हो गई। और दलीप ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

दलीप जब अपने छकड़े को लेकर वापस पालनगढ़ के फ़ार्म पर पहुंचा, तो उसने मोहन सिंह को खेतों में काम करते हुए पाया। उसने हैरान होकर कहा, "तुमने तो आज पूरे दिन की छुट्टी ली थी न।"

"जी नहीं लगा। इसलिए वापस आ गया।" मोहन ने अपने काम में व्यस्त होते हुए कहा।

दलीप भी उसके साथ काम में लग गया। थोड़ी देर के बाद बोला–

"ये जो मिल के मालिक की लड़की है, उसकी शादी कहीं हो चुकी है?"

"नहीं तो!"—मोहन सिंह रुककर बोला।

"कहीं मंगनी-वंगनी?"

"मैंने तो नहीं सुना—क्यों?" मोहन सिंह ने पूछा!

"यों ही पूछ रहा था।" दलीप ने कहा और फिर अपने काम में व्यस्त हो गया।

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद मोहन सिंह को शरारत सूझी। उसने धीरे से कहा, "कहीं उसके चक्कर में मत फंस जाना। मैंने सुना है, बड़ी चलती हुई लौंडिया है! कई तो उसके यार हैं!"

"बको मत!" यकायक दलीप ने इस तरह गरजकर कहा कि मोहन सिंह भयभीत हो गया। और आश्चर्य से दलीप के चेहरे की ओर देखकर कहने लगा—

"तीन-चार दिन हुए तुम तो खुद मुझसे कह रहे थे कि सन्ध्या बड़ी मग़रूर लड़की है!"

"सो तो है वो!" दलीप बोला, "भगवान ने अगर उसको ख़ूबसूरत बनाया है, तो मग़रूर तो वो ज़रूर होगी। ख़ूबसूरत लड़की मग़रूर न होगी तो क्या बदसूरत लड़की होगी!"

"उस दिन तो तुम कह रहे थे, कि बड़े घर की लड़की बड़ी निकम्मी होती है?"

"अब वो बड़े घर में पैदा हो गई तो उसका क्या क़सूर?" दलीप ने जवाब दिया, "अगर वो निकम्मी है, तो इसके लिए, उसके हालात भी तो ज़िम्मेदार हैं! हमें ये भी तो देखना चाहिए कि बड़े घर की लड़की होकर उसका दिल कैसा है? लोगों से उसका व्यवहार कैसा है? उसके विचार कैसे हैं? क्योंकि एक लड़की बड़े घर में पैदा हुई है, इसलिए ज़रूर बुरी होगी, ये मैं कैसे मान लूं?"

मोहन सिंह ने धीरे से कहा, "तुम कभी कुछ कहते हो, कभी कुछ! तुम्हारे दिल का भी कुछ पता नहीं चलता!"

मोहन सिंह को तो सन्ध्या की प्रशंसा से खुश होना चाहिए था, लेकिन उसके दिल में अजीब प्रकार की डाह और जलन की भावना सन्ध्या के लिए उभरने लगी। इतने समय तक दलीप के साथ काम करते हुए, उसने मोहन सिंह के रूप में दलीप से बड़ी घनिष्ठता और मित्रता का एक ऐसा सम्बंध बना लिया था, जिससे सन्ध्या बहुत दूर थी। अब, जब वो दलीप में सन्ध्या के लिए नर्म और मीठी भावनाओं को उभरते हुए देखने लगा, तो उसके दिल में अजीब सी चुभन महसूस हुई। और उसका जी कुछ क्षणों के लिए–एक विचित्र सी उदासीनता से भर गया। जैसे सन्ध्या वो खुद न हो, कोई और हो! दूर बहुत दूर किसी महल में बसनेवाली, एक निकम्मी लड़की, जो किसी तरह दलीप की मुहब्बत की हक़दार नहीं थी उसे क्या हक़ था कि मोहन सिंह की मुहब्बत में अपना हिस्सा बँटाए? पहली बार उसका मन डाह की भावना से परिचित हुआ और चंद लमहों के लिए ज़मीन उसे पांव के नीचे से खिसकती हुई महसूस हुई। इतने दिनों तक दलीप के साथ काम करते हुए उसे मर्द बनकर बड़ा मज़ा आया था। मर्द होने में कितनी आसानियाँ हैं–कितने सुख हैं–मर्द से मर्द की बराबर की दोस्ती भी कैसी गहरी और मज़बूत हो सकती है, उसका उसे अब अनुभव हुआ। और ये सोचकर उसका दिल कुछ क्षणों के लिए बहुत ही भयभीत हुआ कि कहीं ऐसा तो न होगा, कि मोहन सिंह को सन्ध्या के लिए जगह खालीकर देनी पड़ेगी। हालाँकि उसके दिल ने इससे ज्यादा तो कुछ न चाहा था!

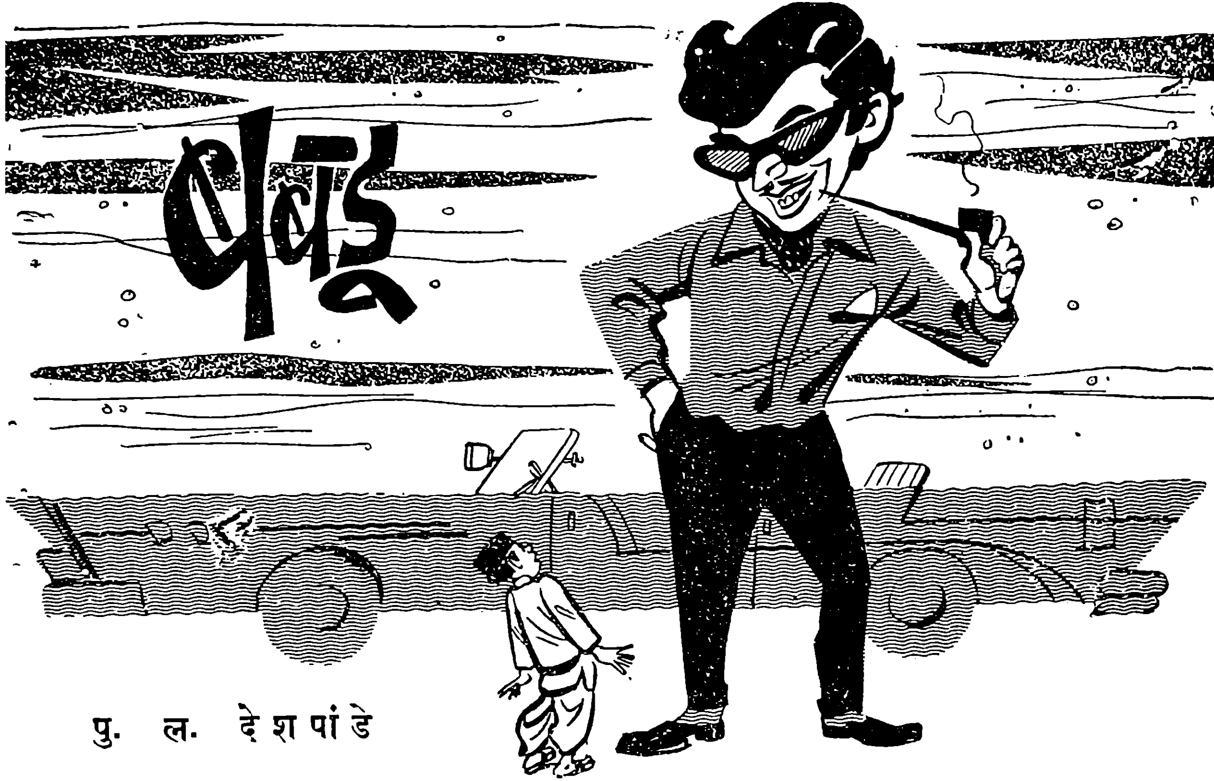
पर कुछ ही पलों के बाद, जब ये आभास उस पर छाया कि वो खुद ही सन्ध्या है, खुद ही मोहन सिंह है। और अपने आपसे जलापा महसूस करने के क्या मानी? तो उसके होंठो से बेइख्तियार हंसी निकल गई।

"क्यों हंस रहे हो?" दलीप ने हैरान होकर पूछा।

"कुछ नहीं यों ही!" मोहन सिंह ने घबराकर कहा।

फ़सल कटने के दिन आ गये। ये दिन कड़ी मेहनत और सुनहरी धूप के दिन थे। और बड़े सुन्दर दिन थे। पूर्ति के आगमन के दिन सदा सुन्दर होते हैं। और उन दिनों में किसानों का हर्ष देखकर मोहन सिंह को अनुभव हुआ कि किसान भी उतना ही रचयिता है, जितना एक चित्रकार! और वो तस्वीरें जो धरती पर बनाई जाती हैं, उतनी ही सुन्दर होती हैं, जितनी वो तस्वीरें जो काग़ज़ पर बनाई जाती हैं। उन दिनों गांव के किसानों की अनथक मेहनत, उमंग और साहस देखकर उसे वो पल याद आते थे, जब किसी तस्वीर की पूर्ति पर चित्रकार के रचयिता हाथ गर्मजोशी और तेज़ी और एक ढलनेवाले तेज़ रचयिता भाव के अधीन काम करने लगते हैं। बल्कि वही भाव था, वही लगन थी, वही दिल की धड़कन जब किसान गाते थे, तो मोहन सिंह भी उनके गीत में

(कृपया पृष्ठ ११५ देखिये)



पु. ल. देशपांडे

जिसे आजाद रहना है उसे जेल की जंजीर चल सकती है पर मुहब्बत की जंजीर नहीं चलेगी। इसीलिए मैं अभी तक इस फंदे में नहीं हूँ। जिंदगी में हजारों औरतें आईं और चली गईं। चवन्नी फें की—सौदा मिटाया दिलको दाग नहीं।

वर्षा की फुहारें आ रही थीं। हाथ में रखे झोले को, क्षण-क्षण में चप्‌चप् करके कीचड़ से कानाफूसी करनेवाले चप्पलों को और डंडी के ऊपर का तार हर तीन मिनट में घोड़े से निकल जाने के कारण फटाक्-से बंद हो जानेवाले छाते को सँभालता हुआ मैं रास्ता तय कर रहा था। नजदीक से गुज़रने वाली मोटरें चप्पलों द्वारा धोती पर काढ़ी गई कीचड़ की नक्काशी पर स्प्रे-पेंटिंग कर रही थीं। झोले में शक्कर थी और इसीलिये मैं इस कोशिश में था कि भले ही प्राण चले जाएँ पर शक्कर न भीग पाए, मैं परेशान हो उठा था। घर अभी तीन फर्लांग और बचा था। तीन मिनट हुए होंगे, क्योंकि घोड़े से तार छूट गया था और छतरी फिर एक बार 'जैसे थे' की स्थिति में आ गया था और जैसे; इस कहावत को चरितार्थ करने के लिए ही कि आपत्ति कभी अकेली नहीं आती, उसी मोड़ पर एक मोटर भी आ पहुंची। मेरे प्राण, धोती और शक्कर इनमें से किसे बचाऊँ इस त्रिधा मनस्थिति में मैं फँस गया। ऐसे समय इस संतवाणी के अनुसार कि 'ज़ो-जो होता रहे उसे देखते रहो' मैं चुपचाप खड़ा हो गया। बंद छाते को हाथ में पकड़े उसी तरह खड़ा था कि इतने में मेरे ध्यान में आयी कि बारिश का ज़ोर उतना नहीं है जितना गा रहा है। शक्कर के झोले को कोट के अंदर छिपा लेने से काम हो सकता था। मोड़ पर आ ज़ाने के कारण मोटर का वेग कम हो गया था। कार काफी बड़ी थी। सड़क और पानी से लबालब भरे नाले के बीच ज्यादा-से-ज्यादा दो फूट जगह थी। ड्राईवरने मोटर मोड़ी और यह देखने के लिए कि बाजू में जगह कितनी है, अपना सिर मोटर से बाहर निकाला। मैंने भी 'आने दो-आने दो-अभी जगह है' कहकर, अपनी भलमनसाहत दिखाई। यह मेरा ऐक सद्गुण है। कोई मोटर जब मुड़ा करती है और मैं वहाँ उपस्थित हुआ

अनुक्रमणिका

तो बिना किसी के कहे खुद ही आगे बढ़कर ड्राईवर से "आने दो–आने दो–बऽऽस"–कह दिया करता हूँ। यह मैं किसी आशा से नहीं करता। सिर्फ़ एक आदत! बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र तक किसी की निजी मोटर में बैठने के मौके मुझे शायद ही मिले थे। कोई मोटरवाला किसी घर का रास्ता भूल जाता तो मैं उसे उस घर का रास्ता दिखाने के लिए बड़ी खुशी से तैयार हो जाता था। इस में मेरा गुप्त उद्देश्य इतना ही होता कि कम-से-कम थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो मुझे मोटर में बैठने का 'चान्स' मिले। जब मैं उस मोटरवाले को इष्ट स्थान पर पहुंचा देता तो फिर मैं पैदल ही लौटता। इस मोटरवाले ने सिर बाहर निकाला। मैं 'आने दो-आने दो' कह रहा था। उसने गाड़ी रोकी और दरवाजा खोलकर वह बाहर ही निकल पड़ा। वह मुझसे एक बालिश्त ऊंचा था। बारिश में आँखों पर भी धूप के दिनों में लगायी जानेवाली काली ऐनक वह लगाए हुए था। बदन में बुश्शर्ट था जिस पर नाना प्रकार के फूल चित्रित थे और पैरों में 'कॉर्ड' का मखमली नीला पैंट। दरवाजा खोलकर वह सीधा सामने आया और उस दो-ढाई फुट के स्थान में मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मेरी ओर घूरकर देखने लगा। मैं सचमुच कुछ समझ ही न पाया। मैंने पागल की तरह देखने के बारे में पढ़ा है। पर मैं नहीं समझता कि मैंने किसी की ओर कभी पागल की तरह देखा हो। परंतु उस दिन उस शख्स की ओर जिस ढंग से मैं देख रहा था उसे ही पागल की तरह देखना कहते होंगे यह विचार उस क्षण मेरे मन को छू गया। यह बात मुझे अभी तक याद है। यह विचार जब मन में आया तो मैं अधिक पागल की तरह देखने लगा। उस शख्स के चेहरे पर मुस्कराहट की एक रेखा उभर पड़ी। होंठों पर की कोर निकाली-मूंछ की एक बाजू ऊपर उठ गई। उसने काली ऐनक उतारी और उसकी उन पैनी आँखों को देखते ही एकदम मेरे मस्तिष्क में प्रकाश पड़ा।

"बबडू—"

"हरसाले—" मेरे कंधे पर ज़ोर से हाथ रखता हुआ बबडू बोला—"मुझे लगा, स्कालर लोग मुझे शायद भूल गए होंगे।"

"वाह! भूलूँगा क्यों?" नींद में जैसे अस्पष्ट-सा बोलते हैं उस तरह मैं बोला।

"पर मुझे यार साला थोड़ा टाईम लगा ज़रूर तुम्हें पहचानने में–पर तुमने जब कहा,–'आने दो–आने दो,' तब एकदम लगा कि आवाज़ तो पहचान की जान पड़ती है। सोचा, देखूं स्कालर महाशय पहचानते हैं या नहीं?"

"अच्छा, तो यह निश्चित बबडू ही है।"—मैंने किसी अभिनेता की तरह धीरे-से स्वगत कह डाला।

"गाड़ी तो बड़ी शानदार है। किसकी है?"

"अपनी ही है।" उस गाड़ी की ओर शान से देखता हुआ बबडू बोला।

"याने खुद तुम्हारी?"

"हाँ। दो गाड़ियाँ हैं–एक पुराना माडेल है–फ़ॉर्टी एट की फोर्ड। डब्बा है। पर साली बड़ी लकी गाड़ी है—अभी उसी तरह रख दी है—यह प्याकार्ड है—"

"वाह! पेकार्ड है तब तो कोई सवाल ही नहीं।" मुझे गाड़ी के नाम का उच्चारण ठीक-से बना। बबडू गाड़ी के नाम का उच्चारण भी ठीक से नहीं कर पाता था पर उस गाड़ी का उपयोग कर सकता था! बबडू के पास दो गाड़ियाँ! मैं असमंजस में पड़ गया, क्योंकि मेट्रिक के दो वर्ष पहले ही बबडू ने स्कूल छोड़ दिया था। उसके बाद साल-भर के भीतर ही किसी मारवाड़ी के घर डाका डालने के अपराध में उसे पाँच साल की सज़ा हुई थी। बबडू वैसे स्कूल में बड़ा लोकप्रिय था। कबड्डी और क्रिकेट बहुत अच्छा खेलता था। शहर के उस मुहल्ले में रहता था जहाँ अधिकतर गुंडे बसते थे। पर स्कूल में पढ़ाई को छोड़कर उसकी और सब बातें बड़ी अच्छी थीं। कक्षा की आखिरी बेंच पर बैठकर वह गहरी नींद लेता था। मास्टर भी उसको कभी डाँटा नहीं करते थे! एक बार हमारी कक्षा की एक लड़की से किसी गुंडे ने कुछ छेड़ छाड़ की थी तो उस समय बस्ता एकदम फेंककर उसने उस गुंडे के मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया था और एक क्षण में उसी की साईकिल के नीचे उसे दबोच दिया था। "साले अपनी कक्षा की लड़कियां अपनी बहिनें हैं–साला हमारी बहिनों से छेड़ छाड़ करता है साला" पर वह बीच की छुट्टी में धीरे-से कहीं जाकर सिगरेट के कश लगा आता था। उसके घर कौन-कौन थे इसका पता लगाने का कोई ज़रिया न था। क्योंकि वह जिस मुहल्ले में रहता था वहाँ कदम रखने की हम में हिम्मत भी नहीं थी। प्रगति-पुस्तक पर अपने वालिद के दस्तखत खुद फटकार देता था और तिस पर हमें यह बताता था कि मेरा वालिद साला शराब पीकर पड़ा रहता है दिन भर! वैसे होम-वर्क वगैरह करके न लानेवाले लड़कों को सज़ा देनेवाले हमारे मास्टर साहब उसे कभी डाँटा भी नहीं करते थे। उसकी दोस्ती सिर्फ़ हमारे ड्रिल मास्टर साहब से थी। एक बार ड्राइंग मास्टर ने उस पर नाराज़ होने की कोशिश की थी तो उनके सामने ही ड्राइंग-कापी फाड़कर वह उसी

पु. ल. देशपांडे :

गत साल आपका 'सखाराम गटणे' पढ़कर दीपावली के रसिक पाठक खुश हो उठे। दीपावली के दफ्तर में पाठकों के पत्रों का ढेर जमा हो गया।

आप मराठी भाषा के अव्वल दर्जे के विनोद लेखक एवं नाटककार हैं। आप श्रेष्ठ दिग्दर्शक तथा उत्कृष्ट अभिनेता हैं। इस बात का सबूत है आप का 'वन मैन शो'। आप आजकल बम्बई में 'बटाट्याची चाळ' नाम से एक 'वन मैन शो' खेला करते हैं।

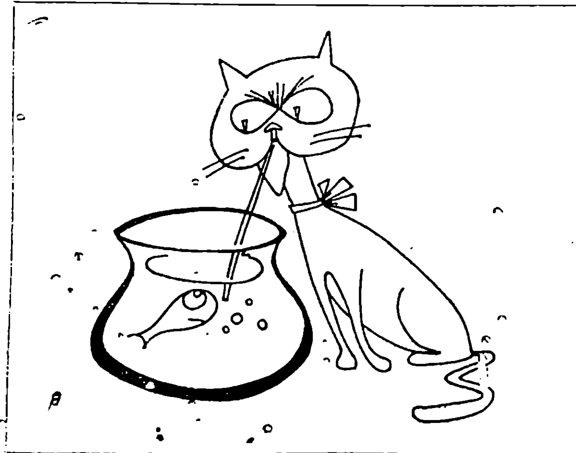
दीपावली के रसज्ञ पाठकों के लिए हम इस वर्ष आपकी और एक अनूठी व्यक्तिरेखा पेश कर रहे हैं।





समय कक्षा से निकल गया था और उसके बाद ड्राइंग की कक्षा में फिर वह कभी आया ही नहीं। हम जब ड्राइंग की कक्षा में जाने लगते तो बेंच पर माथा रखकर वह मज़े में सो जाता था। हमारी क्रिकेट-टीम का वह कप्तान था इसलिए कक्षा के सब लड़कों का उसे संपूर्ण संरक्षण प्राप्त था। शाला की टीम में वही एक खिलाड़ी था जो हमेशा बूट्-फ्लेनल्स और सिल्क का शर्ट पहनकर क्रिकेट खेलता था। बाकी हम सब लड़को के पैंट पीढ़े के नीचे दबाकर इस्त्री किए हुए होते थे। हम सब बाबूओं के लड़के थे। हमारे डरपोक-दल में बबड्डू भेड़ों के दल में शिकारी कुत्ते की तरह दिखता था। 'स्पोर्ट्स डे' के दिन उसकी शान कुछ निराली ही होती थी। अनेक मेडल्स, कप्स और शील्ड्स हाथ में लिए जब वह स्टेज से उतरता और उन्हें लेने के लिए उस पर चढ़ता तो उसे देखकर उसके प्रति हम लोगों को बड़ी ईर्ष्या होती थी। लेकिन वह अलबत्ता उन इनामों को बड़ी अलिप्तता से स्वीकार करता था। एक बार जब मैंने उससे उसके मेडल देखने को माँगे तो यह कहकर कि 'तुम्हीं ले जाओ इन्हें,' उन सब को वह मुझे देने के लिए तैयार हो गया था। मुझे वह प्रसंग याद आ रहा है। मैंने उससे कहा था-"बबड्डू इन्हें घर ले जाओ। अपने माँ-बाप को बताओ।"

"अरे हट्! मेरे माँ-बाप क्या तुम्हारे माँ-बाप की तरह हैं- कंडम हैं साले!" मैं काँप उठा था। मैं भी अपने माता-पिता पर कभी-कभी नाराज़ हो जाता था। पर अपने माँ-बाप को 'कंडम साले' कहने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। मैं बबड्डू के सामने खड़ा था। बबड्डू अपनी प्याकाड की ओर शान से देख रहा था और मेरी नजरों के सामने स्कूल का बबड्डू मूर्त हो गया था। अभी भी उसकी आँखें उसी तरह की थीं। मेरी आँखों पर ऐनक आ गई। हर साल नंबर बढ़ता ही गया। सिर के आधे से अधिक बाल पक गए। पर बबड्डू के बालों की लटें जैसी स्कूल में थीं, उसी तरह अब भी थीं। दाँत अलबत्ता गंदे दिख रहे थे। उनमें का एक दाँत सोने से भी मढ़ा था।



"चलो बैठो न"-गाड़ी का दरवाज़ा खोलता हुआ बबड्डू बोला।

"रहने दो-क्या ज़रूरत है? यहीं तो जाना है।--"

"अबे मालूम है-तुम्हारा साला घर मैं भूला नहीं हूँ-तुम्हारी माँ ने एक बार मुझे बेसन का लड्डू दिया था-मदर हैं न तुम्हारी?"

"हाँ, है।"

"साले बहुत बरस हुए उसे।"—बबड्डू झट-से जैसे कहीं बहुत गहरे में देख रहा हो, वैसे रास्ते में देखने लगा।

बबड्डू जब स्कूल में था तो इतनी खराब भाषा नहीं बोलता था। पाँच साल के जेल-निवास में उसकी भाषा बदल गई होगी। उसने मेरा छाता खींचा और मुझे गाड़ी में करीब-करीब धकेला। इतनी बड़ी गाड़ी मेरे घर के सामने आज प्रथम बार ही खड़ी थी। इस कारण उस गाड़ी के आसपास दर्जन-भर लड़के एकत्रित हो गए। माँ तो बिल्कुल घबड़ा ही गई। उस बेचारी को इतना ही मालूम था कि दुर्घटनाग्रस्त लोगों को मोटरवाले अक्सर अपनी गाड़ी में उनके घर पहुँचा दिया करते हैं।

"आओ—" मैंने बबड्डू का स्वागत किया।

"बस् तुम्हारा घर उतना ही है जितना पहले था—याने जब मैं स्कूल में पढ़ता था—"

"घर कैसे बड़ा हो जाएगा जी!"

"तुम्हारे फादर डाईड हो गए न—" सभ्य मनुष्य के घर में आ जाने के कारण बबड्डू अपने ढंग से अधिक अच्छे शब्दों का उपयोग करने लगा था।

"माँ, तुमने पहचाना इसे?"

"लगता तो है जैसे कभी देखा था—"

"अजी, यह बबड्डू है-मेरे साथ पढ़ता था—" मेरी यह बात सुनते ही माँ को इतना चौंकने का कोई कारण न था। माँ का चौंकना शायद बबड्डू के ध्यान में न आया होगा। वह दीवाल पर लगे मेरे फोटो को देख रहा था जिसमें मैं बी० ए० पास होने के बाद कॉनवोकेशन का गाउन पहने खड़ा था। इसी समय माँ ने इशारे से, हाथ में हथकड़ियाँ पहनने का इशारा कर, पूछा कि क्या यह वही है जो जेल गया था? मैंने चट-से गर्दन हिलाकर, 'हाँ' कहा और विषय बदलने की गरज़से मैं बोला—"माँ यह कहता है तुमने इसे कभी बेसन का लड्डू खाने को दिया था। वह लड्डू इसे अभी तक याद आ रहा है—"

"हाय रे भगवान! लड्डू तो थे पर कल ही खत्म हो गये। ठहरो अभी देख आती हूँ—"

"रहने दीजिए माँजी फिर कभी आऊँगा। पर आपको आना चाहिए मेरे घर एक दिन--"

"कहाँ रहते हो तुम?" माँ ने बड़े अपनापे से पूछा। बेसन के

लड्डू की याद दिलाने के कारण माँ के मन में यह विचार आया होगा कि मुआ जेल हो आया है, फिर भी इन्सानियत नहीं भूला।

"बोरविली में एक छोटा-सा बंगला बना लिया है मने!"

"अच्छा! ब्याह कर लिया कि नहीं?"

"हूँ"

"क्यों रे?"

"अजी हमें कौन लड़की देगा? हम क्या इनके समान स्कॉलर थोड़े ही हैं?"—बबड़ू शाला में भरती होने के बाद से मुझे 'स्कॉलर लोग' कहा करता था।

मैं भी शाला में कम साहसी नहीं था। पर हमारा साहस पुस्तकों तक ही था। हर मास्टर पर दो–दो व्यंगात्मक कविता बनाना–वाहियात हस्तलिखित मासिक पत्र निकालना रोज़ काले तख्ते पर प्रसिद्ध समाचारों की विडंबना करना–ये थे मेरे धंधे। कक्षा में नंदा ताम्हाने नामकी एक लड़की थी। गुंडे ने जब उसकी छेड़-छाड़ की तब हम नहीं दौड़े थे। दौड़ा था बबड़ू। जब बबड़ू ने उस गुंडे को साईकल के नीचे दबोच दिया तब उसकी साइकिल की हमने हवा निकाल दी, उस पर दावात खाली कर दी। बस् ये ही काम हमने किये थे। दूसरे दिन कक्षा में उसे बधाई देते हुए मैंने भाषण भी दिया था। यह सब काम करनेवाले जो लोग होते हैं वे स्कॉलर लोग हैं ऐसी बबड़ू की परिभाषा थी। मेरे दरवाज़े पर बबड़ू की पेकार्ड खड़ी थी और फाटक के भीतर मेरे भाई की रंग उड़ी साईकल रखी थी।

"देखो स्कॉलर वगैरह अब छोड़ो—तुमने बंगला बना लिया–बस के समान इतनी बड़ी गाड़ी खरीद ली।" माँ को आज भी बस सब से महंगी गाड़ी लगती है। "और घर में लक्ष्मी नहीं इसका क्या मतलब?"

बबड़ू ने कुछ न कहकर जेब से सिगरेट केस निकाला और मेरे आगे धर दी। मैंने उसे इशारे से कहा कि 'माँ के सामने नहीं!' और फिर उसने भी सिगरेट केस बंद कर जेब में रख लिया।

"तुम पियो न—मुझे नहीं चाहिये—"

"अजी नहीं—इसकी क्या ज़रूरत है? मैं किसी भी चीज़ का इतना आदी नहीं हुआ हूँ—"

"चाय तो लोगे न?"

"किसलिए—"

"किसलिए का मतलब?—इतने बरसों के बाद आए हो—बिना चाय पिलाए मैं तुम्हें कैसे जाने दूँगा? इतनी बड़ी मोटरवाले तुम? हमारे घर क्यों आने चले?"

"हमने तो सोचा था कि ये स्कॉलर लोग मालूम नहीं हमें पहचानेंगे या नहीं।"

"वाह मैंने तो तुम्हें एकदम पहचान लिया—"

"अजी यह बात नहीं—कुछ भी हो, पर हम हैं साले बदनाम



लक्ष्मी की पूजा ; बनिया का बंस !

ब्रजकिशोर 'नारायण'

कातिक का महीना
अमावस की रात
दियरी की टिमटिम
तारों से बात!
घरौंदों—सा घर
बाती भर तेल
खील—जैसी मिठाई
जूये—जैसा खेल!

मूरत की पूजा
पुरोहित की तोंद
बुकपोस्ट के लिफाफे में
जैसे लगा गोंद!
लिख रहा था कविता
होकर तल्लीन
रुपैयों की रात में
कौड़ी का तीन!

मामाजी आए!
आते ही चिल्लाए—
"लक्ष्मी की रात है
तराजू को धर!
लेखनी को तोड़
ऊँचे बाँस चढ़!
अफसर नेता बन
भाग्यों को पढ़!!"

मैं ने कहा—" मामा!
दे दो मेरा जामा
हंस हुआ भिक्षुक
उल्लू बना अमीर
शारदा को चबेना
लक्ष्मी को खीर!"

• •

मामाजी तब बोले—
बोला जैसे भूत—
" बनिया के बंसमें
तू निकल गया कपूत!!!"

लोग—" मैं नहीं चाहता था कि बब्डू इस विषय पर आए।

" छि! बदनाम होने से क्या हो गया?—"

" देखो—मैं पाँच साल जेल में रहा हूँ इसे दुनिया जानती है—छिपाने में क्या बुद्धिमानी है?"

" छोड़ो भी यह विषय—भूल किस इन्सान से नहीं होती?"

" पर स्कॉलर सब इसी तरह नहीं सोचते। क्यों, है न?" उसका 'स्कॉलर' कहना मुझसे सुना नहीं जाता था। मेरा स्कूल का स्कॉलरपन कालेज के चार वर्षों में व्यर्थ चला गया था।

" तुम्हारा साईन-बोर्ड पढ़ा बाहर—बी० ए०! साला बड़ा गर्व होता है। हमारा एक साथी बी० ए० हो गया!"

" अरे क्या उपयोग है बी० ए० होने का? महीने का खर्चा चलाना मुश्किल हो जाता है।" मेरे मस्तिष्क में शक्कर का भीगा हुआ पैकट चमक उठा।

" अरे यार, यह तो सब साला लक है। पैसे क्या साली रंडी भी कमाती है—" 'साली' के बाद का हिस्सा बब्डू ने आवाज़ बारीक कर के कहा। सभ्य मनुष्य के घर में और एक घंटे के बाद उसकी बड़ी घुटन हो जाती। " मैंने भी पैसा क्या कम कमाया? पर तुम्हें बताता हूँ—हराम की एक दमड़ी भी नहीं कमाई। जिसका साले का जो हिस्सा था वह उसे पहुंचा दिया। हर शख्स अपने भाग्य का खाता है- क्या समझे? हमने साले किसी का कुछ भला किया होगा तो भगवान खुद देख लेता है! अंगुली की साईबाबा की अँगूठी आँखों से लगाता हुआ वह बोला। ऐसा करने से क्या होता था भगवान जाने। पर आगे पूरी बात-चीत के दौरान में वह बारंबार उस अँगूठी को अपनी आँखों से लगाता था।—" अब तुम्हें बताता हूँ-साला जेल गया-दुनिया जानती है। पाँच साल जेल में रहा-सच पूछा जाए तो साला मुझे फाँसी होनी चाहिए थी-पर भगवान देख रहा था-बाबा देख रहा था।" फिर अँगूठी आँखों से लगाई।—"

" तुम हँसोगे-हमने तुम्हारी तरह कोई ढेर सी किताबें नहीं पढ़ीं—" पुस्तकों से भरी मेरी अलमारी की तरफ अत्यंत आदरयुक्त निगाह डालकर बब्डू कहने लगा-" तुम तो जानते ही हो कि साली किताबों से मेरा कभी निभा ही नहीं! अरे घोसालकर मास्टर है या डाईड हो गया रे?"

" पिछले साल ही उनका देहान्त हो गया।"

" अरे अरे! साला फस्टक्लास मास्टर था-इंग्लिश क्या फाईन बोलता था-साला एक शब्द भी मेरी समझ में न आता-पर मैं सुनता रहता था-यार उसके सरीखा इंग्लिश बोलनेवाला नहीं देखा-इंग्लैंड में होता साला तो लोग उसे सिर पर उठाकर नाचते।" सच पूछा जाए तो घोसालकर मास्टर में अंग्रेजी की उतनी ही योग्यता थी जितनी पाँचवी या छठी कक्षा के मास्टर में होनी चाहिए। सिर्फ वे बिना अटके बोला करते थे। परन्तु पाँचवी के बाद सारे सुसंस्कृत जग से बब्डू का संबंध ही टूट चुका था। पाँचवी तक ही उसने ऐसे क्षण अनुभव किये थे। इसलिए कभी-कभी उन अनुभवों की पोटली खोलकर उसमें का एक एक दाना वह चबाता रहता होगा।

" तो घोसालकर डाईड हो गया? उसके बच्चे कितने हैं?"

" चार लड़के हैं। अपनी ही शाला में पढ़ रहे हैं। उनकी फीस माफ़ कर दी गई है।"

" अरे अरे-क्या साली दुनिया है—डाईड होने से पहले उससे मिलना चाहिए था—तुम्हें याद है– साला मैंने उस गुंडे की जब मरम्मत की थी तो तुम सब स्कॉलर लोगों ने मुझे शिवाजी महाराज का चित्र प्रेजेन्ट दिया था-उस समय घोसालकर मास्टर साला क्या फाईन बोला था—दिस बॉय इज़ फेमस ऐसा कुछ कहा था उसने। साली हमारी इंग्लिश पाँचवी पर ही खत्म हो गई—साली किस्मत तो है-खुलनी हो तो खुल जाती है, नहीं तो एकदम साली बंद पड़ी रहती है! मैंने बोरविली में जब बंगला बनाया तब साली एक बड़ी पार्टी दी थी-मुर्गी तो थी ही-साथ में 'यह' भी—साला सब कम्पलीट—" 'यह' पर अँगूठा दिखाकर उसने जब इशारे से बोतल बताई तो मैंने घबराकर झट-से भीतर देखा। रसोई से बेसन भूने जाने की बास आ रही थी।—" इतनी बड़ी पार्टी दी, पर सब साले चार-सौ-बीस खा गए—वरली से और दादर से एक-एक भजन-मंडली बुलवाई थी और उन से रात के नौ से लेकर सुबह के छः तक भजन कराए थे। सत्यनारायण की पूजा भी की थी-सारा शो किया था साला-लेकिन सच कहता हूँ—" पुनः साईबाबा की अँगूठी आँखों से लगी—" पर साले तुममें से किसी को होना चाहिए था ऐसी बहुत इच्छा थी—तुम—साठे—घोसालकर मास्टर—कोई भी—साठे साला क्या करता है रे?"

" वह डॉक्टर हो गया है—"

" साला बड़ा होशियार था—नाटक में काम कितना फाईन करता

अनुक्रमणिका





था। तुम साले संभाजी बनते थे और वह साला बनता था औरंगजेब क्या साला फाईन नाटक किया था तुमने स्कूल में! सच अगर तुम एक्टर की लाईन में जाते तो फावड़े से रुपये समेटते।—"

मेरे दिमाग में लगातार यह विचार उठ रहा था कि उससे पूछूँ कि उसने आखिर इतना रुपया कहाँ से समेटा?

"पर यार सिर्फ साला पैसा कमाने में क्या रखा है? नाम चाहिए। मैंने अखबार में एक-दो बार तुम्हारा नाम पढ़ा था-कहीं तुमने कोई भाषण दिया था। शायद-अपने दोस्तों को मैंने उसी समय बताया कि मैं और यह भाषण देनेवाला, दोनों एक कक्षा के विद्यार्थी थे-हट्, साला घोसालकर मास्टर डाईड हो गया—बहुत बुरा हुआ!" घोसालकर मास्टर की मृत्यु से उनके विद्यार्थियों में से एक भी इतना व्याकुल न हुआ होगा! मास्टरजी अच्छे थे। बड़े सात्विक और स्नेहशील थे। परंतु उनकी मृत्यु से इतना दुःखी होना चाहिये ऐसा मुझे नहीं लगा।

"लगता है घोसालकर मास्टर की मृत्यु से तुम्हें बड़ा जबरदस्त धक्का लगा है—"

"क्या बताऊँ?—" और बबड्डू की आँखें एकदम छलछला उठीं। जब कोई इस तरह रोने लगता है तो मैं धीरज ही खो बैठता हूँ। बोलने के लिए शब्द नहीं सूझते और क्या करूँ यह नहीं समझ पाता। "—तुमसे मैं उस मारवाड़ी के घर जो डाका डाला था उसके बारे में बतानेवाला हूँ—सच्ची बात साली एक मुझे या भगवान को ही मालूम है—" फिर बाबा की अंगूठी आँखों से लगी।—"मुझे पाँच साल की सज़ा हो गई—सच पूछा जाए तो फाँसी ही होनी थी—मैं भी उसी के लिए तैयार होकर गया था—साला थोड़े में बच गया—चोरी का अभियोग लगाया सालों ने—भगवान देखता है—तुम्हें बताता हूँ कि उस मारवाड़ी के घर की एक चप्पल भी साली मैंने नहीं चुराई थी—पर दूसरे दिन मेरे घर पुलिसवालों ने मेरा साला बैग खोला तो उसमें साले उस मारवाड़ी के घर के जेवर निकले—अब बताओ!"

"क्या कहते हो!"

"बाबा की अँगूठी पहनता हूँ अपनी अँगुली में-झूठ बोलूँगा तो साली अँगुली गलकर गिर पड़ेगी!"

"जब तुमने जेवरों को हाथ ही नहीं लगाया तो वे तुम्हारे बैग में पहुँचे किस तरह?"

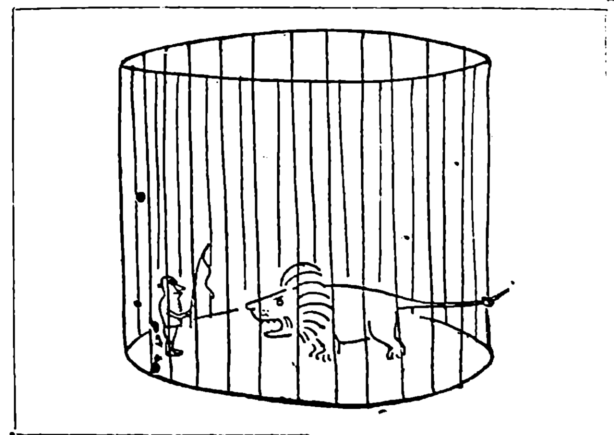
"तुम स्कॉलर लोगों ने अभी दुनिया कहाँ देखी है? यह तो साली अंदर की बात है-तुम्हें विश्वास नहीं होगा-तुम कहोगे बबड्डू गप्प मार रहा है—पर नहीं—वह धंधा मैंने नहीं किया—अपना खुला धंधा है—जिसकी हिम्मत हो वह मेरे बदन को हाथ लगाए और फिर देखे मज़ा—"

"पर तुम उस मारवाड़ी के घर में घुसे थे यह तो सच है न?" अब मेरे कंठ में शक्ति आ गई थी।

"सोलहों आने सच है! घर में घुसने की बात ही, क्या, मैं तो उस मारवाड़ी को खत्म ही कर देने के इरादे से गया था, स्कॉलर। पर साले की तकदीर बड़ी जोरदार थी। मेरे हाथ में ६ इंची फालवाला छुरा था—उस समय मैं हमेशा छुरा लेकर घूमा करता था—अब वह बात नहीं—अभी तुम मेरी तलाशी ले लो—तुम्हें एक बारीक चाकू भी मेरे पास नहीं मिलेगा—फिर भी किस साले की हिम्मत है जो मेरे बदन को हाथ लगाए—मैं घर क्यों फोड़ूँगा? उस मारवाड़ी के दरबान को छुरा दिखाकर सिर्फ अठन्नी दी—साले आठ आने—उसने साले आठ आने में नौकरी का अपना ईमान बेच दिया—साले लालच के कुत्ते—मारवाड़ी का कमरा खोल दिया मेरे लिए उस दरबान ने! मैं सिर्फ—अपने स्कूल में हेडमास्टर के पीछे जिस तरह शान से साला इन्सपेक्टर चलता था, उसी तरह उस दरबान के पीछे मारवाड़ी के कमरे तक गया—पर मारवाड़ी साला होशियार था-उसके कमरे में दो गुरखे अंधेरे में बैठे हुए थे। साला दरबान भी यह नहीं जानता था। फिर क्या, साला सहज ही पकड़ लिया गया—शोर-गुल मचा—पाँच साल की सज़ा हो गई साली!"

"पर, फिर जेवर का क्या—"

"वही तो सच्ची स्टोरी है—पुलिस ने मुझे खूब पीटा—पूछने लगे क्यों घुसे थे मारवाड़ी के घर में—मैंने साफ कह दिया कि मैं उस का खून करना चाहता था-मैं गुनाह एकदम कबूल कर लेने वाला था—डर से नहीं—इसलिए कि बात सच्ची थी—पर इस में पुलिस का क्या फायदा था?—और साले पुलिस और मारवाड़ी एक हो गए और मेरे घर आकर मेरे बैग में मारवाड़ी के घर के सारे ज़ेवर रख गए—अब बताओ जो साला जेवर चुराएगा वह उन्हें अपने घर लाकर खुले बैग में थोड़ा ही रखेगा?—पर हमारी तकदीर ही साली उस वक्त उल्टी थी—इन जेवरों को लाकर बैग में रखनेवाली कौन थी—जानते हो? मेरी माँ—और मैं जो मारवाड़ी की हत्या करनेवाला था सो भी उसी के कारण—बचपन



अनुक्रमणिका

में कुछ समझना नहीं था—पर साला स्कूल में आकर बैठता तो दिमाग घूमने लगता—और जब घोंसालकर मास्टर की अंग्रेजी शुरू हो जाती तो साला बड़ा आराम लगता। साले मुहल्ले में घूमने की चोरी थी—हर शख्स मेरे पीछे मुझे मारवाड़ी का बेटा कहता—मेरा सगा बाप साला शराब पीकर चौबीसों घंटे धूल चाटता रहता—इस से मेरा दिमाग क्यों न घूमता?—पर दुनियादारी देखनी थी—स्कॉलर लोग किताबों में कुछ भी लिखें - पर साले माथे की पट्टी पर जो वर्णमाला लिखी है वही साली सच्ची होती है। बाकी साला सब झूट! मुझे पांच साल की सजा हो गई- मैं खुशी से जेल गया—मन में एक विचार था, पांच साल के बाद दो खून करूंगा—एक मारवाड़ी का और दूसरा—"

"याने?" मैं उसके भयंकर रूप से घबड़ा उठा। "क्या अपनी माँ का खून करने वाले थे?"

"नहीं स्कॉलर—तुम सिर्फ किताबें पढ़ो—माँ का खून करने से नरक मिलता है—फिर मां की चाहे जितनी गलतियां रहें—पहले मेरा वही प्लान था—पर जेल में एक अनुभवी कैदी था—उसने मुझसे कहा—छः खून हजम करके आया था वह—परंतु स्वभाव बड़ा नरम—साला डबल घोड़ा सिल्क की तरह—उसने मुझसे कहा कि मारवाड़ी को काट दे और पहले अपने बाप को काट! साला वह ऐसा है इसीलिए तेरी माँ की यह हालत है!"

मेरे सुसंस्कृत घर की दीवालें अभी तक थरथर कांपने लगी थीं। एक पगड़ीवाले पूर्वज के तैलचित्र में उनके माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही हैं ऐसा भी आभास हुआ। यह तो किस्मत थी कि मेरी पत्नी मायके गई थी! हमारी यह हालत कि जासूसी उपन्यास में होनेवाले खूनों से ही हमारा कलेजा काँप उठता है! और यहाँ मेरे सामने पांच वर्ष जेल में चक्की पीसकर लौटा हुआ मेरा एक बालसखा एक छोड़कर दो खूनों की बातें बता रहा था।

"पर तुमने कोई खून किया तो नहीं न?"—मैंने डरते-डरते पूछा।

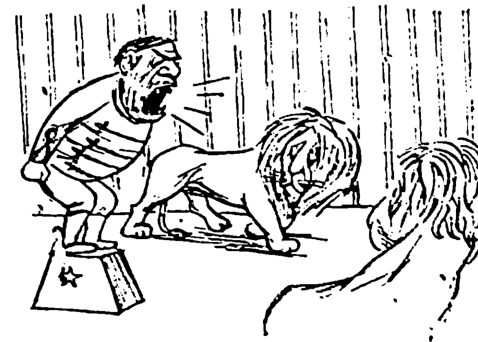
"मुझे खून करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी—भगवान देख रहा था न—साला मुझे जेल गए छः महीने भी नहीं हुए थे कि मारवाड़ी का दिवाला निकल गया और वह साला खत्म हो गया—बाप को पेट की बीमारी हुई और उसी में एक दिन उसकी भी मृत्यु हो गई—देखा, ईश्वर की लाठी में आवाज़ नहीं—और जिस मां ने मेरा सर्वनाश किया वह आज मेरे बंगले में है—पेशल देवघर बना दिया है उसे—बस कहीं से भी साधु-सन्यासी बटोरती रहती है—जैसा मन में आता है भजन करती है—पूजन करती है! पांच साल मैं जेल में रहा—साले डाकू लोग थे, पर उनके भी भाईबंद उनसे मिलने हर महीने जेल में आते थे—परंतु साले पूरे पांच साल—अच्छे चाल-चलन के कारण चार महीने की मेरी सज़ा कम कर दी गई थी—परंतु चार साल चार महीने...?"

"याने चार साल आठ महीने—" मैं स्कूल में भी उसे इसी प्रकार के उत्तर बताया करता था।

"जेल में गुज़ारे पर एक आदमी भी साला नहीं आया मुझसे मिलने। न बाप, न दोस्त, न कोई। कौन आया होगा मिलने? साला मैं तो एकदम चकरा गया—वार्डर मुझे बाहर ले गया—देखा तो घोंसालकर मास्टर! मैंने कहा, मास्टर, तुम?—"

"पर क्या घोंसालकर मास्टर तुमसे मिलने गए थे?"

"अरे वह भी एक स्टोरी है—साली फिल्म में भी ऐसी स्टोरी नहीं मिलती—जेल के बाग़ में काम करता था—एक दिन जेलर अपनी वाईफ को बाग़ दिखाने लाया—और वाइफ कौन थी खारकर साहब की, जानते हो? अपनी कक्षा की मंदा नाखाने!' उसने अपनी शाला की स्टोरी पति से ज़रूर कही ही होगी फिर क्या, आगे तीन साल तक जेल में मेरा साला खूब रौब रहा। जेल की टीम में एक दो बार क्रिकेट भी खेला—साले बावन रन्स बनाए थे एक बार और पाँच विकेट लिए थे—जिस दिन छूटा उस दिन खारकर साहब के घर दोपहर को मेरी दावत हुई थी—खारकर साहब की एक छोटी बेबी है। चार एक साल की होगी। बड़ी होशियार है—'मामा' 'मामा' कहकर, मेरे आसपास घूमती रहती—छूटते वक्त, जेल में जो काम किया था उसका मुझे पारिश्रमिक मिला था। उसमें से दस रुपये बेबी के हाथ में रख दिए—पर खारकर साहब ले नहीं रहे थे—मां की सौगंध दी—खारकर साहब आगे चलकर बड़ी पोजीशन पर जायगा, मैं तुमसे कहे देता हूं, हां—मंदाजी भी एकदम जेन्टलमेन वाईफ—जेल के बगीचे से सब्ज़ी लेती, तो तुरंत उसकी कीमत दे देती थी—उसके पास मुफ्तखोरी या हरामखोरी बिल्कुल नहीं। मैंने अपनी पूरी स्टोरी साहब और मंदाजी को कह सुनाई। साले आंखों में आंसू आ गए थे दोनों के—बाहर निकला तो पता लगा मारवाड़ी भी खत्म और बाप भी खत्म! सोचा, भगवान के घर अभी भी इन्साफ है!"







"फिर इसके बाद इतने वर्षों में इतना रुपया कहाँ पैदा किया ?"

"बस, बाबा की कृपा है!" आँख से फिर अँगूठी लगी। बबड्डू ने जेब से रूमाल निकालकर मुँह पोंछा। किसी सेंट की महक सारे कमरे में छा गयी।

"सच बताता हूँ तुम्हें—पहले पहल नौकरी खोजने की मैंने खूब कोशिश की–पर एक तो साला मेट्रिक पास नहीं था और दूसरे, दूसरा कोई इल्म भी नहीं था—जेल में जिन लोगों से दोस्ती हो गई थी, वे साले सब चार–सौ–बीस थे!—माँ भी कमज़ोर हो गई थी—वह सब्ज़ी बेचा करती थी—मैंने भी सोचा कि कोई धंधा करूँ—पर साला पैसे का कोई बैंकिंग नहीं—माँ के साथ कुछ दिन सब्ज़ी बेची, पर उस काम में साला मन नहीं लगता था— पेपर बेचने का विचार किया—पर साला शहर में घूमने में शर्म आती थी—फिर यह जगह छोड़कर कांदवली गया—वहाँ भी कुछ न जमा—साले बड़े कष्ट उठाए। एक दिन रास्ते में यह अँगूठी मिल गई और तकदीर का दरवाज़ा खुल पड़ा!"

"तक़दीर का दरवाज़ा खुल पड़ा याने क्या हुआ? क्या आसमान से रुपये बरस गए या कि कहीं गुप्त-धन का खजाना हाथ लग गया? आखिर हुआ क्या?"

"तुम हो स्कॉलर। तुम क्या समझोगे? जाने दो—भगवान की कृपा से सब ठीक है- किसी का साला कोई डर नहीं- पर दुनिया में चार-सौ-बीस हुए बिना दूसरा साला उपाय नहीं! तुम्हें बताता हूँ- कांदवली टेसन पर हमाली की- तो साला सेठ लोग चवन्नी टहराकर मीलों ले चलते थे और साली दुवन्नी टिका देते थे! दो महीने के बाद मैंने कहा, मारो गोली! कल्याण गया। जेल में एक दोस्त था मेरा। मर गया साला – बड़ा दिलदार इन्सान—मुसलमान था—पर आदमी क्या था तुम्हें बताऊँ, स्कालर! शेर का बच्चा! वार्डर सामने आता – पर वह पट्ठा जेब से गोलफ्लेक सिगरेट निकालता – कश लगाता और जब वार्डर उस पर झपटता तो कहता- तुम भी पियो मेरी जान! वार्डर वहीं ठंडा पड़ जाता! क्या अक्ल थी उस शख्स की- उसके सामने तो मेरी अक्ल ही काम नहीं करती थी— जेल में जाने कहां से गोलफ्लेक पैदा करता था- साला जेल की दीवाल के उस पार से, ईद के दिन, उसके दोस्तों ने एक बार मिठाई के डिब्बे अंदर फेंके थे।"

"इतना अच्छा आदमी था तो फिर वह जेल में कैसे पहुँचा?"

"तक़दीर का चक्कर है, बाबा! जो नहीं करना चाहिए था, वह किया था उसने—किसी लौंडी के चक्कर में आ गया था। उसने फंदा फेंका और शेर जाल में फँस गया—परंतु उसके दोस्त भी कैसे थे? जिस दिन उसे जेल हुई उसी दिन वह लौंडी खत्म! पर उसकी मुहब्बत सच्ची थी—मेरे सामने साला चक्की चलाता हुआ शेर सुनाता और रोता! उसने मुझे एक उपदेश दिया था—बेटा, चोरी करना, डाका डालना—जेब काटना—इन धंधों में कोई खतरा नहीं—बस एक खतरा—औरत—उससे बचकर रहना—उसके फंदे में फँसे कि बस, कयामत!"

कयामत का मतलब मैं समझा नहीं। परंतु उस शब्द को कहते समय बबड्डू ने कुछ ऐसा अभिनय किया कि मैं इतना समझ गया कि कयामत कोई बड़ी भयंकर बात होगी।

"जिसे आज़ाद रहना है उसे जेल की ज़ंजीर चल सकती है पर मुहब्बत की ज़ंजीर नहीं चलेगी।"—बबड्डू गुरुदेव की वाणी सुनाने के कारण उर्दू में घुसा। "इसीलिए मैं अभी तक इस फंदे में नहीं हूँ। ज़िंदगी में हजारों औरतें आईं और चली गईं। चवन्नी फेंकी–सौदा मिटाया–दिल को दाग़ नहीं।"

बबड्डू की इस नीतिमत्ता से मुझे कोई विशेष वास्ता न था। मुझे जिज्ञासा थी यह जानने की कि उसने इतनी विपुल संपत्ति कैसे प्राप्त की। दरवाजे में जो पेकार्ड खड़ी थी वह उसके पास कैसे आई यह जानने की। परंतु पुनः उस प्रश्न को पूछने की मुझमें हिम्मत न थी। पर बबड्डू स्वयं ही अपनी आत्म–कथा कहने के रंग में था।

"कल्याण गया। उस्मान जेल से छूटकर आ गया था। छः महीने से हाजी मलंग की मसजिद में चिल्ला कर रहा था।"

"चिल्ला क्या होता है?"

"उसे हम एक प्रकार की खुदा की भक्ति कह सकते हैं।"

"याने क्या कोई व्रत वग़ैरह?"

"हाँ हाँ। उसे व्रत ही समझ लो। हम गुरुचरित्र का व्रत रखते हैं न, उसी तरह का वह एक व्रत है—वैसे कातिक में मैं भी एक व्रत रखता हूँ—धंधा-बंदा सब बंद–हजामत भी नहीं बनवाता–दाढ़ी भी नहीं घोंटता-प्याज–लहसुन नहीं खाता—बाबा की पोथी पढ़ता हूँ और सिर्फ छुहारे खाता हूं। पर चिल्ला इससे भी कड़ा होता है। चार घंटे कुरान शरीफ पढ़ना और एक घंटा आराम करना–ऐसे चालीस दिन और रात चिल्ला करना—हाजी मलंग तुम गए हो कभी? बड़ा कड़ा है—"

"यह बात है?। मैं तो देवी-देवता और व्रत आदि से दूर ही रहता हूँ इसलिए हाजी मलंग की कड़ाई से डरने का मुझे कोई कारण नहीं था।"

"एकदम स्ट्राँग देव है। देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है—अगर नाराज़ हो गया तो मटियामेट कर देता है! उस्ताद से मसजिद में मिला। उन्होंने मुझे भुने चने दिए। एक पुड़िया में थोड़ा धूप दिया और नई लाईन बताई बस। उस्ताद की और मेरी वह आखिरी मुलाकात थी—बेचारे ने उस कगार से कूद खुदकुशी कर ली और हमेशा के लिए सो गया—"

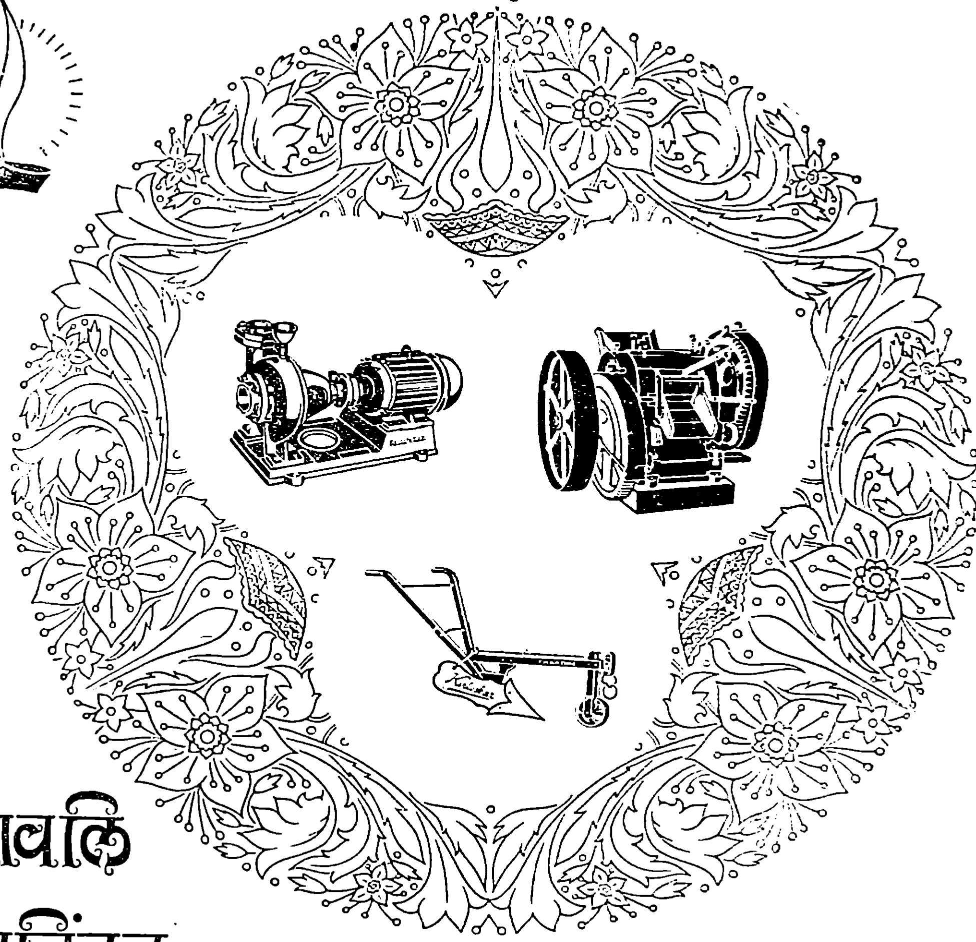
"खुदकुशी?"

अनुक्रमणिका

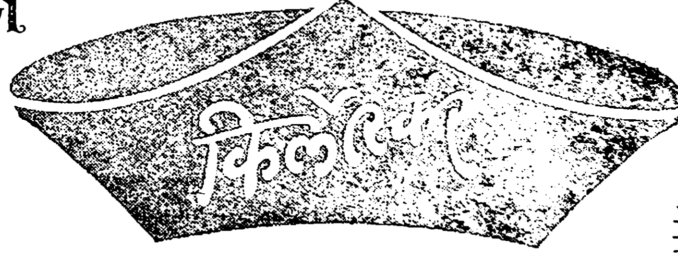


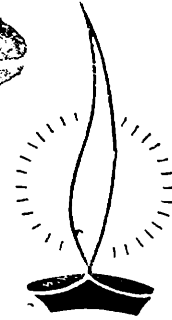






दीपावलि शुभचिंतन





हमारे ग्राहकों को
यह दिपावली
आनन्दप्रद हो।

किर्लोस्कर ब्रदर्स लि., किर्लोस्करवाडी, जि. सांगली.

"हाँ—यानी अपने प्राण अपने हाथ से ही समाप्त कर लिए–कगार से कूदकर!"

"अरे अरे, पर क्यों?"

"उसी मुहब्बत के कारण—ममजिद में चिल्ला कर रहा था उस समय भी उसने मुझसे कहा था–" बेटा इस कुरानेशरीफ के पन्ने-पन्ने पर मुझे सलीना की शक्लोसूरत नज़र आती है। अल्लाह रहम करे बेटा—क्या फाईन बोलता था—घोसालकर मास्टर की अंग्रजी और हमारे उस्ताद की उर्दू दोनों ही लाजवाब! बस् उन्होंने मेरे लिए पिक पाकेट की लाईन ओपन कर दी—कल्याण के कुछ दोस्तों के एड्रेस दिए—इशारे की भाषा सिखा दी–और दो साल तक मैंने पिक-पाकेट की लाईन चलाई—"

"याने—तुम—क्या जेब काटते थे?" मेरा गला सूख गया था। कहाँ की बला मेरे घर आ गई ऐसा मुझे लगने लगा। दरवाज़े पर खड़ी पेकार्ड कब वहां से जाती है इसके लिए मैं बड़ी तीव्रता से उत्सुक हो उठा–मां की चाय भी नहीं बनी थी। बबडू की आत्म-कथा रुक जाए इसलिए भीतर चल दिया। "ज़रा ठहरना, देखकर अभी आता हू, चाय बनी या नहीं?" रसोई में मां लड्डू बना रही थी।

"यह क्या? क्या चाय नहीं बनी अभी?"

"अरे उसने लड्डू को कहा था न–सोचा खिला दूं बेचारे को लड्डू–लड्डू बनाने में ऐसी कौन बड़ी देर लगती है–देखो, कितने बरस पहले को याद रखी उसने।—"

"अजी, पर—"

"जाने दे—" माँ ने एकदम आवाज़ की पट्टी नीचे उतारी–चोर या डाकू भी हुआ, पर है तो इन्सान ही न! उसको जोभ ने किस तरह ठीक से याद रखा? बाज़ार के बिस्कुट और डबल रोटिया तो खूब मिल जाएँगी मुए को, पर घर के लड्डू कहां पाएगा?"

मैं अवाक् हो गया। मां यदि पिक-पाकेट की लाईनवाली कथा सुन लेती तो लड्डू बनाते वक्त उसकी बंद की गई वह मुठ्ठियाँ दो घंटे न खुलती।

"अच्छा अच्छा"—"तुम्हें वक्त है न बबडू?" मैंने बाहर आकर पूछा।

"हाँ–हां, है। क्यों?"

"अजी मां तुम्हारे लिए बेसन के लड्डू बना रही है—"

"अरे अरे! क्यों तकलीफ कर रहीं है? स्कॉलर जब ऐसी कोई मूर्त देखता हूं तो लगता है कि जिन्दगी में प्रेम अवश्य कहीं होता है—पर हम ही साले ठीक-से देखते नहीं—उस्ताद हमेशा कहा करते थे–बेटा दस कौर कमाओ–एक कौर भूखे के लिए रख दो–आखिर चोर तो सभी हैं—हां—तो क्या कह रहा था—"

"अच्छा तो यह बात है? तो तुम्हारी पूरी स्टोरी बड़ी इन्ट्रेस्टिंग है–अच्छा, पर अब तो सब ठीक है न?" उसकी पोथी समाप्त करने के उद्देश्य से मैंने झट-से इति रेवाखंडे स्कंद पुराणे पिक-पाकेट लाईन नामे द्वितीयोध्याय समाप्तः कह डाला। परंतु बबडू का अध्याय समाप्त नहीं हुआ था।

"—हां–तो मैंने पिक-पाकेट की लाईन शुरू की। साला भाग्य लगातार साथ दे रहा था—लौंडे भी साले इतने ईमानदार मिले कि हजार रुपये का पाकिट मारकर भी एक पाई इधर की उधर नहीं करते थे—फिर मैं भी अपनी खुशी से उन्हें दस–दस रुपये इनाम दे देता था—साली मेहनत के लिए इनाम देना ही चाहिए! स्कूल में जब मैंने सेंचुरी मारी थी तो जोगलेकर सर ने मुझे दो रुपये का प्राईज़ दिया था–उस समय कितना आनंद हुआ था मुझे!—पर मेरा धंधा दूसरे पिक-पाकेटवालों से अलग किस्म का था—पहली बात तो यह थी कि औरतों की पर्स नहीं मारनी चाहिए! तुम्हें शायद झूठ लगेगा—एक बार एक लड़के ने लेडीज़ पर्स मार दी थी। उसमें दो सौ रुपये थे–इसके सिवा पाऊडर लिप-स्टिक, घर का पता और सेफ की तालियाँ भी थीं–उस लड़के के सामने ही मैंने उन नोटों को जला दिया और पर्स संडास में फेंक दी और उससे कहा साले डाल हाथ संडास में और फिर से निकाल वह पर्स!! हमारे धंधे का मुख्य केन्द्र था सेठियों का बाजार और रेस-कोर्स। साले हराम का पैसा इकठ्ठा करने जमते हैं वहां–सिखाओ सालों को सबक!"

"पर तुम्हें डर नहीं लगता था क्या?"

"डर किस बात का? साले हम लोग पांच रुपये के पचास रुपये बनाने को भुलेश्वर, कालबादेवी और महालक्ष्मी जाकर इकठ्ठा होते हो—फिर भुलेश्वर, कालबादेवी और महालक्ष्मी क्या सिर्फ तुम्हारी ही मुराद पूरी करे और हमारी न करे? हमने मंदिर के दरवाजे में बैठनेवाली स्त्रियों के चार–आठ आने चुराने की हरा-मखोरी नहीं की—साले पचीस–पचीस हजार रुपये जेब में रखकर घूमनेवाले लोगों को कैसा छोड़ देते?—हमारे छोकरे पहले पहले बड़ी ईमानदारी से काम करते थे—पर स्कॉलर तुमसे कहता हूँ कि साली बुरी सोहबत बहुत जल्दी लग जाती है—दूसरे गैंग के लोगों ने उन्हें बुरी लतें लगा दीं—उन्हें दूसरी राह दिखा दी—नाखून बराबर छोकरे साले कमीशन की बात करने लगे! सालों के मा-बापों को मैं पोस रहा था—पुलिस की मुठ्ठी मैं गरम कर रहा था—अगर साले पकड़े गए तो अपनी तरफ से वकील लगा देता था–अदालत में खुराक आदि के पैसे मैं जमा करता था–ऊपर से हर पहली तारीख को उन्हें तनख्वाह देता था–साले चालीस छोकरों को पोस रहा था–धीरे-धीरे साले बिगड़ते गए–दिन-ब-दिन वक्त खराब आने लगा—हम जिस तरह मास्टर की इज्जत करते थे उस तरह आज के लौंडे कहां करते हैं?—हमें अपनी कक्षा की लडकियां किस तरह अपनी बहिनें लगती थीं—अब शाला और कॉलेज की लड़कियां किस तरह का बर्ताव करती हैं—ऐसे ही तो दुनिया डूब जायगी–मेरे छोकरों ने धंधा

दिया—एक दिन साला गुस्सा आ गया...सब सालों को घर बिठा दिया और लाईन बंदकर दी। तब से कातिक के महीने का व्रत शुरू किया—महीना भर घर बैठे खाया—पर मुझे सैंकडों ने दगा दिया-मेरे पास से दूसरी जगह चले गए-छः महीने में सब-के-सब साले जेल में बंद—साली नीयत जो बदल गई थी —उनकी ऑनेस्टी नहीं रही—कहीं गरीब को लूटते हैं तो कहीं अंधे भिखारी की भीख चुराते हैं—यह क्या कोई धंधा हुआ? बस् भगवान की बिन आवाज़ की लाठी चली—वक्त पर साला एक भी दादा नहीं खड़ा हुआ उन्हें बचाने को—सभी कोई बबड्डू सेट बत्तीवाले नहीं— "

"बत्तीवाले?"

"हाँ। दुनिया अब मुझे बबड्डू सेठ बत्तीवाले के नाम से ही पहचानती है—किटसन घासलेट बत्ती की दूकान है मेरी बोरविली में— "

"अरे वाह! इस धंधे में भले चमक गए—"

"अजी बत्ती के धंधे में क्या गाड़ी आएगी—दो बैलों का खटारा भी नहीं आएगा!" बबड्डू अपने विनोद पर खूब हँसा उसमें मेरी अज्ञानता पर हँसने का भी भाग था। "आजकल मेरी ही बोतलें चलती हैं बंबई में—"

मेरे मस्तिष्क में उसकी दुकान के सारे पेट्रोमेक्स लैंपों का प्रकाश पड़ा। उसकी वह गाड़ी मेरे दरवाजे पर खड़ी थी। उस में कहाँ-कहाँ कितनी बोतलें रखी होंगी भगवान जाने। अभी कहीं पुलिस धावा बोल दे तो मैं मरा! हम ठहरे उस पाप-भीरु वर्ग के सम्माननीय प्रतिनिधि जो साईकिल की बत्ती को भी नीचे तीन-तीन बार उतरकर रात को फूँक पीटते हैं! और यह कहनेवाला महात्मा कि आजकल उसी की बोतलें बंबई में चलती हैं मेरे सामने बैठा हुआ था। जहाँ-जहाँ पर पहले पसीना छूटता है, उन मेरे सब अवयवों से पसीना चूने लगा! बबड्डू के मुखमंडल पर दिग्विजय की चमक झलक रही थी!

"—अभी अगर पूछो तो गाड़ी में सौ बोतलें रखी हैं—सब पहली धारा का माल है!" पहली धारा क्या मामला है यह मैं समझ नहीं पाया। परंतु मेरी गर्दन से पसीने की सैंकड़ों धाराएं बह पड़ीं। मैं बनावटी आवेश लाकर बोला,—

"अरे वाह, पर मुझे तो भई उसके बारे में कोई ज्ञान नहीं समझे?"

"—अरे बाबा, ज़हर है वह-मेरी नजरों के सामने रोज़ पाँच सौ बोतलें भरी जाती हैं—पर मुंह में आज तक एक बूंद भी नहीं डाली। सिर्फ खुश्बू से ही जाँचकरके कीमत लगा लेता हूँ—कुलाबा में साहब लोगों में इसकी बड़ी माँग है—सबसे अधिक यह वहीं बिकती है—विलायती माल हमारे माल के सामने ज़रा भी नहीं टिकता!!"

"तुम डरते नहीं?"

"किससे?"

इस सवाल का मेरे पास जवाब न था।

"क्या पुलिस से? अजी, वे हमसे भी ज्यादा चार-सौ-बीस हैं। सारी दुनिया की गाड़ी चेक करते हैं। पर अपने राम की गाड़ी को सलाम करते हैं! मेरी नीयत कमीनी नहीं—हमारे गाँव के जमादार के लड़के की फीस मैं देता हूँ—साला बड़ा होशियार लड़का है—सोचा मैं खुद तो पाँचवी फेल हूँ—तू साले हो जा एल. एल. बी. वकील-कल हमारे काम आएगा—घर का वकील होने पर बाहर के चार-सौ-बीस वकीलों की जेबें मैं क्यों भरूँ?—कातिक के महीने में भट्टी बंद रखता हूँ-मजदूरों को पूरी तनख्वाह के साथ एक महीने की छुट्टी देता हूँ—किसीको शिरडी या पंढरपुर जाना हो तो उसे बोनस देता हूँ—साले ईमान का पसीना बहाते हैं आग के सामने बैठकर—खाने दो सालों को—साला मुझे एक आईडिया आया है—हमारा घोसालकर मास्टर डाईड हो गया—उसके नाम से अपनी शाला की मेट्रिक परीक्षा में अँग्रज़ी में जिसे सबसे अधिक मार्क मिलें, उस स्कॉलर को पचीस रुपये का प्राईज़ दूं—क्यों, क्या खयाल है तुम्हारा? साला फाईन आइडिया है-है न?"

"हाँ। बड़ी अच्छी है।"

"—फिर तुम हिसाब लगाकर बताओ—हर साल पचीस रुपये ब्याज मिलने के लिए कितनी पूँजी लगेगी– साले हजारों रुपये हाथ से इधर-उधर होते रहते हैं - पर साला हिसाब करते नहीं बनता—साला दुनिया में पुलिस सुपरिंटेंडंट से नहीं डरा—पर साला गणित का डर लगता है—वह कौन मास्टर था जी—सफेद आँखों का—"

"गोडबोले—"

"हाँ-हाँ—वही—साला क्या फटाफट संख्या लिखता था काले-तख्ते पर। वह है क्या, या साला वह भी डाईड हो गया?"

"नहीं। वह है- अभी तक पढ़ाता है—"

"—साले ये नहीं मरेंगे—घोसालकर मास्टर मरेगा—भगवान के घर भी कभी-कभी साली चार-सौ-बीसी हो जाती है—हाँ तो रकम बताओ—कल लाकर नोट के बंडल हाजिर कर दूंगा—हेडमास्टर को दे देना—कौन है—क्या वही ...!"

"राजवाडे—"

"हाँ-हाँ वही—फाईन था-स्पोर्ट्स लोगों का बड़ा दोस्त—मैं क्रिकेट अच्छा खेलता था इस लिए फेल हो जाने पर भी उसने मुझे हाफ-फ्री रखा था—उसे जाकर पैसे दे आएंगे—कितनी रकम जमा करनी पड़ेगी?"

"रख दो एक हजार रुपये पोस्ट आफिस में—पच्चीस रुपये ब्याज आ जायगा—" मेरे बैंक के व्यवहार पोस्ट आफिस से आगे नहीं बढ़े थे।

अनुक्रमणिका





सिर्फ एक हजार रुपया—यह तो साली दो दिन की कमाई है—जेब के पीछे की ओर हाथ डालकर बबडू ने मनीबेग निकाला—सौ-सौ के दस नोट गिने।

" पर मेरी एक प्रार्थना है—"

" क्या ? "

" राजवाडे मास्टर को मेरा नाम मत बताना—"

" मतलब ? "

" अरे भैया ! मैं हूं बदनाम आदमी—वह कहेगा इसने साले ने कहीं डाका डाला होगा और ये रुपये यह लाया होगा। वह क्या जाने कि यह पसीने की कमाई है ? उसकी याद में बबडू तो सिर्फ एक डाकू है—इतना ही उसे मालूम है ! "

" नहीं-नहीं-इन्सान क्या कभी सुधरता नहीं ? हराम का पैसा होता तो तुम्हारे पास अभी तक टिकता कैसे ? "

मैं भी उसके तत्वज्ञानका—शायद डर के कारण ही–समर्थन कर रहा था।

" लाख रुपये की बात कही तुम ने स्कॉलर—पर सब तुम जैसे दिमागवाले नहीं होते—सिर्फ रकम दे देना—घोसालकर मास्टर के नाम से—"

" अच्छा, अब मेरी एक प्रार्थना सुनोगे ? घोसालकर मास्टर के लड़के पढ़ रहे हैं। उन्हें दो न ? "

" अजी आधी रात को भी वे लड़के यदि मेरे पास आएं तो मैं उन्हें दूंगा—उन लड़कों से कह दो कि हर महीने की पहली तारीख को उन्हें मनीआर्डर से उनके एड्रेस पर रुपया मिला करेगा—परंतु अंग्रेजी के लिए उनके नाम की प्राईज होने से घोसालकर की आत्मा को शांति मिलेगी—छि ! एक अच्छा आदमी डाईड हो गया। अगर जिन्दा होता तो अपने घर बुलाकर उससे खूब अंग्रेजी बोलने को कहता और जिस तरह पोथी सुनने के बाद पुरोहित को दक्षिणा देते हैं, उसी तरह उसकी अंग्रेज़ी सुनने के बाद उसे दक्षिणा देता—"

" किस पुरोहित को दक्षिणा दे रहे हो ? क्या पूजा-वूजा कर रहे हो सत्यनारायण की ? चलो, अच्छा है-कम-से-कम इसी बहाने तुम्हारा बंगला देखने को मिल जाएगा—" लडडुओं की डिश उसके सामने रखती हुई मां बोली।

" मांजी कातिक में महापूजा करता हूं। उस वक्त मैं खुद अपनी गाड़ी लेकर आऊंगा और तुम्हें घर ले जाऊंगा। "

" गाड़ी की क्या जरूरत है ? हमें सिर्फ यह बता दो कि तुम्हारी वह पूजा किस दिन है। हम खुद ही चले आएंगे। बोरिवली यहां से कोई बड़ी दूर नहीं है। " मैंने कहा। बबडू की गाड़ी में सकुशल मुकाम तक पहुंचने के लिए हमारे पीछे कम-से-कम हजार सत्यनारायणों के बल की जरूरत थी। मेरी नजरों के सामने उसकी गाड़ी में रखी बंबई में आजकल चलनेवाली बोतलें चमक रही थीं।

" तुमने मुंह से कह दिया-तो वह हमारे हृदय तक पहुंच गया। इतना पैसा कमा रहे हो तो उसे ठीक सावधानी से रखना। हर महीने बीस-पचीस रुपये डाकखाने में रखते जाना—"

मुझे अपनी मां, स्वयं मैं, मेज़ पर रखे और दीवाल पर लटके अपने समस्त पूर्वजों, घर की चारों दीवालों और उनके भीतर की सब-की-सब स्थावर, जंगम, सजीव और निर्जीव चीजों पर जिन्दगी में पहली बार अत्यन्त रहम आई।

" माँ जी—आपके घर बचपन में खाया था—ठीक बिल्कुल ठीक उसी तरह की टेस्ट इस लड्डू की भी है। कोई फर्क नहीं ! " बबडू लड्डू खाता हुआ बोला। सामने रखी कप-रकाबी के कप का कान टूटा हुआ था-वह भी अनेक बरसों से उसी तरह था-कोई फर्क नहीं हुआ था उसमें। हमारे घर में-नहीं, बल्कि हमारे मुहल्ले में सब कुछ जैसा पहले था ठीक वैसा अब भी है और इसी में हमारा सारा अभिमान और जिंदगी के सारे परिश्रम संचित हैं।

लड्डू खाना समाप्त हुआ-चाय हुई। बबडू उठा। पुनः एक बार उसके मुंह पोंछते हुए उस सेंट की महक वातावरण में भर गई। विदा होते समय उसने झुककर मां के चरणों में मस्तक रख प्रणाम किया।

" आयुष्यमान हो बेटा !—इसी तरह अच्छे-अच्छे मकान बनवाओ-हमें भी थोड़ी-सी जगह देना-यह घर अब हमारे लिए काफी नहीं होता-बहुएं आ गई हैं-पोते-पोतियाँ आ गई हैं—" बबडू के नमस्कार को मां ने मुंह भरकर आशीर्वाद दिया।

बबडू ने मोटार में बैठते-बैठते सिगरेट केस से दो सिगरेटें निकालीं। एक मुझे दी।

" अरे रहने दो-मुझे नहीं चाहिए ! "

" अबे, ले भी। पाखाने में जाकर पीना। यह बड़ी अच्छी बात है जो तुम मां-बाप की इज्जत करते हो—" एक सिगरेट उसने अपने लिए जलाई और गाड़ी बढ़ा दी। मैं गाड़ी के पृष्ठ भाग की ओर देखता खड़ा रहा। हाथ में रखी सिगरेट झट-से जेब में छिपा ली। मेज़ पर सौ-सौ रुपये के दस नोट उसी तरह पड़े थे। एक हितचिंतक की तरफ से घोसालकर गुरुजी की पवित्र स्मृति में वे मुझे राजवाडे हेडमास्टर साहब को जाकर दे देने थे।

—मैंने बाहर देखा। वर्षा रुक गई थी। घर में पुनः गर्मी होने लगी थी। भीतर से मां की आवाज़ आई – " शक्कर तो सब भीग गई रे। इसका अब पाक बनाकर ही डाले देती हूं किसी में—" ● ●

रूपा.: रा. र. सर्वटे



...मैंने आत्मा की पूर्ति चाही थी। शरीर के परे होने की चेष्टा की थी। आदर्शों को सत्य माना था। मैंने प्रेम के लिये पुकारा था। प्रणयिनी के स्थान पर गृहिणी को खोजा था...

मेरी आत्मा भूख से कलप-कलप कर मर गयी। शरीर अस्वीकृत हो गया। आदर्श सूखे चमड़े की तरह अकड़ गये...



अनन्तकुमार पाषाण

चाय में सैक्रीन और पाउडर दूध और वाइटैलिटी बढ़ानेवाली दवाएँ खाते जिन्दगी को चूसनेवाले...

टी. एम. टी. स्टूडियो के पहिले एक हॉटेल है—पैरेडाइज ऑफ इंडिया और उसके सामने ज़मीन का एक चौकोर हिस्सा छूटा हुआ है। इस तरफ़ रबर की फैक्टरी है, जहाँ रबर के गुब्बारे बनते हैं ...

और कलेजे में दर्द के गुब्बारे बन-बन कर मिटते जा रहे हैं... और ट्रायल रूम में पंचोली के 'भाई साहब' की टायल है शायद—'रास्ते बन-बन के मिटते जा रहे हैं!'—सिन्ध की बुलबुल का गीत...

पंचोली जिसको एक न एक दिन शायद 'एम्नेशिया' हो जाये क्यों कि 'एम्नेशिया' का उसे बहुत प्यार है......

'एम्नेशिया' वह बीमारी है जिसके द्वारा हलकी-सी चोट लगने के बाद आप बहाना कर सकते हैं कि हम तो सब भूल गये!

टी. एम. टी. स्टूडियो बुलियन के एक प्रसिद्ध सेठ का है। वह सेठ बहुत अच्छे आदमी हैं और अच्छाई के बावजूद भी बिजनेस करते हैं और उसमें कामयाब हैं। कीमती शेरवानी, मर्सिराइज़्ड धोती और पांव में पम्प शू, मगर मालूम नहीं रूमाल वह क्यों नहीं रखते!

नाक सिनक कर अपनी गन्दी उँगलियों को मोटर की छत से पोंछ देते हैं।

ट्रायल रूम के एक तरफ़ एक उजाड़ मैदान है और दूसरी तरफ़ एक उजाड़ बगीचा और इस तरफ़ को उखड़े पंखो का एक अधमरा मुर्गा लटका है—साइनबोर्ड कि जिसके अक्षर बुझ गये हैं—Silence...

नकुल ने दाढ़ी बनायी थी। मिस्टर जोनेजा के यहाँ से पुराने कपड़े उसे मिल गये थे जो उसने पहिन लिये थे—डबल घोड़ा की कमीज़ जो ठीक थी, सिर्फ़ उसका कॉलर फट गया था, और मक्खन डग की पतलून......

नकुल कितने बार मर-मर कर जी उठा है पर लगता है कि आखिरी मौत है यह—अब नकुल नहीं जियेगा! पागल कुत्तों के पिंजरे में अकेली फंस जाने वाली गाय और फ़ोन पर कोई बहुत ही ज़ोर से बुलियन वाली आवाज में चिल्लाकर बात कर रहा था—भोगीलालजी, मैं कहुं हुं कि...भोगीलालजी, पान सो रुपिया की रसीद काटी और





पटेलभदर्स के इहाँ रॉ स्टॉक रोक दिया...भोगीलालजी, पान सो रुपिया की रसीद काटी और गुन्नीस तारीक को साम को मुझे चेक दिया फिर चार दिन तक साले ने मुँह भी नहीं दिखाया...भोगीलालजी ...मैं कहुँ हुँ...

और नकुल आगे चल दिया...सामने से स्क्रीन की सबसे गंभीर और ट्रैजिक एक्ट्रेस विद्या मुकर्जी जा रही थी...उसीके चित्र में खल-नायक का काम करनेवाले एक प्रसिद्ध विलेन हनीफ़ ने पीछे से आकर उसके कूल्हों पर एक हाथ मारा...फिर दोनों बेतहाशा हँस पड़े।

मिस्टर जोनेजा आये नहीं हैं और नकुल ने ऑफिस खोल दिया है...वह बाहर बैठा देख रहा है–एक प्रसिद्ध एक्टर के ड्रायवर से एक एक्स्ट्रा की हाथापाई हो रही है...

एकसाथ विद्या मुखर्जी और परमात्मा साथ-साथ इसी ऑफिस में आये। नकुल को क्या मालूम था कि परमात्मा को 'फिल्म' में चान्स देनेवाले मि. जोनेजा ही थे।...

"क्यों विद्या, निखिल की क्या स्टोरी है?"

"रजनी भाभी ओधर कलकत्ते में सूटिंग को श्यामानंद परमार के सौथ गेया था...उधर एक ही हॉटेल में ठहरा था दोनों...(और विद्या हँसी...)...सुनते हैं एक ही कमरे में ठहरा था दोनों...(विद्या फिर हँसी)...एक ही पलंग था कमरे में...(और विद्या फिर हँसी) एक ही पलंग पर सो गया था दोनों"...और इस बार परमात्मा हँसा...

स्टूडियो में बहुत सारी मोटरें आने लगीं...एक बालों के कुल्ले काढ़े चिकना-सा छोकरा आया...उसके साथ वह कौन था। नकुल ने देखा और उसे लगा जैसे उसके कलेजे में किसीने गर्म-गर्म तेल डाल दिया— उस छोकरे के साथ थी उस के कॉलिज के दिनों के प्रोफेसर चैटर्जी की लड़की देवा।

देवा जो साउथ अफ्रीका चली गयी थी...वह कुल्ले काढ़े इस चिकने-चुपड़े लड़के के साथ अपना काला पैरेसॉल थामे चल रही है...

देवा नकुल को नहीं पहिचानती...वह तो उस चिकने-से लड़के से बातें करने में व्यस्त है...

"तुम्हारा फाइनेस्ट...एकदम फ़ाईनेस्ट सॉंग है......"

और नकुल उस फाइनेस्ट...एकदम फ़ाईनेस्ट सॉंग के सम्बन्ध में कुछ सुन नहीं सका। देवा बाहिर ऑफिस में बैठ गयी और वह चिकना-चुपड़ा लड़का अन्दर चला गया—

"आइये... आइये!"

"हलो विद्या..."

नकुल बाहर बैठा अर्दली के स्टूल पर फिल्मइंडिया पढ़ रहा था। बाहर केवल आवाज़ें आ रही थीं...

"आजकल कौन-सा गीत लिख रहे हो?"

"एक नयी चीज़ लिखी है—वसन्त आ गया, खिज़ाँ की लाश थी पड़ी उसे जिला गया!"

"वाह! वाह! आगे, आगे..."

"शराब लेके प्यार की उसे पिला गया..."

"वाह! वाह! आगे, आगे..."

"ज़मीं औ आस्माँ के ये कुलाबे मिला गया...

"वन्डरफुल! वन्डरफुल!..."

और नकुल देखता है, खंभे आ रहे हैं, जा रहे हैं, आ रहे हैं, जा रहे हैं...

नारियल के पेड़ पर एक चील चिल्ला पड़ी...

जोनेजा साहब की गाड़ी आ गयी और आकर खड़ी भी हो गयी! नकुल को क्या मालूम है कि अर्दली का काम है दौड़ कर दरवाज़ा खोलना...वह फिल्मइंडिया पढ़ता रहा...मिस्टर जोनेजा उतर कर अन्दर आ गये...

"हलो विद्या, हाउ आर यू?"

"ठीक हूँ!"

"यह रजनी परमार की क्या स्टोरी है?"

"निखिल बोलता कि रजनी को लड़का हुआ ओ श्यामानंद परमारका लड़का है...हमारा लड़का नहिं हो सकता! कोलकोत्ता में श्यामानंद परमार और रजनी भाभी एक हॉटेल में ठहरा, एक कमरे में सोया, निखिल दादा का भौतिजा ओधर था—ओ देखा! थोड़ा पूलिश है— इधर निखिल दादा को लिख दिया...दादा वॉत इमोशनल है—ओवर सेन्सिटिव है...वह डिवोर्स देना माँगता!"

"व्हाट इज़ दि ट्रूथ ऑफ़ दि मैटर?"

"ट्रूथ तो गॉड जानता है। पर हम लोग निखिल दादा को समझाता है कि फॉरगिव करना चाहिये। हम एक-दूसरे को फॉरगिव नहिं करेगा तो गॉड भी हमें फॉरगिव नहीं करेगा! 'मीष्टेक' सॉब से होने सकता...मैन इज़ नॉट गॉड...पर निखिल बाबू वॉत सेन्सिटिव है...बिचारी बहुत रोता है पर निखिल बाबू हेज़ नो 'पिटी'!...

नकुल फिल्मइंडिया नहीं पढ़ रहा है...वह वहाँ बैठा भी नहीं है... इन्सान के मन में जो एक के भीतर से दूसरी निकलती जाने वाली अंधी गुफाएँ हैं वह उन्हीं में भटक रहा है...

...आभा खड़ी है...पिघले ताँबे-सी झलमल करती धूप में आभा खड़ी है...वह ऊंची टेकरी है कि जिसके चरणों में तालाब बिछा है! 'डुप' करके एक पनडुब्बी ऊपर आयी, नीचे गयी...

और तार के खंभे कभी समाप्त नहीं होंगे—राह लम्बी है और रेल के लिये वेग-मर्यादा है......

जमुना, आभा, हेलेन, बम्मो, साइबिल, देवा-हरेक के पास से एक विशेष प्रकार की गंध आती थी —

जमना के पास से जूठन और जूने की उत्कट गंध, आभा के पास से कैलेफोर्नियन पॉपी की गन्ध...





कैलफोर्नियन पॉपी उसे उस कश्मीरी छोकरे ने प्रेज़ेंट किया था—भाई-दूज पर...नकुल को कालिदास का अज-विलाप याद आ गया—रघुवंश का अष्टम सर्ग—'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ...' इसमें आधुनिक प्रेमी ने वहिनी, भगिनी, सिस्टर को भी जोड़ दिया है...

और नकुल को याद आया पायरिया-ग्रस्त वह भाषा-शास्त्र का प्रोफ़ेसर जिसकी आयु लगभग चालीस वर्ष की होगी, उसकी बीस वर्षीया पत्नी को भाई बनाने का बड़ा शौक़ था! "व्हाट ए हॉबी"?...

कि क्रिकिकिकि...घंटी बजी...नकुल अन्दर गया। मिस्टर जोनेजा को पानी चाहिये—वह पानी लेकर अन्दर पहुँचा। उन्होंने पानी पिया और बाहर आकर नकुल ने सबकी आँख बचाकर वह जूठा गिलास वर्षा से विकसित उन्नत डेढ़ डेढ़ फुट ऊँची घास में फेंक दिया...और फिर स्टूल पर बैठ गया...

ऑफिस के वेटिंग रूम में बैठी देवा, काननवाला का एक पुराना गीत गुनगुना रही थी...और नकुल ने फिल्मइंडिया बन्द कर दिया!

भाषाशास्त्र के वे प्रोफ़ेसर कितने अच्छे थे और उनकी दूसरी पत्नी थीं वह—वह भी कितनी अच्छी थीं! राखी पर नकुल को राखी बाँध कर उन्होंने अपना भाई बनाया था... भाई...

अन्दर से आवाज़ आ रही है...

"सेल्ज़नीक! ग्रेट मैन! पोर्ट्रेट ऑफ़ जेनी देखा था तुमने! व्हॉट ए पिक्चर! इट वॉज़ नॉट ए पिक्चर..." मिस्टर जोनेजा की आवाज़!

देवा चैटर्जी ने काननवाला का गाना गुनगुनाना बन्द कर दिया है। "निखिल दादा पोरट्रेट ऑफ़ जेनी को हिन्दी में बनाना चाहते थे!" "इम्पॉसिबिल। दैट नीड्स ए सेल्ज़नीक"—परमात्मा बोला।

फिर दोपहरी की घर्र-घर्र...और एक 'ड्रैगन-फ़्लाय' घास में भटक रही है...

विया अपनी बेसुरी आवाज़ में गुनगुनाने लगी—'जॉन गॉन मॉन ऑधिनॉयक जॉय हे, भॉरत भॉग्य विधॉता...'

और नकुल देखता रहा...सामने पेड़ों के नीचे क्लास लग रही है। रम्य युवतियों का जमघट है—बीच में गुरुदेव बैठे हैं—शान्ति निकेतन में शान्ति का पाठ पढ़ाया जाता है—और नकुल उन लड़कियों में आभा को ढूंढता रहा—आभा कि जो बिलकुल गुरुदेव के पास ही बैठी थी—शान्तिनिकेतन...

"रखियाँ बँधा लो भईया!" बारिश के दिन दूर बजता हुआ वह रेकर्ड सजीव हो उठा—शद्व की स्मृति में सदा दराती की-सी तीक्ष्णता होती है...मरी हुई मानवता पर मैं एक चुल्लू ज़हर डालकर उसका तर्पण करना चाहता हूं।

और राखी बाँधी गयी, नारियल दिया गया, क्योंकि उन्हें भाई बनाने का बहुत शौक़ था...

फ़िर नकुल उस शहर से चला गया और फिर लौटा तो पाया कि दीदी ने एक दूसरा भाई बना लिया है—बीड़ी के कारखाने के मालिक रणछोड़दास के लड़के मोहनलाल को...

और मोहनलाल के मसूड़े बीड़ी अधिक पीते रहने के कारण बैंजनीरंग के हो गये थे और वह एक कत्थई स्वेटर सदा पहिना रहता था!

...और नकुल जानता था कि उसी राखी और नारियल की आवृत्ति पुनः हुई होगी...

उस दिन दोपहर को नकुल को दीदी से मिलना था...शहर के किवाड़ खुले थे—बच्चों ने कुछ कुरसियां उलटा कर रख दी थीं। रास्ते में, जिन्हें लाँघने में नकुल को कुछ दिक्कत हुई थी, पर नकुल भी ऐसे हार माननेवाला नहीं था—वह चलता गया चुपचाप, दबे पांव, हौले—हौले! 'हुप्प' करके वह दीदी को डरा देना चाहता था...

आँगन पार करने लगा तो एक गौरय्या जो वहां बिखरे चावल चुन रही थी, 'फ़ुर्र' से उड़ गयी...

और स्टुडियो में घंटी बज रही है क्योंकि अब शूटिंग शुरू है और शोर-शार की आवाजों को सांस रोक लेनी चाहिये।

आँगन पार करके नकुलने उस खंभे को देखा जो सामने खड़ा था





प्यार नहीं, घृणा बाँटूँगा !

—शैवाल सत्यार्थी

कल तक,
दुनियाँ को फूल बाँटता था,
स्नेह लुटाता था,
राह के कांटे हटाता था—
क्योंकि,
स्नेह की पावनता पर,
अंधे-शक के
ज़हरीले-बादल नहीं मंडराए थे !
दुनियाँवाले,
गन्दगी के
काले-चश्मे नहीं चढ़ाए थे !
पर आज,
नुकीले काँटे बाँटूँगा,
सिर्फ़ घृणा लुटाऊँगा,
राह में शूल बिछाऊँगा...
इसलिए कि,
घृणित दुनिया ने—
प्यार की पावनता पर शक किया है !
उस की स्वाधीनता पर हक किया है !!
इन्द्रधनुषी-स्वप्नों का स्वर्ग,
नर्क किया है !!!
तो, कल तक—
मुस्कान बांटता था,
अश्रु का कोहरा छाँटता था
प्यार का परचम बांटता था...
आज किन्तु,
प्राणों की मुस्कान नहीं—
स्नेह का स्मशान जगाऊँगा !
खुशियों का परचम नहीं,
आँसू का सरगम सुनाऊँगा !
चीख-चीख कर,
पीर जगाऊँगा, नीर बहाऊँगा—
प्यार आज बदनाम हुआ है,
खुलेआम नीलाम हुआ है !
तृप्ति नहीं, तृष्णा बाँटूँगा !
प्यार नहीं, घृणा बाँटूँगा !

कि अन्दर के कमरे से आवाज़ आयी—"नहीं, नहीं, मोहनलाल, तुम्हें मेरी कसम, नाराज़ मत हो !..."

और नकुल जैसे प्रतिहिंसा के भाव से कमरे में घुस गया—बहिन को उस दिन भाई का ज़्यादा प्यार फटा था क्यों कि उसका सिर भाई के कन्धे पर था और वह प्यारा भाई, वह आदर्श भाई, बीड़ी-सुरभित अपनी गाँठोंभरी उँगलियों से बहिन के कोकोनट-ऑयल-सिंचित केश सुलझाने में लगा था...नकुल को देख कर दोनों छिटक कर अलग हो गये थे—नकुल को मालूम हुआ था उसने गलती कर दी है—'गृहिणी भगिनी सखी मिथः...' 'गृहिणी भगिनी सखी मिथः' 'गृहिणी भगिनी सखी मिथः गृहिणी भगिनी...'

और दीदी बोली थी नकुल से—"पानी पियोगे?" और देवा ऑफिस में बैठे-बैठे बोर हो गयी है और बाहर निकल आयी है और बरामदे में खड़ी दूर-दूर तक देखती ही रहना चाहता है...

मैंने आत्मा की पूर्ति चाही थी। शरीर के परे होने की चेष्टा की थी। आदर्शों को सत्य माना था। मैंने प्रेम के लिये पुकारा था। प्रणयिनी के स्थान पर गृहिणी को खोजा था...

मेरी आत्मा भूख से कलप-कलप कर मर गयी। शरीर अस्वीकृत हो गया। आदर्श सूखे चमड़े की तरह अकड़ गये...देवा फ़ीरोज़ी जॉर्जेट की साड़ी पहिने है—

मिस्टर जोनेजा की आवाज़ आ रही है—"मुझे नहीं मालूम ! दालिया कह रही थी"...

"अच्छा भाभी ने देखी है मेरी पिक्चर?" उस चिकने-चुपड़े छोकरे की आवाज़ आयी जो अभी देवा के साथ आया था...

दालिया,—मिस्टर जोनेजा मिसेज़ जोनेजा को प्यार से दालिया कहते हैं...

और दालिया गृहिणी है ! तो फिर देवा क्या है ? देवा जो एम. ए पास करके अफ्रीका चली गयी थी !

देवा मादा है ! मात्र मादा ! और वह अब काफी बोर हो चुकी है और बोर होकर ही गुनगुना रही है—" आवाज़ दे कहाँ है ! दुनियाँ मेरी जवाँ है !!"

और नकुल सोचता है कि उसकी दुनियाँ कब जवाँ हुई ! नकुल पहिले बच्चा था। अब बूढ़ा है। जमना उसे बच्चा समझती थी और कम्मो ने उसे बूढ़ा समझा होगा...

और कम्मो की बात सोचते ही उसे लगा कि उसकी पित्त की थैली फट गयी है और कड़वा हरा-हरा पित्त, गाढ़ा-गाढ़ा कुनकुना पित्त पतले-पतले पानी जैसे रक्त में मिलता जा रहा है...

मैं किसे आवाज दूं ! मैं जो आभा की उँगलियों से भी अपरिचित हूं, हेलेन को भी हेलेन जैसा नहीं मान सका हूं और अब यहाँ टी. एम. टी-स्टूडियो में अर्दली हूं ! और देवा टहलने लगी।

और नकुल आभा की बात क्यों नहीं सोचता अब ! आभा जो एक

दिन एक हफ़्ता, एक महीना और फिर एक साल तक उसके विचारोंका केन्द्र रही है। आभा कि जो पहिली लड़की थी और शायद आखिरी कि जिसे उसने प्यार किया! क्यों नहीं सोचता है वह आभा की वात?

और रिकार्डिंग रूम में एक गाना रिकार्ड हो रहा है—"हम उनसे खुश हैं, वो हमसे खुश हैं, मज़े मोहब्बत के आ रहे हैं!"

उफ्, मोहब्बत के मज़े भी अफ़ीम की कौन सी गोलियाँ हैं? और इसी नशे में जी कर, इसी नशे में मर जाना चाहता है इन्सान कि कभी असलियत पर सोचने की तकलीफ़ उसे नहीं करने पड़े!

सामने आक के पेड़ वेतहाशा उग रहे हैं। मन्दार भी शायद इन्हींको कहते हैं; और फिर वढ़ी हुई दाढ़ी के वालों-सी कतरी हुई घास के डंठल हैं, जिनपर हॉटेल का छोकरा प्याले-पर-प्याले रखे तेज़ी से आ रहा है और देवा उसीको देख रही है!

आक के बैंजनी फूल तोड़ो तो दूध टपकता है! क्यों टपक जाना चाहता है वह दूध कि जिसे पिया नहीं जा सकता, गिलास में भरा नहीं जा सकता... जो व्यर्थ है। और सामने दो बच्चे एक चॉक के टुकड़े से किसी प्रोड्यूसर की गाड़ी पर लकीरें कर रहे हैं।—प्रोड्यूसर अन्दर बैठा है। उन मेमनों के कान उखाड़ लेने के लिये उसका सिख ड्रायवर ही काफ़ी है।...

दो 'एक्स्ट्रा' छोकरियाँ जा रही हैं जैसे नारंगी का चूस कर फेंका हुआ 'फोक'—

"मेरी क़सम?"

"तेरी क़सम! भाई मियाँ तो यह भी कह रहे थे कि उस कम्बख़्त के इरादे आगे पिक्चर बनाने के नहीं हैं!"

"बड़ा वदमाश है निगोड़ा! चार दिन की शूटिंग करली और एक पैसा भी नहीं दिया!"

"अरे पैसा तो पैसा, जोनेजा साहब का-सा हाल है। लंच के वक़्त खाना गायब, चाय के लिये भी तरस जाओ! बक़ौल सलमा के दुनिया भर के उठाईगीर यहीं चले आते हैं प्रोड्यूसर बनने!"

"सलमा भी जो काम कर रही थी उसके यहाँ!"

"सलमा ने कभी का छोड़ दिया! उसको तो बम्मो ने अपने पास एक कमरा दे दिया है!"

"अच्छा, मगर गरीब की आँखें लाल थीं। कल कुलश्रेष्ठ साहब के यहाँ शाम को गयी थी, आज सुबह छुट्टी मिली। मुझे रास्ते में मिली थी!"...

और मिस्टर जोनेजा की फिर एक आवाज़ आयी अन्दर से—"पानी लाओ!"

नकुल पहिला गिलास तो फेंक ही चुका था। इस बार दूसरे गिलास में पानी ले गया। मिस्टर जोनेजा ने पीकर वहीं अपनी मेज़ पर रख लिया।





विद्या बोली–"देखो, बाहर हमारा ड्रायवर होगा, उससे बोलो कि गाड़ी इधर ही ले आये!"

नकुल ने मन-ही-मन कहा—"नहीं बोलूंगा!" पर बाहर आकर उसने वह सब किया और विद्या की गाड़ी पर बैठ कर परमात्मा और वह दोनों चले गये!

देवा के साथ का वह चिकना-चुपड़ा लड़का भी बाहर आ गया और बोला—"देवा, जरा ठहरो! मैं अपना एक फ़ोटो खिंचवाना चाहता हूं!"

और वह सपाटे में चला गया। नकुल को हंसी-सी आयी। देवा के पास से टाटा के कोकोनट ऑयल की गन्ध आ रही थी!......

गन्ध!— स्कूल में हमेशा स्याही की कड़वी गन्ध और चूने की तीखी गन्ध मिली-जुली होती है ....

बचपन में उसे अपने हाथों में से रबर की गन्ध आती थी! ज्योमेट्री के 'फ़िगर' बना चुकने के बाद वह लक्स टॉयलेट सोप से हाथ धोता था........

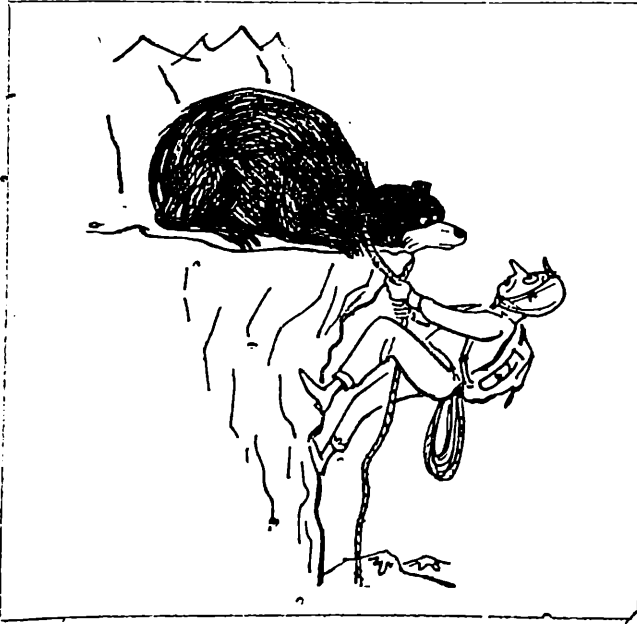
जमना के पास से जूठन की, आभा के पास से कैलेफ़ोर्नियन पॉपी की, हेलन के पास से टिंचर आइडिन या कार्बोलिक एसिड की, कम्मो के पास से पसीने में मिले घटिया इत्र की........

अनन्त गन्धों का ताना-बाना बुन गया है—उसके आगे-पीछे दाँये-बांये सब जगह गन्ध ही गन्ध है।

और उस अन्धे के पास से बीड़ी की गन्ध आती थी।

"जरा एक गिलास पानी देना!"

"यस मिस देवा!" कह कर नकुल पानी लाने चला गया। निश्चय ही नकुल के द्वारा अपना नाम लिया जाना देवा को पसन्द नहीं आया!



नकुल ने पानी लाकर दिया तो पूछा—"आप अफ्रीका से कब लौटीं मिस देवा! हाउ इज़ युअर फ़ादर मिस्टर चैटर्जी!"

देवा सन्नाटे में आ गयी! यह अर्दली उसको इतनी अच्छी तरह जानता है! उसने एक हिक़ारत भरी निगाह से उसे ऊपर से नीचे तक देख डाला।

"नाराज़ न होइये! मैं नकुल हूं! कालेज में आपका क्लास फेलो था!"

और देवा को विश्वास करते न करते समय लग गया। वह नकुल को देखती रही, पहिचानी। बनावटी मुस्कुराहट होंठों पर लाकर बोली, "आप यहाँ कैसे?"

नकुल ने अपनी कहानी सुना दी!

"आपके साथ शुतुर्मुर्ग के अंडे का-सा यह कौन है?"

"मशहूर गीत-लेखक मनरंजन! ही इज़ ए ग्रेट फ्रेंड ऑफ़ माइन!"

"रहता कहाँ है?"

"मेरे ही साथ!"

"तुम कहाँ रहती हो?"

देवा जवाब दे, इसके पहले ही वह लड़का आ गया और देवा चली गयी!

मिस्टर जोनेजा ने नकुल को आवाज़ दी। अन्दर गया तो बोले—"देखो, घर जाओ, बड़ी मेमसाब को बोलो, आज शाम को पार्टी है! मिस्टर भार्गव भी आयेंगे!"

नकुल चला! मिस्टर जोनेजा की दो बीवियाँ। बम्बई में ज़्यादातर एक बीवी से काम नहीं चलता। दूसरी बीवी पहले फ़िल्म में 'रनिंग रोल' करती थीं।

मिस्टर जोनेजा से भी रोल माँगने आयी थीं तो मिस्टर जोनेजा ने ऐसा रोल दिया जो अभी तक अदा कर रही हैं। सुनते हैं बहुत अच्छी हैं। मिस्टर जोनेजा और उनकी उम्र में चौबीस साल का फ़र्क है। मगर जवानी रुपये से पैदा होती है। नकुल अभी तक अपनी जवानी का इन्तज़ार कर रहा है।

और मिसेज़ जोनेजा को नकुल खामखाह "भाभीजी" कहने लगा। उन्होंने कोई एतराज नहीं किया तो यह नाम चल ही पड़ा।

भाभीजी! नकुल हँसा! 'वहिनजी' और 'भाभीजी' उन रंगों के कपड़े हैं जिनका पैबन्द और किसी भी कपड़े पर लग सकता है।

तेज़ी से मोटरें आ रही हैं, जा रही हैं—स्टार सिस्टम सुनते हैं खतम हो रहा है। मधुबाला के पास एक साल से कोई कांट्रैक्ट नहीं!

उसे याद आया कि मिस्टर जस्टिस खोसला साहब से जगदीश शिवपुरी ने एक इंटर्व्यू छापा था एक वार, जिसमें खोसला साहब ने फरमाया था कि बम्बई के बड़े बड़े प्रोड्यूसर प्रधानत: उनके दोस्त हैं!

और दो मोटरें और निकल गयीं! मिस्टर जोनेजा का ड्रायवर उनका लन्च लेकर जा रहा था।





अनुक्रमणिका

शाम की पार्टी में शायद नकुल को भी मदद के लिये बुलाया जाये। वैसे वह ग्राफिस का ग्रर्दली है!

मिस्टर जोनेजा की बड़ी पत्नी पैदा ही गृहिणी बनने को हुई थीं किंतु गृहिणी बन न सकीं। दुर्भाग्यवश मिस्टर जोनेजा गृहस्थ बनने को पैदा नहीं हुए थे।

सो ग्रब चाबियाँ बड़ीवाली के पास रहती हैं ग्रौर मोटार छोटी वाली के कब्जे में रहती है। पैसा छोटीवाली के पास रहता है ग्रौर रसद-पानी वगैरह बड़ीवाली के हाथ में रहता है।

मिस्टर जोनेजा किसके हाथ में रहते हैं? सदा बूढ़े पति तरुण पत्नियोंके हाथ में रहते हैं। सुनते हैं नेपोलियन ने ग्रपने सेकई बरस बड़ी उम्र की स्त्री से शादी की थी!

शाम को पार्टी हुई। एक कमरे में गोलाकार कई कुर्सियां बिछाकर उन पर स्त्री-पुरुषों को बैठाया गया। एक मेज़ पर कुछ बोतलें शराब ग्रौर कुछ बोतलें सोडे की रक्खी थीं—बड़ीवाली मिसेज़ जोनेजा वहाँ नहीं थी, केवल छोटीवाली मिसेज़ जोनेजा थीं!

पहिले कुछ लोगों ने मेज़ पर रक्खे नमकीन काजू ग्रौर पिस्ते की तश्तरियाँ इधर-उधर घुमायीं फिर पुरुष शराब पीने लगे ग्रौर स्त्रियों का मनोरंजन करने लगे। एक सफ़ेद बालों वाला डिस्ट्रीब्यूटर उनमें विशेष रूप से जिंदादिल था। उसने चार-छः गिलास पिये। मिस्टर जोनेजा का ग्राग्रह ज़ारी रहा।

एक फिल्म डायरेक्टर ग्ररेबिया हो कर ग्राया था। उसने ग्रपनी कथा सुनायी। कस्टम के ग्रधिकारियों से बातचीत होने पर उसने क्या किया?

"मैं बोला इंसा ग्रल्ला। मक्का सरीफ जाना है। ग्रौर मैं बच गया। बहुत माल ले ग्राया मैं वहाँ से!"

फिर वह सफ़ेद बालोंवाला डिस्ट्रीब्यूटर लतीफ़े सुनाने लगा। उसके लतीफ़े नकुल को बहुत यथार्थवादी लगे!

वह बुड्ढा डिस्ट्रीब्यूटर खड़ा हो गया ग्रौर स्त्रियों की ग्रोर मुखातिब होकर बोला—"ग्राप लोग माफ़ करें तो एक किस्सा सुनाऊं?"

"सुनाइये! सुनाइये!"—छोटीवाली मिसेज़ जोनेजा बोलीं। दो ग्रमेरिकन बम्बई ग्राये। इधर डिब्बे का दूध मिलता है। कोलाबा गये तो वहाँ एक हॉटिल कुछ जंचा। ग्रन्दर गये ग्रौर चाय का ग्रार्डर दिया! चाय ग्रायी पर दूध मिसिंग। 'दे वर वेरी कनफ्यूज्ड'। जो ने टॉम से कहा—व्हाट इज़ दिस! वेट्रेस को बुलाया ग्रौर कम्प्लेन किया! वेट्रेस बोली इधर दूध को हॉटिल में देने का ग्रार्डर नहीं है। तब तो बहुत गुस्सा हुए। बोले, पहले हमको क्यों नहीं बोला। वेटेस डर गयी। उसने दूसरी वेट्रेस को ग्रावाज़ दी —"मार्जरी दो ग्रमेरिकन लोग दूध माँगता।" मार्जरी ग्रायी ग्रौर उन लोगों के पास गयी। बोली—"स्पेसल दूध मिलेगा पर पैसा ज्यादा लगेगा!" "नेवर माइन्ड," वो यैंकी लोग बोले तो मार्जरी ने झट पुप्प-पुप्प... ग्रौर उस बूढ़े ने इतना गन्दा इशारा किया की नकुल ने ग्राँखें बन्द कर लीं!

मिसेज़ जोनेजा छोटीवाली की ग्रावाज़ सबसे तेज़ थी! हँस रही थी वह! फिर नमकीन काजू ग्रौर पिस्ते 'सर्व' किये जाने लगे कि हँसी-हँसी में एक प्लेट टूट गयी ग्रौर उसके काजू बिखर गये।

ग्ररेबिया-रिटर्न्ड फिल्म डायरेक्टर बोला—"इंसा ग्रल्ला, मैं ग्रापको पेरिस का एक जोक सुनाता हूं!"

"पेरिस में एकदम नेकेड डान्स देखा! मैं क्या बोलूं! ग्ररे क्या ब्यूटी थी मैं क्या कहूं ग्रापसे! एकदम नेकेड......"

ग्रौर नकुल सोडा लाता रहा। गालों के घड़े फूटे, हँसी का दूध बिखरा। दूध की नदियाँ बहने लगीं।

यह हास्य जो दूध था। नकुलने सोचा, फटा दूध था। यहाँ सब कुछ फटा है। फटे बाँस ग्रौर फटे बाँस ग्रौर फटे दिल!

फटे दिलों की दरारों में "मैक्स फैक्टर" के पाउडर के कण भरे हैं। फटे गलों से कई छोटे ग्रादमी चिल्ला रहे हैं।

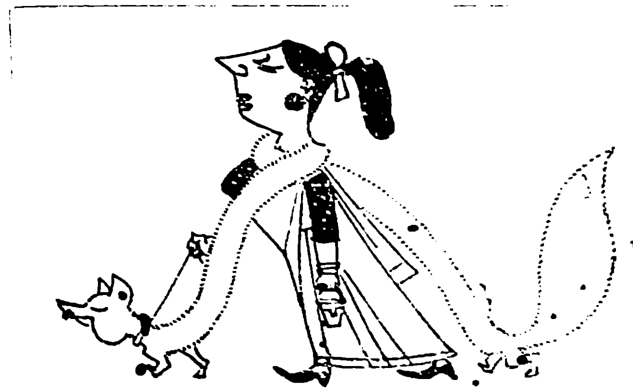
इस दुनियाँ में चुम्बन की ग्रावाज़ भी इतनी तेज़ होती है मानो वह लाउड-स्पीकर पर लिया गया हो! इस दुनियाँ का हरेक बाशिंदा लाउड-स्पीकर है। उससे बात करने से ग्रापकी ग्रावाज़ खुद ग्रापही को कई गुना तेज़ सुनाई देगी!

ग्रौर ग्रनगिनत रूप धारण करके ग्रायी है कम्मो! पर नकुल उसे पहिचानता है। क्यों कि जब वह ग्राभा बनकर ग्रायी थी तब उसे पहिचानने में नकुल को इसलिये दिक्कत हुई थी कि उसने ग्रपने ऊपर सोने का मुलम्मा चढ़ा रखा था।

मगर यह दुनियाँ ही कम्मो की दुनियाँ है! इसमें बड़ी कम्मो है छोटी कम्मो है, मँझली कम्मो है......ग्रौर ग्रंधों की दुनियाँ है जो कानों पर बड़े ज़ोर से मुंह लगा कर चिल्ला रहे हैं—'कम्मो! कम्मो!'

ग्रौर एक सड़ती हुई रात, पसीने की दुर्गन्ध, कम्मो ग्रौर ग्रंधे पीछे हैं व चौड़ी-चौड़ी ग्रास्मानी सुबह सामने से उस दीवार की तरह चली ग्रा रही है जिस पर बैठ कर ज्ञानेश्वर चांगदेव से मिलने चले थे......

नकुल ग्रगर तुम भी इस दीवार पर नहीं बैठ गये तो तुम कुचल जाग्रोगे।



अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

मगर मुझमें शक्ति नहीं है। कम्मो ने मुझे चाट डाला है। मेरा खून मीठा था। उसे जमना चाटना चाहती थी, मैं बचा, फिर आभा चाटना चाहती थी और जो मैं बचकर भागा तो आभा ने दर से ही मंत्रबल से मेरा खून चूस लिया। तो क्या हेलेन का खून भी किसी ने चूस लिया है!

• कौन है जिसने हेलेन का मीठा खून चूसा है, उस हेलन का जो एक प्रचण्ड इच्छा-शक्ति की सहायता से अभी भी प्रेम का स्वाँग भर सकती है।

स्वाँग को ज़िन्दगी कहना सुखी होने का मूलमन्त्र है। और नकुल स्वाँग को निरन्तर भेदता रहना चाहता है। फिर सुख कैसे मिलेगा। छलना में रहकर छलना को छलना मान लेने से आदमी नहीं रह जाता सिर्फ़ छलना ही रह जाती है! एक सुखद स्वप्न का आनंद इसी में है कि वह सत्य प्रतीत होता है।

और नकुल सोचता है कि मन की पुकार, आत्मा की निष्ठा भ्रम है। उसे लगता है यह जोनेजा-परिवार, नमकीन काजू, यह सब लोग और कम्मो...लोग यहीं तक आ सकते हैं। इसके आगे मानों चीन की दीवार खड़ी है!

फिर शराब का कुप कुप गिलासों में गिराने लगा कि देवा को लिये वही चिकना-चुपड़ा छोकड़ा आ पहुंचा।

नकुल दरवाज़े के बाहर खड़ा था। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते ही उस लड़के ने देवा के गालों के बहुत पास मुंह ले जा कर कहा—"आज हम लोग भी मिस्टर जोनेजा को दावत दे देंगे। दुनियाँ में काम बनाना है तो चार सौ बीस करना तो ज़रूरी है!"

"सन्डे को बुला लो!" देवा प्यार से बोली और फिर उस चिकने-चुपड़े लड़के ने अपनी आर्टीफ़िश्यल सिल्क की शर्ट की क्रीज़ को नाखूनों से दबा कर पैना बनाया और दोनों कमरे में दाखिल हुए।

"सलाम, मेम साहब!" नकुल बोला था। देवा ने जवाब दे दिया था।

कमरे में इतना शोर मचा कि समझ में ही नहीं आया कि कहा क्या जा रहा है। फिर देवा की तरफ़ मुखातिब होकर मिस्टर जोनेजा बोले—"ओ हो, मिस देवा! हम तो हमेशा मनरंजन से कहते रहते हैं कि भई, मिस देवा को नहीं लाये बहुत दिन से तुम!"

•मिस देवा आभिजात्य-संकोच से सिमटती हुई बोली"—"हूं!" और फिर उस बुड्ढे डिस्ट्रीब्यूटर ने कुछ मज़ाक किया जो नकुल ने नहीं सुना क्यों कि वह देवा को देखने में ही तल्लीन था। देवा ने प्यार भरी आँखों से घुंघराले बालों वाले मनरंजन को देखा और वह अपने हाथ के नमकीन काजू से खेलने लगी। छत का पंखा आँख बन्द कर के लाचार-सा घूमता जा रहा था। मनरंजन के उलटे कंघे से बनाये बाल उस पंखे की हवा में थोड़ा-थोड़ा काँप उठते थे। गुसलखाने से एकदम नल की आवाज़ आयी।

नकुल भरी हुई सोडे की बोतलें ला-ला कर रखता गया और खाली बोतलें वापिस ले जाता गया। खंभे आते रहे, जाते रहे, सफ़र चलता रहा।

और देवा का सहपाठी होना नकुल के काम आया। मिस्टर जोनेजा ने अर्दली से उसे असिस्टेंट डायरेक्टर बना दिया। तनख़्वाह डेढ़-सौ रुपये!

और 'शूटिंग' में नकुल 'क्लैप' देने लगा। जब डायरेक्टर 'क्लैप' चिल्लाता, वह दौड़ कर तख़्ती को बजा कर भाग जाता!

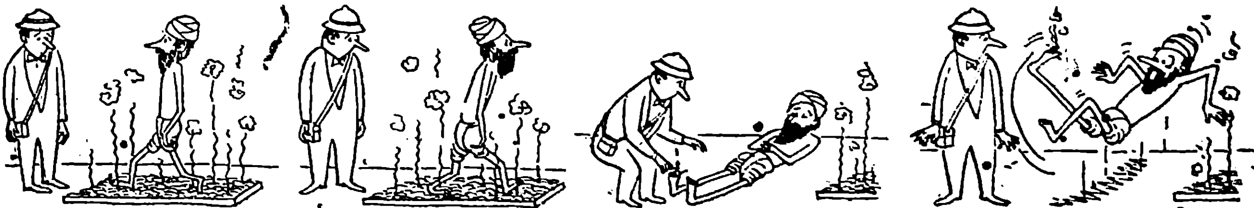
हज़ारों कैन्डल पावर की रोशनी में शूटिंग चलता। उस दिन रात को गाने की शूटिंग थी...

नकुल एक छोटे-से बच्चे को बहुत प्यार करता था। वह छोटा-सा बच्चा उस चलचित्र में जो मिस्टर जोनेजा बना रहे थे, एक बीड़ी के कारखाने में काम करनेवाले का पार्ट कर रहा था। उसकी माँ एक टैक्सी पर उसे लेकर आती और जब तक शूटिंग होता तब तक वहीं रहती...

उस दिन रात को भी शूटिंग थी। पहले रोशनियाँ एडजस्ट हुईं, फिर लम्बे-लम्बे रस्सों से बंधे तख़्तों पर तगड़े-तगड़े कुली चढ़ गये। डायरेक्टर नीचे कैमरामैन के पास बैठा स्ट्रा से कोका कोला को खींच रहा था। चित्र की नायिका उसीकी कुरसी पर एक तरफ़ बैठी विमटो की बोतल से स्ट्रॉ-द्वारा सम्बन्ध स्थापित किये हुई थी। 'लाइट' के स्विच पर बैठा एक आदमी ज़ोरों से चाय सुड़क रहा था। लेई, सरेस और वार्निश की गन्ध फैल गयी थी। कुछ आदमी जो शूटिंग देखने के शौकीन थे, एक तरफ़ को कतार बाँधे खड़े थे!

असिस्टेंट कैमरामैन नकुल के पास आया—"आपकी तो पर्सनैलिटी बहुत अच्छी है। कोई रोल करिये ना!"

नकुल ने उसे जवाब नहीं दिया। वह थोड़ी देर उसके पास खड़ा गुनगुनाता रहा—"तेरी दुनियाँ से दिल भर गया!" और नकुल के लिये यह सब नया है! वह इस दुनियाँ को अच्छी तरह समझ लेना चाहता है जिसमें देवा की सिफ़ारिश से एक अर्दली डायरेक्टर बन सकता है।



अनुक्रमणिका

मगर उसमें फर्क क्या है? सिर्फ़ नामकाही तो फर्क है! भंगी को भंगी कहिये तो क़भी आपका काम ठीक नहीं हो सकता!—मजदूर को मिस्त्री! मास्टर को गुरुजी या 'सर'! सन्तरी हवालदार, भंगी जमादार,... 'सेट' पर के अर्दली को असिस्टेंट डायरेक्टर कहा जाता है! तनख्वाह ज़रूर ज़्यादा है मगर नकुल की हड्डियाँ इस उत्तरदायित्व के बोझ के नीचे पिसी जा रही हैं।

• वह जानता है कि इसफ़ शाही की चाशनी में उसे कोई दिलचस्पी नहीं! यह सैकिन की चाशनी है। ज्यादा हो जाये तो कड़वी हो जाती है!

उस छोटे से लड़के का नाम फ़ीरोज था जो इस चित्र में काम कर रहा था और नकुल जिसे प्यार करता था!

"रात की शूटिंग बड़ी 'हार्ड' होती है अंकल!" कह कर वह लड़का नकुल के पास आ खड़ा हुआ।

"क्यों नींद आ रही है क्या?"

"यस, आय एम फीलिंग वेरी स्लीपी!"

"तो सो जाओ ना!"

मगर एक साथ डायरेक्टर की कोका-कोला की शीशी खतम हो उठी और वह चिल्लाया—"लाइट्स!"

लाइट्स हो गयीं! नायिका खोखों से बने एक पहाड़ पर खड़ी होकर गाने लगी —"म्यूज़िक स्टार्ट!"......

ठण्डी हवा चले, मन मोरा जले,
आ जा मेरे प्रीतम, लगा मोहे गोले।

असल में म्यूज़िक बज रहा था और नायिका सिर्फ़ होंठ हिला रही थी। प्ले-बैक था।

"गोले!"—तहलका मच गया! "गलत स्ट्रिप आ गया है साउन्ड का! नकुल, नकुल!"

नकुल हाज़िर हुआ। "तुमसे मैंने कहा था कि एक स्ट्रिप में गलती से 'गोले' रिकार्ड हुआ है। हिन्दी न गानेवाली को आती है, न रिकार्डिस्ट को! तुम क्या सो रहे थे!"

नकुल अपराधी-सा खड़ा रहा। "अब मुंह क्या ताक रहे हो! जल्दी से ठीक वाला स्ट्रिप लेकर आओ!" नकुल दौड़ा। डायरेक्टर फिर चिल्लाया—"लाइट्स ऑफ़!" फीरोज़ नकुल के पास दौड़ कर आया और उसने पूछा—"हम मेकअप रूम में सो आयें दो मिनट अंकल! मम्मी भी वहीं सोने गयी हैं?" "हाँ! हाँ!" कहकर नकुल भागा। जल्दी से टोकवाला "साउन्ड ट्रैक" निकाला और अंधेरे में बेतहाशा दौड़ चला! 'सेट' स्टूडियो-कम्पाउन्ड के ठीक दूसरे कोने पर लगा था।

बीच में ही 'फ़ीरोज' मिला। "अंकल, अंकल, एक मिनट आइये! देखिये, मम्मी क्या कर रही हैं। मेकअप बॉय को आप जानते हैं ना!", और नकुल मेक-अप रूम पर गया, जरूर गया। फ़ीरोज़ ने बन्द किवाड़ की दरार में से उसे दिखाया! नकुल ने एक क्षण को देखा। फिर फ़ीरोज की पीठ थपथपाता हुआ बोला—"चलो बेटे, साउन्ड-ट्रैक आ गया है, शूटिंग शुरू हो रही है!"

जिस दुनियाँ में खड़े होने की कोशिश नकुल ने की है, उसी में दरारें पड़ गयी हैं! फिर भी दरारें फटती नहीं, नकुल फटता है!

* * * * * *

दो महीने बीत गये।

जोनेजा साहब के आउट हाउसेज में एक तरफ़ साइकिल रहती है और दूसरी तरफ़ नकुल—

सुबह सात बजे उठकर नकुल चाय बना रहा था, सिगड़ी थी और कोयले भर कर वह जलने लगती थी—

नकुल बैठा-बैठा देख रहा है, सामने डोडेना का विटप शान्त खड़ा है और सुबह का आसमानी प्रकाश फैलता जा रहा है—

नकुल देख रहा है। दूर, वहीं बहुत दूर दूध से धुली एक सत्रह वर्षीय गोरी लड़की अपने बरामदे में मोढ़े पर बैठी यूकलिप्टस की तरु-पंक्तियों के पार से आनेवाली मोर की आवाज़ को ध्यान से सुन रही है। वह अजान है; अरे, वह तो बिलकुल अजान है। मासूम खूबसूरती का चिराग़ घी की ज्योत है और नकुल घृत-सौरभ से मन ही मन भर उठा है।

वह मासूम लड़की उदास है। उसे अपने राजकुमार की प्रतिक्षा है। वह राजकुमार जिसकी प्रतिक्षा में वह बैठी है और धूप चढ़ती जा रही है।

और प्रोफेसर चैटर्जी की लड़की देवा जो चर्च में जब 'आवे मारिया' गाती थी तो नकुल सोचता था कि पवित्र प्राणों का संगीत कितना पवित्र होता है! वह देवा मनरंजन के साथ स्टूडियो-स्टूडियो ख़ाक छानती फिरती है। 'आवे मारिया' की अन्तिम परिणति यही है क्या? चर्च का संगीत फिल्म के आर्केस्ट्रा में डूब गया है!

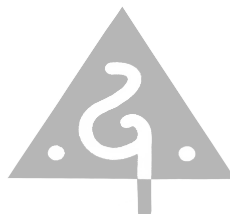
देवा मनरंजन को कितनी प्यार भरी आँखोंसे देखती है। और खोया नकुल उत्कट रूप से महसूस कर उठा कि उस प्यार का वह भूखा है! मगर वह मनरंजन नहीं है! सोचते-सोचते भगौने का पानी जो केतली में डालने लगा तो भगौना उलट गया और उबलता हुआ पानी उसके पाँव पर गिर पड़ा!

कहीं कोई मेरी पुकार को सुनेगा? मैं पतित बनूंगा, गर्हित बनूंगा क्योंकि उच्चता में विश्वास करने के अर्थ हैं विस्फोट......

"बाबूजी!"

नकुल को पाँव में सख्त जलन हो रही है! सुबह की ठंडी और तन्दुरुस्त हवाएँ बह रही हैं मगर खौलता हुआ पानी पूरी तरहसे अपना काम कर चुका है! नकुल जीना चाहता है क्योंकि जीने में ही अपना नकार है। मर जाने से तो जैसे अहंकार की अव्यक्त अतृप्ति होती है। दुनियाँ का हर काहिल खुदकुशी कर सकता है पर जीवन की गोदमें गर्म तेल का कड़ाह उंडेल देनेवाली मौत को गले लगा लेना बड़ा मुश्किल काम है!





मैं जिऊंगा और कई साल जिऊंगा क्यों कि मर चुकने के बाद आदम का बेटा मौत का मज़ा भी नहीं ले सकता।

"बाबूजी!" फिर आवाज़ आयी। नकुल साइकिल की आवाज़ पहिचानता है। और साइकिल उसे सुबह के सात बजे आवाज़ दे सकती है तो जरूर ज़िन्दगी ज़िन्दा रहने के काबिल है!

नकुल लँगड़ाता हुआ बाहर आया!

"माचिस होगी आपके पास?"

"हाँ, हाँ, कह कर नकुल अन्दर चला आया और पुनः भगौने में पानी भर कर चाय के लिये रखने का आयोजन करने लगा। दुनियाँ में चालाक आदमी को जो प्राप्य है वह अच्छे आदमी के प्राप्त करने के योग्य ही नहीं, कहना हो तो वह लो। पर, अच्छे और बुरे दोनों आदमी इन्सान हैं, माचिस लेकर साइकिल गयी।

दुनियाँ में प्यार भी चोर बाज़ारी से ही कमाया जा सकता है। प्रोफ़ेसर चैटर्जी ने साठ बरस उम्र में दूसरी शादी की थी। कहते हैं, बंगाल में लड़कियाँ बहुत आसानी से मिल जा सकती हैं। तो क्या मैं बंगाल चला जाऊँ, नकुल ने खुद अपने से मज़ाक किया।

दूर किसी घर से पूजा की घण्टी सुनायी दी तो नकुल ने आँखें मूँद लीं! "हे घट-घट में बसनेवाले प्रभो, क्या मुक्ति की साधना की जा सकेगी! क्या प्यार के घड़े में रखे थोड़े से पानी को ठुकरा कर मैं अनन्त प्यार, असीम स्नेह की सिद्धि कर सकूँगा? मैं जिसने सदा भूल की, क्यों कि मैं रूप नहीं ढूँढ रहा था नाथ, रंग नहीं ढूँढ रहा था। मैं गुण भी नहीं ढूँढ रहा था। मैं ढूँढ रहा था वह कठोरता जिसके समक्ष एक दिन स्वयं भगवान शंकर को झुकना पड़ा था!"

और नकुल के सब पर्दे खुल रहे हैं। ज़िन्दगी के नये-नये रूप सामने आ रहे हैं।

दीदी और मोहनलाल,

आभा और वह कश्मीरी छोकरा, फिर मुसलमान युवक,

फिर हैदराबाद के बिजनेस मैन का बेटा...

पर हेलन में प्रत्यक्ष-से यह कुछ नहीं है। फिर नारोचित संकोच उसमें पटुता मात्र है, स्वाभाविक नहीं है। शरमाती है तो उसकी शरमाहट स्वाभाविक शरमाहट से भी अधिक सुन्दर लगती है क्योंकि प्रैक्टिस करने से इन्सान क्या नहीं कर सकता...

"हेलेन बेशरम है!" नकुल ने ज़ोर से कहा। फिर डर कर चारों तरफ़ ऐसे देखा जैसे हेलन वहीं खड़ी हो!

नकुल शक्ति का उपासक बनेगा, वह प्रेम में ओजगुण की प्रतिष्ठा करेगा। व्यक्ति की क्षुद्र सीमाओं से निकाल कर उसे सार्वभौमिक बनायेगा। वह जन-जन का बनेगा। वह ईसा मसीह बनेगा। पांव ज़रा जल गया है! उंह!

ईसा मसीह? और नकुल एकदम से चाय पी लेना चाहता है।

चाय प्याले में ढल गयी है। नकुल प्याला लेकर बैठा है और भाप प्याले पर नाच रही है। आज मैं स्टूडियो नहीं जाऊंगा, उसने सोचा।

ईसा मसीह! क्यों मैं ईसा नहीं बन सकता। मैं सलीब पर कीलों से ठोंका जाऊं, इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या है! मगर मैं तो वह बढ़ई हूँ जो पैसा मिलने पर ईसा के लिये भी सलीब बनाता है और और किसी के लिये भी!

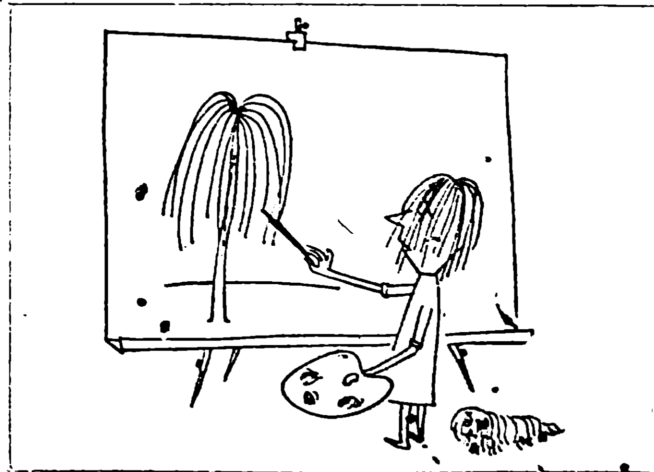
और क्या हम सब अपनी-अपनी सलीब उठाये नहीं चल रहे हैं! थक गये हैं मगर जिन्दगी के रास्ते पर अपनी-अपनी लाश नहीं ढो रहे हैं और नकुल चाय पीने लगा।

क्यों मैं ईसा मसीह नहीं बन सकता। क्यों मैं उन लोगों को प्यार नहीं कर सकता जिन्होंने मेरे सिर पर काँटों का ताज रखा है और सलीब पर मुझे ठोंक दिया है। इसलिये कि मैं प्यार पाना चाहता हूं—देना भी चाहता हूं तो एकाध किसी स्त्री में उसे केन्द्रित करके!

स्त्री! नकुल हँस पड़ा! क्यों मैं स्त्रियों को लेकर इतना परेशान हूं! इसीलिये ना कि मेरे अधिकार में वह नहीं आयी हैं! मेरे स्वामित्व को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है!

चाय खतम हुई। दूसरा प्याला बना। प्यार मेरे लिये नहीं है। चाय मेरे लिये है। और नकुल विनोद में सोचता है—"क्यों मैं सदा चाय पीता ऐसे बैठा नहीं रह सकता!" मैं जो जीवन को देखना चाहता हूं! मगर यही तो मुश्किल है—दृष्टि का मूल्य है भुगतान! द्रष्टा को भोक्ता बनना ही पड़ेगा। उसे याद आये जूलियस फ्यूशिक के शब्द—"जीवन नाटक में कोई दर्शक नहीं हैं। सब अभिनेता हैं!" पांव में जलन हो रही थी।

तो क्या मैं अभिनेता बनने से डरता हूं। क्या मेरे स्वार्थ अभिनेता बनने से खतरे में पड़ते हैं? क्या द्रष्टा बनने का मेरा अभिमान खंड-खंड हो जाता है! मैं अभिनेता बनूंगा। अभिनय करूंगा पर अभिनय को सत्य एक क्षण को भी नहीं समझूंगा। तो क्या मैं जानता हूँ कि नाटक करनेवाला वास्तव में वह चरित्र नहीं है कि जिसका वह अभिनय कर रहा है?



मिस्टर जोनेजा के नौकर काम में लगे हैं। साइबिल माचिस लेकर वापिस आ गयी है। वह सामने खड़ी है। माचिस उसने वापिस कर दी है पर फिर भी वह सामने खड़ी है!—

"बाबू, ऐसा केतले दिन तक चाय बनायेगा? सादी करेंगा कि ऐसा ही रहेंगा!"

"करेंगा! कोई लड़की है?" नकुल विनोद में बोला।

"अरे, वा! मसखरी करता है। हम क्या लड़की ढूंढेगा आपका वास्ते! आप ने पटा के रखा होगा कोई जरूर!"

यह मुहावरा नकुल के लिये शुरू में नया था, अब वह इसका अभ्यस्त हो गया है। बिजली के शॉक के आप कितने ही अभ्यस्त हो जायें पर जब झटका लगता है तो हाथ पीछे को जाता ही है! नकुल भी कुछ झटका खा गया। साइबिल नीचे का होंठ जीभ निकाल कर चाटती हुई बोली—"स्टूडियो में नाइट शूटिंग को जाता है तो जरूर गड़बड़ करता होगा कुछ!" और फिर वह हँसने लगी।

आभा, हेलेन, बम्मो, साइबल, देवा इनमें से बुरी कौन है? दिल में जैसे सबके प्यार भरा है। अपनी छाती का दूध पिला कर भी जो मरते हुए इंसान को जिला लेना चाहती हैं। वे—आभा, हेलेन, बम्मो, साइबिल, देवा! मुश्किल यह है कि इन लोगों की छाती में डिब्बे का दूध भरा है! माँ का दूध कहीं होता तो इंसान ऐसे भटकता! सीता से जब हनुमानजीने कहा कि "माता चलिये! सेवक की पीठ पर बैठ जाइये। मैं आपको ले चलता हूं" तो वह बोलीं, "मैं राम की पत्नी हूं। उनसे कह देना कि जब वह रावण को मारकर दिन-दहाड़े मुझे यहाँ से ले जायेंगे तभी मैं जाऊंगी!" पार्वती की अखण्ड तपस्या के बीच जब शिव ब्राह्मण का रूप धरकर आये और बोले, "पार्वती आपकी जैसी सुन्दरी सुशीला उस त्रिशूलधारी वृषभारोही को पाना चाहती हैं! संसार सुनेगा तो हँस देगा!" तब पार्वतीजी ने कैसी खरीखोटी सुनायीं!

मगर साइबिल को बहुत प्यार आ रहा है नकुल का आज। वह यह नहीं देख सकती कि नकुल इस तरह सदा अपना पांव जलाता रहे और चाय बनाता रहे। खाना उसे वक्त पर मिले नहीं। कुछ भी काम उसका वक्त पर न हो। इस तरह तो उसकी सेहत बिलकुल खराब हो जायेगी!

और मैं अपनी सेहत के प्याले को टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहता हूं कि जिससे उसमें भरी जिन्दगी की शराब बिखर जाये। चिटखी हुई दरारों में से बूंद-बूंद टपकते इस कोफ्त से वह बहुत अच्छा है। तो नकुल भी आज साईबिल को प्यार करेगा! उसे अब प्यार देने या पाने की बिलकुल जरूरत नहीं है।

ऐसे नकुल आज से अभिनय आरंभ करेगा।

"साइबिल, तुम तो अपनी जैसी ही कोई लड़की ढूंढ दो मुझे! मेरा काम चल जायेगा।" पहिले तो साइबिल शरमा गयी, फिर बड़े प्यार से उसने सिर घुमाया कि अरे जाओ भी! मगर अगले ही क्षण वह खिलखिला पड़ी और उंगली उठा कर बोली—"बड़ा हलकट है! हमको भी फाँसना मांगता है!"

नकुल अभिनय करेगा। नहीं करेगा तो इस विशाल नाटक में उसका 'रोल' बिलकुल खराब हो जायेगा। "तुमको क्या फाँसूंगा साइबिल तुम तो शादी-शुदा हो!" और नकुल फिर चाय बनाने लगा।

तो क्या नकुल पागल हो गया है। चाय पर चाय बना कर क्या वह सचमुच पीते रहना चाहता है!

"अच्छा, एक लड़की हम देखा है। बोलो, करेगा सादी?" नकुल शान्त रहा। हँस कर बोला "करेगा!"

धूप चढ़ आयी थी। नकुल ने एक प्याला चाय और पी और वह स्टूडियो भाग गया। रात को आठ बजे लौटा तो साइबिल उसका इन्तज़ार कर रही थी। दूर से रेल की एक तीखी सीटी गूँज गयी जब साइबिल ने उसे बताया कि उस लड़की को देखने चलना है! नकुल गया। अभिनय पूरा-पूरा करना है!

एक हॉस्पिटल आया। लम्बा-लम्बा कॉरीडोर! नकुल का अतीत किसी भूत की तरह आ कर खड़ा हो गया। साइबिल ने बता दिया कि यह लड़की नर्स है!

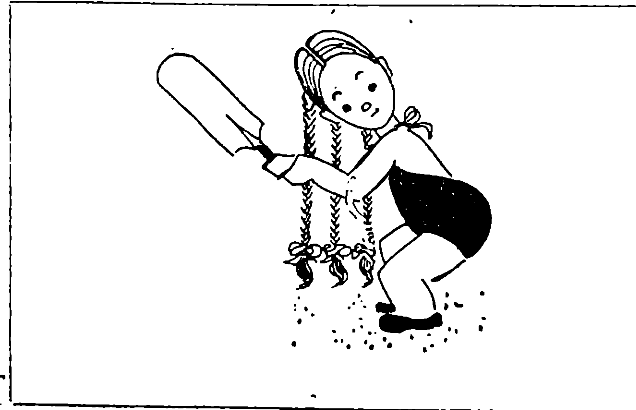
नर्स! नकुल कौतूहल से, निर्लिप्त भाव से देख रहा है। उकताहट-भरी इस जिन्दगी में वह कुछ करना चाहता है कि जिससे उकताहट हटे! साइबिल उस लड़की को बुलाने गयी है। दूर ऑफिस में साइबिल कुछ पूछ-ताछ कर रही है। नकुल टहल रहा है। एक कॉटेज वार्ड के हवा से थोड़ा खुल जानेवाले दरवाज़े के भीतर उसने देखा—मि. दिलीपकुमार वांचू का सा कोई आदमी सोया है!

भ्रम हुआ, नकुल ने सोचा! दिलीपकुमार वांचू यहाँ कहाँ! एक साथ एक हलकी आवाज़ आयी, "हेलेन कम हियर!" मालूम नहीं किस तरफ़ से आ कर हेलेन उनके बिस्तरे पर झुक गयी। नकुल देख रहा है। अधरों से अधर मिल गये हैं!

मगर अब नकुल का मन निर्लिप्त निर्विराग है। वह जानता है कि यह दिलीपकुमार वांचू ही हो सकते हैं। आभा कहाँ है?

नकुल वहाँ से हट गया। थोड़ी देर बाद हेलेन निकली तो साइबिल आ कर बोली— "ओ हेलेन, कितनी देरसे ढूंढ रही हूं तुमको!"

नकुल चुपचाप अंधेरे में खड़ा था! ● ●







अनुक्रमणिका



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत


दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट



आभा की कहानी

वह मुझसे लिपट गयी। बोली: पहले तुम मुझे मार डालो, फिर कहीं भी ले चलो। जिंदा होने से पहले मैं एक दफा मर जाना चाहती हूँ। किसी और के मारने से पहले तुम ही मुझे मार डालो।

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

आभा कह रही थी: नितांत एकाकीपन की आधुनिक जिंदगी बिताते बिताते मनुष्य के जीवन में एक ऐसा समय आता है, जब उसके हृदय का रस एकदम सूख जाता है। तब फिर सेक्स ही शेष रहता है, ड्राई एंड प्योर सेक्स—क्योंकि उससे कभी भी छुटकारा नहीं है। मैं अब उसी स्थिति में से गुजर रही हूँ। और यह बड़ी अजीब पीड़ा की स्थिति है। लगता है, जैसे सब कुछ चटख रहा है, सब कुछ टूटा-फूटा जा रहा है। जैसे चारों तरफ अपार रेगिस्तान फैला हो और पानी की एक भी बूँद कहीं दिखाई न पड़ती हो। मन और शरीर सब धीरे-धीरे सुलगता रहता है, असहनीय पीड़ा देता रहता है—पर 'पीड़ा' शब्द शायद इसे व्यक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है। मानवी अनुभूति की यह नयी स्थिति है, इसके लिए नया शब्द बनाना चाहिए।

यह आभा—यानी डॉ. (मिस) आभा भटनागर—मेरी कज़िन है। निम्नमध्यवर्गीय हिन्दू परिवार में यह पैदा हुई थी। बड़ी तेज़ और महत्वाकांक्षी थी, इसलिए आगे तो बढ़ती रही, परंतु हरेक सफलता का जरूरत से कहीं ज्यादा मूल्य चुकाकर। आखिरकार 'करियर' तो उसने अपना बना ही लिया, और अब एक खासी मशहूर डाक्टर है, परंतु शादी नहीं कर सकी जो किसी भी हिन्दू लड़की के लिए बड़े दुर्भाग्य की बात होती है। परिवार के लिए वह बहुत कुछ करती है, फिर भी एक तरह से उससे अलग ही है। वह खुद कइयों का सहारा है, परंतु कोई उसका अपना सहारा नहीं बन सका। हम दोनों बचपन से ही बहुत समीप रहे हैं, एक दूसरे को समझते भी रहे हैं, इसलिए वह मेरा थोड़ा-बहुत सहारा जब तब लेती रहती है। बदनामी के बावजूद अक्सर कई दिन तक मेरे साथ आकर रह जाती है या मुझे ही अपने यहाँ बुला लेती है—जैसे इस बार ही अचानक तार देकर बुला लिया है। सच यह है कि यदि हम संबंधी न होते, या हममें कुछ साहस ही अधिक होता, या फिर हिन्दू न होकर हम मुसलमान होते, तो हम ज़रूर शादी कर लेते। और फिर इन किस्सों की, या ऐसी बात सुनने की—जैसी आभाने ऊपर कही हैं—नौबत न आती। अब उसके बिना ही काम चला रहे हैं।

मैं खुद भी बहुत कुछ उसी जैसी स्थिति में से गुज़रा हूँ। लेकिन पुरुष होने के सबब से, जिंदगी के प्रति कतई डिसइल्यूज़न होकर भी

अनुक्रमणिका

उसके विपरीत एक नितांत भिन्न निष्कर्ष और स्थिति को जा पहुंचा हूं। वह यह कि कुछ कुछ वकौल कामू, जिंदगी के विविध पहलुओं में जरूरी तौर पर कोई हारमनी नहीं है और बहुत कुछ ऐसा होता रहता है, जो एब्सर्ड होने के साथ-साथ कएल भी है। अब यह है और रहेगा, और इसे स्वीकार कर के ही कुछ और करने में मनुष्य की बुद्धि का वास्तविक उपयोग है। आभा को भी मैं बडे प्यार से यह सब समझाने की कोशिश करता हूँ—कहते हैं कि ज्ञान से मुक्ति हो जाती है—पर वह ध्यान से सुनने के बाद भी समझती नहीं है और ईश्वर तथा उसकी करुणा क्षमाशीलता आदि को जबरदस्ती बीच में घसीट लाती है।

इसी तरह सेक्स का सवाल। आभा इसे जरूरत से ज्यादा गंभीरता से लेती है, और कुछ तो परिस्थितियों की आग से जलती है, कुछ खुद ही अपने हाथों पंखा झलकर उस आग को भड़काती रहती है। मैं कहता हूँ—आभा, सीधी रेखा में सोच। ब्रह्मचर्य का पालन करना है, तो धर्मग्रंथ पढ़, मंदिर गुरुद्वारे में जा, और पंखा करने की यह बुरी आदत छोड़। विधवाओं के लिए नियत आचारों का भली भाँति पालन कर।

वह इस उपदेश को पानी की तरह पी जाती है और कहती यह है: मैं यह सोचती हूँ अमल, कि मेरी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार कौन है? क्या मैं खुद? अगर हाँ, तो क्यों? मैंने तो दुनिया में कभी किसी की बुराई नहीं की, हमेशा सबके लिए कुछ न कुछ करती ही रही, और कौन सा दुख-कष्ट ऐसा है जो मैंने नहीं झेला। फिर भी असली कुछ भी मेरे हाथ क्यों नहीं आया? क्यों दिन-दिन क्षण-क्षण यही लगता है कि सब कुछ नष्ट होता जा रहा है?

मैंने कहा: अब तुम दार्शनिक बनने की गलत कोशिश कर रही हो। यह काम पुरुषों का है। ये पत्थर उन्हें ही तोड़ने दो।

लेकिन वह रुकी नहीं, कहती ही गयी: कभी-कभी मैं यह भी सोचती हूँ कि समाज टूट-फूट गया है। अब इसमें व्यक्ति की कोई रक्षा नहीं है। चारों तरफ से मार ही मार है।

मैं ऊबता सा बोला: हो सकता है, हो सकता है। लेकिन अब देर हो रही है, शाम का प्रोग्राम भूल रही हो क्या? आज 'गुफा' में चलना है, जहाँ तुम्हें बहुत अच्छा लगता है। चलो, झटपट तैयार हो जाओ।

पर उसने तैयार होने की कोई उत्सुकता नहीं दिखाई और कहती ही रही: और इस तरह की स्थिति में आदमी समाज से स्वतंत्र नहीं हो जाता? तुम बताओ, तुम्हारी क्या राय है?

मैंने सोच-समझकर कहा: तुम्हारी लॉजिक के हिसाब से तो यह स्वयंसिद्ध होना चाहिए, परन्तु तब यह गणित हो जाता है और गणित जीवन में चलता नहीं है। गणित के घोडे पर बैठकर आया सत्य भी जीवन के लिए अग्राह्य है। फिर, यह अपने-अपने मन के निर्णय करने की बात है। इस के आचरण के लिए कलेजे की बेहद मजबूती भी चाहिए।

वह बोली: मैं तो अपने मन के सामाजिक संस्कारों और दायित्वों से मुक्त होने की चाह बड़ी तीव्रता से महसूस करने लगी हूँ। कभी-कभी सोचती हूँ कि यह नहीं कर सकी, तो पागल हो जाऊंगी। अब ताजी हवा पिये बिना प्राण चलता नहीं रह सकेगा।

आभा की इस बात ने मुझे बहुत व्यथित कर दिया। देखा, उसके चेहरे पर अचानक गहरी घुटन की सैकड़ों-हजारों रेखाएं व्यक्त हो आई हैं। उसके लिए मन में बड़ा प्यार उमड़ आया। बच्चों की तरह उसे दोनों बाँहों में भरते हुए मैंने कहा: आभी, चल यहाँ से, तू मेरे साथ चल। मैं जहाँ भी ले चलूं, तू चल। अपने भीतर से जैसे भी हो, निकल। मैं तुझे ताजी हवा और ठंडा पानी, जो भी तू चाहेगी, भर पेट पिलाऊंगा।

वह मुझसे लिपट गयी। बोली: पहले तुम मुझे मार डालो, फिर कहीं भी ले चलो। जिंदा होने से पहले मैं एक दफा मर जाना चाहती हूँ। किसी और के मारने से पहले तुम ही मुझे मार डालो।

—तू मरना चाहती है तो मार ही डालूंगा। पर जरा बन-संवर तो ले। सजावट के बिना जायगी, तो मौत भी तुझे लौटा देगी। दुनिया का रवैया तो तू जानती ही है।

आभा ने इस जहरीली बात का जायका लिया और पहली दफा मुस्करायी। उसके गालों में कई बल पड़ गये और एकाध छेद भी हो आये। एक अच्छे से छेद में मैंने अपनी नाक गड़ा दी और उसे सहलाया। इस प्यार को लेते लेते वह बोली: अमल, तुम इस तरह मेरे ऊपर छा जाओ। मेरा सब कुछ ले लो और सोचने-समझने की मेरी ताकत को बन्द कर दो।

● ● ●

और उस रात मैंने उसका सब कुछ ले लिया। बड़ी खुशी से उसने दिया और फिर बेहोश होकर सो गई। पर पता नहीं क्यों, मुझे देर तक नींद नहीं आई और मैं खिड़की से आती हल्की हल्की रोशनी में बिस्तर पर पड़े उसके शरीर को देखता रहा। अब जैसे उसमें एक शांति थी, स्थिरता थी, युग-युग की अशांति और चंचलता जैसे अब नष्ट हो गई थी। हाथ और पैर उसके, और उसकी जाँघे और कन्धे जैसे रिलैक्स कर रहे थे, और गद्दे में उनके गड्ढे पड़ गये थे।

कभी वह करवट लेती तो मुँह का भाग घूमकर सामने आ जाता और फिर तकिये में छिप जाता। मुझे लगता, जैसे वह हंस रही हो और अभी अपनी आँखें खोल देगी। दो-एक बार तो मुझे भान हुआ कि वह कुछ कह रही है और मैं उठकर बैठ गया। वह कह जरूर कुछ रही थी, पर सोते-सोते ही वह रही थी। मैंने उसके बाल छुए तो सोते-सोते ही उसने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और पहले से ज्यादा गहरी नींद में मग्न हो गई। मैं कुछ देर तक उसके पास बैठा रहा, फिर हौले से हाथ छुड़ाकर उठ आया और थोड़ी देर में खुद भी सो गया।

सबेरे वह देर से जगी और मैं चूंकि तब भी सो रहा था, मेरे लिए बेड टी तैयार करके मुझे जगाने आ गई। मैं चाय पीने के लिए अधलेटा सा हुआ और हाथ से कप पकड़ने की कोशिश में लगा, तो उसने कहा मैं पिला रही हूँ। तुम लेटे ही रहो।

मैंने जरा रुककर उसके मुख और आँखों की ओर देखा क्योंकि सोचा, शायद आज इसे कुछ संकोच होता हो। पर कहाँ, वह तो पहले से ही






दीपावली
शुभचिंतन!
फोन नंबर
२५२९४५
बॉम्बे प्रोसेस स्टुडिओ
क्रिसेन्ट चेम्बर्स, टॅमरिण्ड लेन, फोर्ट, मुंबई-१.

मेरी गतिविधियों को देख रही थी, क्यूँ कि अपनी आँखों के दायरे में मुझ लेटे हुए को बड़ी समग्रता से लिये थी। मेरे देखने पर जरा सी मुस्कराई और फिर पूर्ववत् चाय पिताती रही मानों न कुछ खास बात हुई हो, न हो ही रही हो। जैसे इसी तरह यह सब युग-युग से चलता आया हो, आज भी चल रहा हो।

मुझे अचानक बड़ी पूर्णता का, रिक्तता के भरने का, अहसास होने लगा। थोड़ी देर तक यह अहसास लेते रहकर मैं यह सोचने लगा कि यह चीज़ क्या है जो क्षय को, शून्य को, भर रही है—मैं उसे पकड़ पाने की कोशिश करने लगा। यह समझ में तो आया कि जिसे 'जिंदगी' कहते हैं, अपने असली रूप में वह यही है, और इस समय उसके झरने हमारे ऊपर, दायें, बायें, चारों तरफ भर रहे हैं। यह भी जाना कि इसी के चारों तरफ संसार की और सब छोटी-बड़ी चीजें पिरोयी हैं, जो फिर बहुत बड़ी होकर असली चीज़ को छिपा लेती हैं, परन्तु उसे सामने की चाय की तरह देख न सका, आभा जिस तरह कप को पकड़े थी, उस तरह पकड़ न सका। हवा की तरह छू भी न सका। तब आँखें बन्द कर लीं और, दूर से ही सही, उसकी तरावट का अनुभव लेकर कृत्कृत्य हो गया।

दिन भर आभा बड़ी खुश रही। शाम को ज़िद कर के बोली—'चलो, आज गुफा चलें।'

हम गये और एक छोटी सी मेज पर बैठे। पड़ोसियों ने हमको देखकर भी न देखने की अदा दिखाई और उनके साथ की लड़कियों और स्त्रियों की तिरछी नजरें आभा के एलीगेन्ट मेक-अप को चुपचाप परखती रहीं। इस पर मुझे भी आकर्षण सा हुआ और मैंने भी आभा को जरा ध्यान से देखा। जैसे पहली बार ही उसे देख रहा था। सचमुच आभा जब बाकायदा निकलती थी, तब बहुत अच्छी लगती थी, आज भी लग रही थी। उसे सुंदरी कहना अनुचित होगा न 'स्वीट, स्वीट वेरी' वा ी बात ही कही जा सकती है—उसमें कुछ ऐसा था जो इस सबसे ऊपर था और जिससे सौंदर्य या मधुरता की अपेक्षा गौरव या गरिमा ही अधिक प्रकट होती थी। इन अवसरों पर उसका बातचीत करने का ढंग तथा अन्य व्यवहार भी बहुत बदल जाता था—जैसे वह अपने प्रभाव का खुद भी अनुभव कर रही हो और उसके नशे में डूबी जा रही हो। इन अवसरों पर पुरुष उसे ज्यादा देर तक देख नहीं पाते थे, स्त्रियाँ ही देखती रह सकती थीं क्योंकि वे उस समय दिल में शायद जलती-भुनती रहती थीं।

छतों से कपड़े में ढके बल्ब मेजों के ऊपर लटक रहे थे और उनकी रोशनी कम, अंधेरा ज्यादावाले वातावरण में एक अजीब सी रहस्यमयता थी। जैसे यह किसी देवी देवता या भगवान का निवास स्थल हो। आभा ने स्विच दबाकर अपनी मेज का बल्ब बुझा दिया और हमारे बीच रही-सही रोशनी भी मिट गई, गहरा अंधेरा छा आया। पूना के पेशवाओंनुमा एक बैरा पास से गुजरा, फिर एक दूसरे ही ढंग का अनोखा सा आदमी आकर आर्डर ले गया।

जरा सा स्थिर होकर आभा बोली—यहाँ की रोशनी और अंधेरे का प्रोपोर्शन आज की जिंदगी की रोशनी और अंधेरे के मानिंद है जैसे यह उसका प्रतीक ही हो।

मैंने कुछ कहा नहीं, यद्यपि उसकी बात मुझे बड़ी सटीक लगी। तभी किसी कोने से एक १५-१६ साल की लड़की चिड़िया की तरह फुदककर और 'भैया' कहकर मेरे गले से लिपट गई।

मैंने उसे पहचाना। यह जया थी जिसे मैं बहुत दिन से जानता था। वह बड़ी स्वीट, समझदार पर देखने में भोली, वैसे दिल की बड़ी अच्छी और सच ही खूब प्यार करने लायक थी। वह अक्सर लेखिका या कलाकार बनने के सपने देखा करती थी। कहती थी, कुछ न कुछ तो बनकर रहूँगी। वैसे न वह लिखती थी और न चित्र बनाती थी। कहती थी, किसी दिन एकदम लिखने लगूंगी, और फिर हँसने लग जाती थी।

'अरे, तू यहाँ कहाँ, पागल'—मैंने उसे प्यार से दबाते हुए कहा।

'अच्छा, तो जैसे आप ही यहाँ आ सकते हैं।'—फिर आँखों को नचाकर धीरे से बोली—'हम कुछ लड़कियाँ सिर्फ कुछ ठंडा पीने यहाँ आयी हैं। कोई मूँछोंवाला साथ में नहीं है।'

मैं हँस दिया। तभी आभा की तरफ देखकर मेरे कान में बोली—'ये वही हैं?'

मैंने जया का हाथ आभा के हाथों में देकर कहा—'यह जया है आभा, मेरी बहुत दुलारी पंजाबी बहिन। आजतक नाम से जानती थीं आज असली जान लो।'

आभा ने जया को अपने पास खींच लिया। दोनों ने एक दूसरे को देखा, मुस्कराईं, पर जैसे कुछ कहने की जरूरत नहीं समझी। फिर आभा ने मुझसे कहा—'तुम्हारी जया सच बड़ी अच्छी है। पता नहीं तुम कहाँ से इतनी अच्छी अच्छी लड़कियाँ पा जाते हो।'

जवाब जया ने दिया—'हाय दीदी, यह बात तो आप पर भी

लागू हुई जा रही है, गोकि जरा दूसरे ढंग से। और दीदी, भैया के साथ आपको देखकर मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। आप बहुत अच्छी हैं, बड़ी शानदार हैं। हैं न?'

लगा, आभा कैसे-शरमाई। मैंने कहा—'जया मेरी बड़ी आंतरिक है। इसीलिए खट से इतनी बड़ी बात कह बैठी। और आंतरिक तो तुम भी हो। तुम दोनों ही अलग-अलग रास्तों से मेरे इतने समीप आई हो। बहिन और प्रिया दोनों को पास पाकर आज लग रहा है कि जिंदगी से और कुछ भी नहीं चाहिए। मालूम है, अपनी बेहद फटेहाली के दिनों में एक दिन मैंने ऐसा ही सपना देखा था।'

इस बात का कोई जवाब नहीं हो सकता था और किसी ने कुछ दिया भी नहीं। कुछ देर सब चुप रहे और बात के अभाव में खाते-पीते ही रहे। फिर जया अपनी सहेलियों में जा मिली।

मैंने कहा—'आभा, इस वक्त मुझमें सद्‌विचारों का जोर हो रहा है। इसलिए कह रहा हूँ कि तुम चाहो तो हम शादी कर लेंगे। सामाजिक दिक्कत तो होगी पर शायद अब इसकी जरूरत भी पड़े। या शायद न भी पड़े। देख-लेना, सोच-समझ लेना। मेरी तरफ़ से रास्ता साफ़ है। और इस खुशी में मैं फिर मेज पर रोशनी किये देता हूँ।'

यह कहकर मैंने बिजली का स्विच आन कर दिया। उसकी हलकी-फुलकी रोशनी हमारे बीच फैल गई। पर देखा यह कि शादी के नाम से आभा के चेहरे पर विषाद घिर आया है। पर उसने कहा कुछ नहीं, सिर्फ यह कि 'चलो, अब चलें।'

कुछ दिन और रहकर मैं चला आया। आभा की चिट्‌ठीयाँ आतीं पर उनमें कोई विशेष उत्साह न होता, जिसकी मैं अपेक्षा करता था। एक दफ़ा उसने लिखा कि नई जिंदगी शुरू करने की इच्छा बुद्धि से तो निकलती है, मन से नहीं निकलती। वहाँ वही पुरानी शिथिलता और अन्धकार छाया हुआ है। यह कोशिश भी नहीं हो पाती कि उसे दूर करने में लगूं। तुम बताओ, मैं क्या करूँ? इस स्थिति से एक नये ही किस्म की पीड़ा होती है।

मैं वर्षानुवर्ष की परिस्थितियों द्वारा उसे दी गई निराशा, कटुता और फलस्वरूप उत्पन्न उदासीनता की गहराइयों को नापता रहा। सोचता रहा कि जितनी ज्यादा से ज्यादा तकलीफ मनुष्य सहन कर सकता है, उससे कहीं ज्यादा तकलीफ़ उसे मिली है जिसने उसके मन में जिंदगी के प्रति बेहद गहरी उदासीनता भर दी है। छोटी-मोटी घटनाओं से यह क्षणिक रूप में भले ही टूट जाय, स्थायी रूप से नहीं टूट पाती। सोचता रहा कि ऐसा क्यों होता है, क्यों मनुष्य इतना ज्यादा, न सहा जाने लायक कष्ट पाता है?

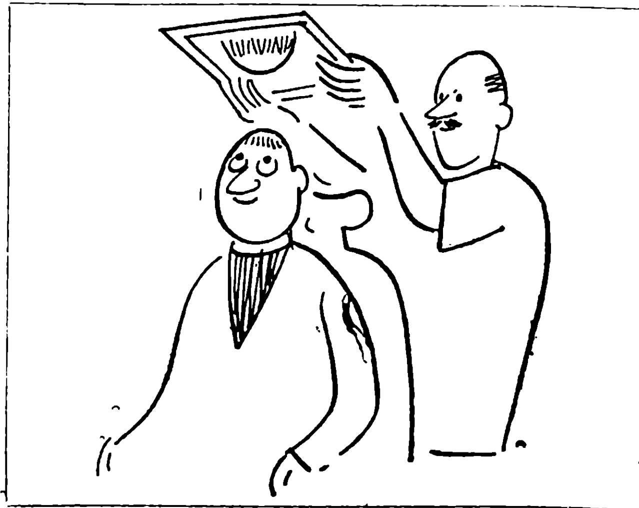
मैं खुद अपनी स्थिति से उसकी तुलना करता रहा। आभा को इतना चाहते हुए भी और उसके लिए कुछ भी कर डालने की तीव्र आकांक्षा रखते हुए भी मैं शादी करने के लिए उत्साहित नहीं महसूस कर पाता। हो जाय, तो मैं हाथ जोड़कर स्वीकार कर लूंगा, न हो, तो दुख नहीं मनाऊंगा। और दोनों ओर से प्रयत्नहीन इस स्थिति में न होना ही तो सहज हो जाता है, तीसरा या चौथा है ही कौन जो प्रयत्न की इस कमी को पूर्ण करे।

फिर दूसरी बार आभा ने यह लिखा कि शादी के बारे में बहुत कुछ सोचती रही हूँ। इस रिचुअल (कर्मकांड) पर आस्था नहीं रही है। इससे अब नफरत तो नहीं होती, पर कर डालने का मन भी नहीं होता। कहीं यह सब व्यर्थ ही लगता है। यह भी लगता है कि इस उम्र पर शादी की रस्में अदा करते शर्म से मर जाऊंगी।

जवाब में मैंने लिखा कि शादी का अर्थ अगर परस्पर का मिलना ही है, गहराई से एक हो जाना है, तो वह तो हो ही गया। अब इसे कौन अन्यथा कर सकता है? तो वह जो सामाजिक आचार मात्र है, उसे बाद देकर भी काम चल सकता है। असल हो जाने पर नकल को छोड़ देने में हानि नहीं है।

इस विषय में अपने कम्प्लेक्स को उघाड़ते हुए आभाने लिखा कि एक समय था, जब मैं भी शादी की कामना करती थी। दूसरों की शादियाँ होते देखती, तो मन जैसे जलने लगता था। पर सिलसिला कोई जमा नहीं। तब यह निश्चय किया कि समाज ने यह चीज़ मुझे नहीं दी है, तो अब मैं खुद होकर ही इसे नहीं लूँगी। पर इस बात को मन में ही दबाये रही, किसीसे कहा नहीं, क्योंकि सोचती थी कि यह तो असमर्थ की वीरता है—ऐसा मौका ही कहाँ आयेगा। फिर जब तुमने, जिसे मैंने जीवन में सबसे ज्यादा चाहा है, खुद मुझे ले लिया और एक दिन यह प्रस्ताव भी कर दिया, उस दिन जैसे मैं बड़ी तुष्ट हो उठी। तुम्हारे प्रति कृतज्ञता ने भी मन को भर-भर दिया। एक बार सोचा कि उस गाँठ को तोड़ ही दूं जो मन में पड़ी है और तुम्हारा कहा मान लूँ। गाँठ ढीली तो हो ही गई थी, टूट भी जाती, और तुम्हारे नीचे हारकर भी रंज न होता, पर फिर यही सोचा कि हटाओ, रहने ही दो। पा तो लिया ही है, अब उसका तमाशा दुनिया को क्या दिखाना।

यह सब पढ़कर मैंने भी कहा, चलो हटाओ, दूसरे सब लोग ही शादियाँ करें, शहनाइयाँ बजवायें, उन्हें वे मुबारक हों, हम बिना उस



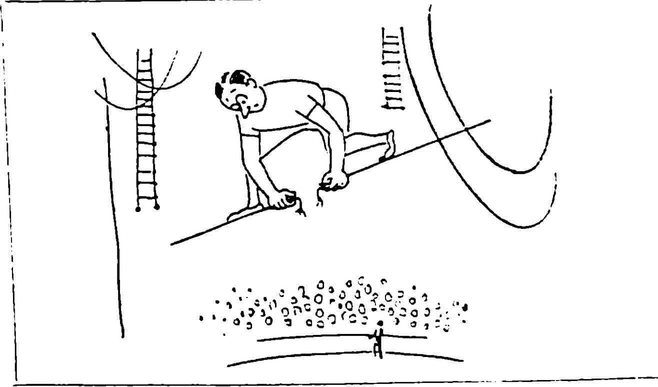
अनुक्रमणिका

सबके ही कृतकृत्य हो लेंगे। ईश्वर (अगर हो, तो) और समाज ने हमें जिंदगी की और भी बहुत सी जरूरी चीजें नहीं दीं, जो दीं वह बेहद कंजूसी से और समय बीत जाने के बहुत बाद दीं, तो यह चीज भी हमें न मिले, न सही। हम उसके बिना ही गुजारा कर लेंगे, करते ही रहे हैं। और जो बात मन से नहीं निकलती, उसे करना ढोंग हो जायगा, बंधन भी हो जायगा।

मैंने समझा कि इससे सब बातें साफ हो गइ, अब कुछ कहने सुनने लायक नहीं रहा, पर आभा ने लिखा—नहीं, एक बात और भी है। वह यह कि माँ बनकर जीवन का सर्जन करने की स्थिति में आकर मुझे यह ख्याल आता है कि अगर जिंदगी यही है जो मुझे और तुम्हें मिली है, तो वह कोई बढ़ाने की वस्तु नहीं है, वह तो एक पाप है, जिसे और नहीं होने देना चाहिए। असल, यह ख्याल तुम्हारा बीज अपने भीतर लेने के बाद ही पैदा हुआ। और एक दफ़ा हुआ तो आग की तरह दिल और दिमाग़ पर छा गया। किसी तरह उससे अपने को मुक्त नहीं कर सकी। तुम्हारे बीज ने जहाँ एक ओर मुझे बड़ी तृप्ति दी, वहाँ मुझे यह भी सोचने को बाध्य किया कि अगर मेरे बच्चे या बच्ची को मेरी जैसी ही जिंदगी मिली, तो? इस सवाल का जवाब मैं नहीं पा सकी। अपनी खुद की जिंदगी में अपने माँ-बाप को न जाने कितनी बार कोस चुकी हूं, मुझे पैदा करने के लिए। अगर मैं पैदा ही न होती, तो यह सफ़रिंग क्यों देखती। कहीं मेरा बच्चा भी किसी दिन किसी कारण से यह न सोचे। असल, तुम मेरी बात को जरूर समझ सकोगे। मैं मानव जीवन को लोभनीय वस्तु नहीं पाती और इसलिए उसकी धारा को बढ़ाना भी नहीं चाहती।

मैंने लिखा कि और देशों में जिंदगी कुछ लोभनीय हो भी, भारत में तो, खैर, वह नहीं ही है। सदियों से ही नहीं रही। भविष्य में भी एक्सप्लोडिंग पॉपुलेशन के नतीजों का भय सवार है। इसलिए मुझे जिंदगी की धारा को फिलहाल कुछ समय के लिए रोक देने में कोई बुराई नजर नहीं आती।

अब फैसला हो गया। आभा ने लिखा—मैं बहुत खुश हूं, या कहूं कि संतुष्ट हूं। तुम्हारे लिए अपनापन भेज रही हूं। अगली छुट्टियों में आना। आगे का प्रोग्राम बनायेंगे, जरा कुछ नये ढंग का। इन्तजार करूंगी। ● ●



अनुक्रमणिका







अतः आज भी
व्यासाचार्य ने यही
प्रश्न गुरु-गंभीर गर्जना
करते हुए किशोर के
समक्ष रखा—



किशोर आसन से,
उठा और उसके सुमधुर
सुधारस-सने संमोहक स्वरों
की स्त्रोतास्विनी में सभी
आप्लावित हो गये—

गोविन्दाचार्य हैं?'

'आचार्यपाद पूजा में बैठे हैं, आइए, आप लोग तब तक यहाँ बैठिए।'

'हमारे पास बेकार बैठने का समय नहीं है। जा, उनसे कह कि वाराणसी से महापंडित व्यासाचार्य के शिष्य आए हुए हैं।'

'थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिए, मैं अभी देख आता हूं।'

'प्रतीक्षा कीजिए'—अजीब मुंह बनाकर उपहास और उलाहने के स्वर में आगन्तुकों ने कहा—'जा, जा' अपने गुरु से कह कि ज्यादा पूजा का ढोंग न रचें, शीघ्र ही यहाँ आ जाये, नहीं तो ठीक नहीं होगा?'

'देखिए, शिष्टता से बात कीजिए।'

'बड़ा आया हमें शिष्टाचार सिखाने वाला, कल का छोकरा और बातें करता बड़े-बूढ़ों की, जल्दी जा, ज्यादा खटर-पटर मत कर।

देखिए, यह आश्रम है, यहाँ ऐसा व्यवहार नहीं चलता।'

'हमें मालूम है कि यह आश्रम है। 'तो फिर ऐसी बहकी-बहकी बेसिर-पैर की बात क्यों कर रहे हैं आप? यही सिखाया जाता है आपकी वाराणसी में?'

'छोटे मुंह बड़ी बात? जानता है तू किनसे बातें कर रहा है?'

'अब, जान गया हूँ-महापंडित व्यासाचार्य के शिष्यों से।'

अपने गुरु से पूछ कि महापंडित व्यासाचार्य कौन हैं, सुनते ही हाथ-पैर फूल जाएंगे तुम्हारे गुरु के।'

'अब, पूछने की आवश्यकता नहीं, अपना मन्तव्य बताइए कि आपने यहाँ तक पधारने का कष्ट कैसे किया?'

'नया-नया आया है क्या?'

'मुझे यहाँ आये लगभग दो वर्ष हो गए हैं।'

'तभी-तभी, हम लोगों को तू नहीं पहचान सकता, हम भी तो पूरे दो वर्ष बाद आए हैं। सारंग कहाँ चला गया है? वह हमें अच्छी तरह पहचानता है।'

'उनकी दीक्षा समाप्त हो गई है वे आजकल उज्जैनी में हैं। आजकल आश्रम में वैसे अवकाश है। सभी देशाटन पर गए हैं, यहाँ केवल आचार्यपाद और दो-चार छात्र हैं।

'आपने अपना मन्तव्य नहीं बतलाया?' कुछ स्मरण करते हुए-'ओह, यह तो मैं भूल ही गया कि आज आचार्यपाद का पूरे दिन मौनव्रत रहेगा और वे दिन भर अपनी समाधि

अनुक्रमणिका

में बैठे रहेंगे, क्षमा कीजिए, मैं आपको पहले ही सूचित न कर सका।

'अबे, हम सब समझते हैं, ये सब बहाने नहीं चलेंगे, गोविन्दाचार्य को हम अच्छी तरह से जानते हैं, काम पूरा नहीं हुआ होगा इसलिए फिर झूठ-मूठ का बहाना बना दिया। दो वर्ष का समय मांगा था, वह उन्हें दिया गया, अब हम एक पल भी नहीं ठहर सकते, समझे?'

'आखिर बात क्या है? आप बतलाइए तो।'

'जैसे मालूम ही न हो, बड़ा आया हमको चराने, यह सब स्वांग कैसे रचा गया है, तुम्हारे गुरु को मालूम था कि आज हम आ रहे हैं, उन्हें पहले ही सूचना दी गई थी और फिर आज ही उनकी अखंड समाधि लग गई है? हम जानते हैं यह सब हमें टालने का षड्यन्त्र है, पर हम टलनेवाले नहीं। पांडुलिपियाँ लेकर ही जाएंगे।'

'कैसी पांडुलिपियां?

'आहा बड़ा भोला बनता है?'

'क्या नाम है तेरा?'

'शंकर'

'तुझे नहीं मालूम, तेरे गुरु आज से सात वर्ष पहले वाराणसी में शास्त्रार्थ में चारों खाने चित्त हो गए। महापंडित व्यासाचार्य ने उन्हें दिन में तारे दिखा दिए थे, समझे। सबके सामने गोविन्दाचार्य ने अपनी हार मानकर यह स्वीकार किया था कि आज से आपका दास हूँ, आपकी आज्ञा सिर-आंखों पर। तब महापंडित व्यासाचार्य ने उन पर दया दिखाते हुए-यह कहा था कि जाओ तुम अपने आश्रम में रह सकते हो पर दस वर्ष के अन्दर वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि की तीन-तीन हस्तलिखित-अपने हाथ से लिखी हुई-पांडुलिपियां सुन्दर अक्षरों तथा शुद्धरूप लिख कर देनी पड़ेंगी। सो, अब तक केवल रामायण की ही तीन प्रतिलिपियां दी हैं। बहाने करते-करते सात वर्ष हो गए हैं। हमारे गुरु की आज्ञा है कि यदि इस समय भी उन्होंने 'ननु-नच' किया तो सीधा पकड़ ले लाओ और तब तीन वर्ष तक अपने पास बिठाकर उनसे पूरा काम लेंगे-समझा।'

'मैं आपके साथ चलने को तैयार हूं, मैं तीन वर्ष के अन्दर ही सब पांडुलिपियां तैयार कर दूंगा, मुझे अपने साथ ले चलिए पर मेरे आचार्यपाद का इस प्रकार अपमान न कीजिए।'

'जा-जा, बड़ा आया पांडुलिपियाँ बनानेवाला, तू तो कल का छोकरा है, तुझसे इतना कठिन कार्य कैसे होगा-अनेक अशुद्धियाँ हो जाएंगी-यह तुझ जैसे अबोध किशोरों का काम नहीं है-ऐसे कार्य के लिए प्रकांड पंडितों की आवश्यकता होती है! तू जल्दी जाकर अपने गुरु की समाधि तोड़, नहीं तो—'

आगन्तुकों ने किशोर को पकड़कर भीतर जाने का प्रयत्न किया। परन्तु किशोर ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर उन्हें रोकने का निष्फल प्रयत्न किया। आगन्तुक किशोर को जोर का धक्का देकर आगे बढ़े। इतने में अन्य तीन-चार छात्र आ गए और कुछ कोलाहल हो गया। आश्रम के शान्त वातावरण में आकस्मिक कोलाहल को सुनकर आचार्य की समाधि टूट गई। उन्होंने आँखें खोलीं तो देखा-कुछ व्यक्ति उसी ओर बढ़ते चले आ रहे हैं।

'गोविन्दाचार्य?'

'गोविन्दाचार्य?'—बोलता क्यों नहीं? क्या पांडुलिपियां तैयार नहीं हैं?

'आप लोग जाएं यहाँ से? ऐसी अपमानजनक बातें मुँह से न निकालिए? मैं आपके गुरु से शास्त्रार्थ करूंगा? मेरी चुनौती है? यदि मैं शास्त्रार्थ में हार गया तो जीवन भर उनका क्रीतदास रहूंगा? जैसा कि आप लोग कहते हैं उन्होंने हमारे पूज्यपाद आचार्य को शास्त्रार्थ में हराया था, अब मैं आप लोगों के गुरु को शास्त्रार्थ की चुनौती देता हूं, जाइए अपने आचार्य से कहिए कि पहले आचार्यपाद गोविन्दाचार्य के छोटे शिष्य को हराइए तब पांडुलिपियों की बात कीजिए।' किशोर ने कांपते हुए कहा—

आचार्य ने अपना मौनव्रत भंग करते हुए गंभीर ओजस्वी स्वर में कहा, 'देखिए आप लोगों के लिए आज मुझे अपना व्रत तोड़ना पड़ा। अभी तीन वर्ष शेष हैं। मैं प्रतिज्ञानुसार तीन वर्ष के अन्दर ही सब पांडुलिपियां दे दूंगा। आप लोगों को ऐसी अभद्रता नहीं दिखानी चाहिए थी। आप लोग पढ़े-लिखे हैं आचार्यवर व्यासाचार्य के प्रिय शिष्य हैं। ऐसा व्यवहार आप जैसे मनीषियों के योग्य नहीं।'

'हमने ऐसा तो कुछ नहीं किया है, हमारे आचार्यपाद का आदेश है, हम उसे पूरा कर रहे हैं। आप अपने प्रणानुसार पांडुलिपियां दे दीजिए फिर झगड़ा किस बात का?'

'आचार्यपाद, आपका आदेश हो तो कुछ कहूं—' किशोर ने बड़े शान्तभाव से कहा—

'कहो-कहो, क्या कहना चाहते हो?'

'आचार्यवर, यदि धृष्टता न समझें तो मुझे शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दीजिए। मैं इनके आचार्य से शास्त्रार्थ करूंगा।'

'शंकर, अभी तुम किशोर हो, महापंडित व्यासाचार्य जानेमाने विद्वान हैं, उत्तर-भारत में उनका दबदबा है। सभी उनका लोहा मानते हैं। दक्षिण-पथ से अभी मेरे सिवाय किसी ने उनसे शास्त्रार्थ नहीं किया। उनका पांडित्य अथाह है, बुद्धि विचक्षण और विलक्षण है! 'कूट' पदों के द्वारा अपना मन्तव्य व्यक्त करते हैं। मैं मात्र उनके एक 'कूट' पद का अर्थ ही न समझ सका था, इसलिए मुझे हार माननी पड़ी। तुम अभी बालक हो...!'

आचार्य के मुंह से अपने गुरु की प्रशंसा सुनकर आगन्तुक कुछ अकड़कर कहने लगे— 'गोविन्दाचार्य, यदि आपके शिष्य को इतना ही अभिमान है तो दीजिए उसे आज्ञा? जीवन-

हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'





भर हमारे आचार्य का दास बना रहेगा, तब अक्ल ठौर-ठिकाने आएगी। अपने को महापंडित समझता है– थोड़ा इसका दर्प चूर तो होने दीजिए–'

'हां, आचार्यपाद, मुझे आशीष दीजिए, मैं एक बार अवश्य इनके आचार्य से शास्त्रार्थ करुंगा।'

आचार्यपाद कुछ क्षण मौन और गुरु-गंभीर से रहे। फिर एकाएक उनके चेहरे पर एक अलौकिक आभा झलकी और उन्होंने किशोर के सिर पर अपना हाथ रखते हुए कहा– 'शिवास्ते पन्थान: सन्तु' 'शंकर, मुझे तुम पर पूरा विश्वास है– साथ में हम सब चलेंगे...'

किशोर ने अपने आचार्य श्री के मुंह से ऐसे मधुर स्वरों को सुना तो वह गद्गद् हो गया, कृतकृत्य हो गया।

और तब किशोर, आश्रम के तीन–चार छात्र तथा आचार्यपाद आगन्तुकों के साथ चल दिए। मार्ग में कई दिन लग गए। आचार्य ने किशोर को अनेक बातें बतलाईं। शास्त्रार्थ के गुर बतलाए और तब एक दिन सब लोग वाराणसी पहुंच गए।

वाराणसी में यह समाचार दावाग्नि की तरह फैल गया कि एक बारह-तेरह वर्ष का किशोर, गोविन्दाचार्य का शिष्य वाराणसी के प्रकाण्ड पंडित व्यासाचार्य से शास्त्रार्थ करने आया है। चारों ओर यह समाचार थोड़े ही दिनों में फैल गया। काशी-नरेश ने जब ऐसी खबर सुनी तो वे मुसकराए, अपने मन में सोचने लगे ज़रूर इसमें कोई चाल है, नहीं तो भला दिग्गज् व्यासाचार्य से कौन शास्त्रार्थ करने का साहस करे और फिर बारह–तेरह वर्ष का बालक।

शास्त्रार्थ का दिन निश्चित हुआ। काशी-नरेश का दरबार अनेक अलंकारों से अलंकृत किया गया। गांव-गांव, नगर-नगर में दुन्दुभि और भेरी के स्वरों के साथ शास्त्रार्थ की घोषणा हुई दूर-दूर से कई प्रतिष्ठित पंडित इसमें सम्मिलित होने के लिए आए। वाराणसी में मानो कुंभ का मेला लगा हो, क्योंकि व्यासाचार्य की प्रतिष्ठा जन-जन के मन पर थी। भला उन्हें कौन हरा सकता है, ऐसे विचार सबके अन्तस् में जमे हुए थे। इसलिए कुछ तमाशा देखने के बहाने, कुछ अद्भुत कौतुहल से, कुछ शास्त्रार्थ का मज़ा लूटने और कुछ प्रगाढ़ पांडित्य में आत्म-विभोर होने के लिए खिन्चे चले आए।

दरबार खचाखच भर गया। कहीं सुई रखने की जगह न थी। सिंहासन के एक ओर व्यासाचार्य महीन बनारसी धोती पर उत्तरीय पहने तिलक लगाए सूर्य की तरह जगमगाते अपार जन-समूह पर कृपा-दृष्टि डाल रहे थे– दूसरी ओर एक किशोर अपनी साधारण वेशभूषा में शान्त, गंभीर बैठा हुआ था। जन-जन की दृष्टि दोनों पर टिकी हुई थी। पुरोहित ने दोनों के कुल-गोत्र का विवरण दिया और काशी-नरेश ने दो पर्चियां बनाईं– एक चार वर्ष के बालक ने उन दो पर्चियों में से एक उठाई—उसके अनुसार पहले महापंडित व्यासाचार्य को प्रश्न पूछना था– शर्तें निश्चित हुईं– यदि पहले ही प्रश्न का उत्तर किशोर ठीक से न दे पाया तो वह तथा उसके साथ आए हुए सभी व्यासाचार्य के आजीवन दास रहेंगे– दूसरा प्रश्न नहीं पूछा जाएगा। यदि दूसरा पक्ष हार गया तो व्यासाचार्य भी शिष्यों के सहित किशोर के आजीवन दास रहेंगे–

Statement about ownership and other particulars about newspaper

DIPAWALI HINDI ANNUAL

(From IV Rule 8)

1.	Place of Publication:	Dalal Art Studio, 40-42 Kennedy Bridge, Bombay-4.
2.	Periodicity:	Annual, published once in a year.
3.	Printer's name: Nationality:	Dinanath Damodar Dalal. Indian.
	Address:	40-42, Kennedy Bridge, Bombay-4.
4.	Publisher's name: Nationality: Address:	As per 3 above.
5.	Editor's name: Nationality: Address:	As per 3 above.
	Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:	Dinanath Damodar Dalal. Address as per 3 above. No partners or shareholders.

I, Dinanath Damodar Dalal, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

D. D. Dalal.

Date: 25th Oct. 1962 — Signature of Publisher.




शर्तें पुरोहित द्वारा पढ़ी गईं– उभय पक्ष की स्वीकृति हुई और मंगलाचरण आरम्भ हुआ। • सभाजन मंत्रमुग्ध हो सुनने लगे। व्यासाचार्य के मुख-मंडल पर विजय की अलौकिक चमक और पांडित्य की अद्भुत दमक प्रतिभासित हो रही थी। वे शास्त्रार्थ-पटु थे। बड़े-बड़े दिग्गजों को बात-की-बात में हरा देते थे। उनका सदा पहला प्रश्न यही होता था कि 'किमस्ति ब्रह्म' अर्थात् ईश्वर क्या है– अत: आज भी उन्होंने यही प्रश्न गुरु–गंभीर गर्जना करते हुए किशोर के समक्ष रखा– 'किमस्ति ब्रह्म ?'

जनता की एकटक दृष्टि किशोर के भोले–भोले चेहरे पर थी। पंडित मन-ही-मन किशोर की नादानी पर हंस रहे थे। व्यासाचार्य के शिष्य चारों और व्यंग-भरी दृष्टि फेंक रहे थे– कि इतने में किशोर आसन से उठा और उसके सुमधुर सुधारस-सने संमोहक स्वरों की स्रोतस्विनी में सभी आप्लावित हो गए– किशोर के स्वर गूंज रहे थे –

'मोमारममादंद्रे ह्यागदलनाभप: ।
एते यत्र न विद्यन्ते स एव परमेश्वर : ॥

व्यासाचार्य ने किशोर से चार–पांच बार दुहराने के लिए कहा, किशोर ने उतनी ही बार दुहराया किन्तु व्यासाचार्य से लेकर सभी आचार्य विस्मित थे। किसी की समझ में कुछ नहीं आया। पहली दो पंक्तियां बिलकुल अस्पष्ट थीं। व्यासाचार्य ने पूरा ज़ोर लगाया किन्तु उनसे कुछ न बना– वे पहले की दो पंक्तियों का अर्थ ही नहीं समझ सके– अन्त में उन्होंने कहा कि किशोर लिख कर दे– किशोर ने झट से लिख कर भी दिया और दस मिनट का समय निश्चित किया गया कि व्यासाचार्य दस मिनट में इसका अर्थ न बता सकें तो उन्हें अपनी हार माननी पड़ेगी।

सभाजनों को जैसे सांप सूंघ गया हो–सब के सब मौन-व्याकुल–दस मिनट हो गए–काशी–नरेश ने कहा समय पूरा हो गया है—

व्यासाचार्य ने बौखलाते हुए कहा कि पहले की दो पंक्तियां बिलकुल निरर्थक हैं यदि किशोर ने इनका अर्थ ठीक-ठीक नहीं बतलाया तो उसे हार माननी पड़ेगी—

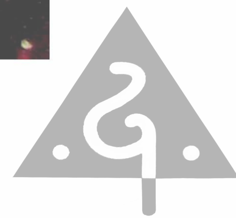
किशोर ने स्वीकृति दी–और झट से
मो मा रा म म मा दं द्रे
ह या ग द ल न भ प:
एते यत्र न विद्यन्ते

स एव परमेश्वर:

अर्थात् मोह, माया, राग, मद, मत्, मान, दंभ, द्वेष जिसमें नहीं हैं–वही तो ईश्वर है–जैसे ही श्लोक की कुंजी खुली कि सब गद्गद हो गए। काशी-नरेश ने उसी समय 'शंकराचार्य' की जय के नारे बुलन्द किए और यह शंकराचार्य की पहली दिग्विजय थी–गोविन्दाचार्य ने शंकर को अपने अंक में लेकर खूब प्यार किया सभी ने अनेक साधुवाद दिए और थोड़े ही दिनों में सारे भारत में शंकराचार्य का नाम फैल गया। केरल के कालपी गांव में एक महीने तक दिवाली मनाई गई और जन-जन के मुंह से 'किमस्ति ब्रह्म' की चर्चा होने लगी— ● ●

अनुक्रमणिका

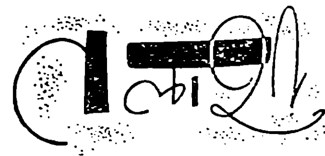




अनुक्रमणिका



जमादार हाथ उठाकर उसको एक तमाचा जड़ देता है। वह जबरदस्त होने से मार खाने की आदत होने पर भी ड्रायव्हर नीचे गिर जाता है ....



काल रात पुलिसोंके गाफिल रहने के कारण सीमा पारकर गई हुई टॅक्सी के लौटने के इन्तजार में जमादार और उसके दो साथी पुलिस चेक नाके पर बैठते हैं। दूर से ही आती हुई टॅक्सी दीखते ही नाके पर का खंबा रास्ते के बीच में गिराकर टॅक्सी को रोकने की तैयारी उन्होंने की है। यकायक टॅक्सी के आने पर अपने रौब में कुछ कमी न हो इसलिए जमादार अपनी उँगलियों को मोम लगाए मूंछें मरोड़ते खड़ा है। खंबे की तरह एक ही जगह पर खड़ा रहने से तंग आकर वह कभी-कभी चहल-कदमी भी शुरू करता है। इस समय वह मुगल बादशाह की कैद में (नाटक में दिखता है वैसा) पड़े हुए संभाजी के समान दिखता है। सुबह से ही यह सब चल रहा है। और अब तो धूप सीधे माथेपर आकर बैठने लगी है। इसलिये उनके कपडे गीले तो बने हुए ही हैं और मूंछ को लगा हुआ मोम पिघल जानेसे मूंछ की ऐंठन भी ढीली होने लगी है।

३४० और ५६८ नम्बरवाले बेचारे दो पुलिस जमादार साब की ड्यूटी में साथ दे रहे हैं। मुर्दे की खोपड़ी जल जाने तक स्मशान में अटके हुए बिरादर के समान उन दोनों की हालत हुई है।

इतने में दूर से फर्लांग दो फर्लांग से इंजिन की खड़-खडाहट कानों पर आती है। और चेक नाके पर एकदम हलचल शुरू होती है। रास्ते के बीच में खंबा ठीक आड़ा कर के ३४० सतर्कता से खड़ा रहता है। और रास्ते के बीच में खंबे की रुकावट के बावजूद भी गाड़ी उसकी परवाह किये बिना आगे बढ़ने के डर से ५६८ जोरों से सीटी बजाते हुए और दूसरे हाथ से लाल झंडा हिलाते खड़ा रहता है।

ब्रेक लगाने की आवाज सुनाई देती है। और धीरे-धीरे टॅक्सी खंबे से टकराकर रुक जाती है। अपने हाथ में स्टिअरींग व्हील न होने पर गाड़ी खंबे को पारकर आगे शायद चली जाय इस डर से ड्रायव्हर बार बार हॅड-ब्रेक खींचता है और बाद में दरवाजा खोल कर बाहर आता है। अपनी पूरी जिंदगी की मजबूरी चेहरे पर लाने को वह भूलता नहीं। बांये हाथ से पतलून के बटन्स लगाते हुए वह जमादार को सलाम करता है।

हाँ, वैसे तो लाचार बनकर उसने अनेक सलाम किये हैं और लिये भी हैं– जमादार को उनकी भला क्या परवाह?

"३४०! बेवकूफ का लैसन्स निकाल लो–" जमादार उंगली से मूंछ को उलटा बना देता है।

लैसन्स बनाने के लिये ड्रायव्हर का हाथ अपनी जेब में जाने के पहिले ही ३४० का हाथ जेब में जाता है, और वह लैसन्स कब्जे में आता है।

"रोड परमीट कहाँ है?" जमादार गाडी के मडगार्ड पर पाँव रखते पूछता है।

जेब में हाथ डालकर पुराने खत-पत्रों को

जयवंत दळवी




जयवंत दळवी :

आपका साहित्यिक-जीवन पत्रकारिता से आरंभ हुआ। आज आप युनायटेड् स्टेटस् इन्फरमेशन सर्विस में बड़े पद पर हैं। आप मराठी-भाषा के माने हुए लेखकों में से एक हैं। आप प्रवास-वर्णन, लघु-कथाएं तथा ललित लेख लिखा करते हैं। आपकी भाषा बड़ी ही चुस्त होती है। आप हास्य-रस-पूर्ण रचनाएं भी लिखा करते हैं।

"मराठी दीपावली" में आपकी रचनाएं प्रकाशित हुआ करती हैं और पाठक बड़े ही प्रभावित हैं। इस वर्ष हम आपकी एक कथा हमारे पाठकों के लिये प्रकाशित कर रहे हैं।

निकालकर ड्रायव्हर ढूँढना शुरू करता है। कुछ समय बिताने का ही इरादा उसका इसमें था। ड्रायव्हर की वह चालाकी वह समझ लेता है और थोड़े समय के लिये मूँछों को मरोड़ते-मरोड़ते खड़ा है। इस प्रकार ड्रायव्हर का समय गँवाना सहन न होकर वह उसे तमाचा इस प्रकार जड़ देता है कि मानों सूखी हुई पेड़ की डाली एकाएक टूटकर नीचे गिर गई हो।

यह आवाज़ सुनते ही गाड़ी में अभी तक बैठे हुए पासिंजरों में हल-चल शुरू हो जाती है। सर्वीस गाड़ी के किराये से भी कम किराये में आराम से सफर करने के सुख-स्वप्न में वे सब डूब रहे थे। अब स्वप्न-भंग होने पर एक के पीछे एक बाहर आते हैं। उनमें एक लगभग तीस की उमर का बड़े लाटसाहब की तरह कपड़ा पहना हुआ व्यक्ति है। अपनी अब तक की ज़िंदगी लंडन शहर के बंकींगहॅम पॅलेस के आस-पास बीत गई है। ऐसा ही कुछ बर्ताव उनके रौब में दीखता है। दूसरा एक अधेड़ उमर का ऐनक पहना हुआ आदमी और उसकी पत्नी दोनों ही बड़ी मुश्किल से कदम नापते-नापते खंबे के पास आते हैं। और एक बूढ़ा किसान लकड़ी के ऊपर बदन का सारा भार डाले चलते-चलते एक पत्थर पर बैठ जाता है। खेत के भीतर ढोरों को न आने देने के लिए बैठे हुए किसान की तरह वह बैठा है।

ऐनकवाले की पत्नी खंबे के ऊपर पाँव रखकर उसे पार करने की कोशिश में है। लेकिन पहनी हुई साड़ी का ज्यादातर भाग तंग होकर ऊपर की ओर होता है। और शरीर के गौर वर्ण पर हरीत वर्ण की नाड़ियाँ स्पष्ट दिखती हैं इसलिये वह वैसी ही खड़ी रहती है और गुस्से में कहती है—

"यह खंबा जरा दूर हटाइये।"

"क्यों?" ५६८ के तेवर बदल जाते हैं।

"नहीं तो हम लोग भीतर भला कैसे आ सकेंगे?"

"भीतर याने और कहाँ जाना चाहते हैं?"

"भीतर याने इधर-इधर..."

"लेकिन तुम लोगों को यहाँ बुलाया किसने है?"

अपनी पत्नी की बेइज्जती हो रही है यह ऐनकवाले ने महसूस किया और वह अपनी आवाज बुलन्द करते पूछने लगता है— "देखिये संभल के बातें कीजिये! किसके साथ आप बातें कर रहे हैं—जानते हैं?"

"किसके साथ?"

"मेरी पत्नी है वह!"

"ओ! यही न! तो फिर तुम चाहे नीचे से आओ या ऊपर से—लेकिन खंबा नहीं उठाया जायगा यहाँ से।"

इन मामूली बातों से जमादार बिगड़ जाता है।

"क्या गोलमाल है? खामोश हो जाओ सब!" जमादार ने जो हुक्म दिया वह अपने वास्ते ही था ऐसा समझकर ऐनकवाला अपनी मुठियां खोलना-बंद करना शुरू करता है

"ए बेवकूफ!"

यह गाली भी अपने को ही होगी ऐसा। समझकर वह और गुस्से में आता है। हाथों को दबाकर रोष जाहिर करना चाहता है। इसी समय में "जी साब" ऐसी खुशामदी आवाज़ में डायव्हर कुछ कहने की कोशिश करता है। यह देखकर ऐनकवाला समाधान की साँस लेता है।

"यह सीमा तोड़कर बाहर जाने का परवाना तुम्हारी गाड़ी को नहीं है।"

जमादार की बात कुछ अजीब सी है-अपनी समझ में आती ही नहीं वैसा ड्रायव्हर अपने चेहरे पर दर्शाता है।

उनका वह वर्ताव देखकर जमादार हाथ उठाकर उसे एक तमाचा जड़ देता है। तमाचा जबरदस्त होने से मार खाने की आदत होने पर भी ड्रायव्हर नीचे गिर जाता है।

"उठो! जल्दी उठो।"

"जी हां साब" कहते-कहते ड्रायव्हर अपने कपड़े साफ करते-करते खड़ा होता है। बचेंगे तो और भी लड़ेंगे यही मानो उसकी शान होती है।

"जाने दो जमादार साब! भूल जाओ अब-कुछ-लेना, देना देखो तो सही—" ड्रायव्हर बातें मिटाना चाहता है।

"क्यों? मुझे रिश्वत देना चाहते हो?" जमादार हवा में ही हाथ घुमाता है। "तुम जानते हो मैं कौन हूं?"

इस समय खंबे के पीछे खड़ा साहब तेज़ी से आगे आता है। "जमादार! यह क्या चल रहा है, बेचारे ड्रायव्हर को मारने का हुक्म किसने दिया तुम्हें?"

"लेकिन तुम कौन हो मुझसे पूछनेवाले?"

"मैं...मैं..." आप खुद कौन हैं यह सवाल साहब के सामने खड़ा हो जाता है, "मैं एक जिम्मेदार नागरिक हूँ इस शहर का!"

"यही हो तो ज़रा जिम्मेदारी से वर्ताव कीजिये!..."

"जिम्मेदारी के बारे में मुझे मत सिखाओ —मैं डी. आयू. जी. का रिश्तेदार हूँ।"

"अरे ५६८! पंचनामा लेना शुरू करो-चलो डायरी निकालो और यह साहब और उसका डी. आय्. जी. का रिश्ता दोनों पंचनामे में दर्ज करो। जो आता है वह यही बताने लगता

अनुक्रमणिका





है। मैं डी. आय्. जी. का सगेवाला हूं—।"

"अरे अरे-ज़रा मेरी बात तो सुनो!" साहब का टेंपर नीचे उतरना शुरू होता है।

"यह सब पंचनामे में कहना—"

"बीच में मुंह डालने को तुम से किसने कहा था?" अभी ड्रायव्हर जमादार की ओर से साहब को डाँटना शुरू करता है। "तुम सब खामोश होकर गाड़ी में बैठ जाओ! उन्होंने मुझे मारा तो तुम्हारे बाप का क्या नुकसान? हम दोनों सब बातों को संभाल सकते हैं।"

"उलटी दुनिया है" साहबजी को एक नया सबक मिलता है।

"एकदम चुप बनकर गाड़ी में बैठ जाओ-नहीं तो यहीं रहना होगा, गाड़ी चलेगी नहीं।" ड्रायव्हर जमादार के नजदीक जाता है।

"खंबे के पीछे होकर खडे रहना।" एक जिम्मेदार नागरिक को एकबारगी चुप करने का आनंद जमादार के चेहरे पर फैल जाता है। और तमाचा न खाने पर भी साहब कड़ुआ चेहरा बनाकर खंबे के पीछे जा कर खड़ा होता है। उसकी यह हालत देखकर ३४० और ५६८ दोनों पुलिस दाँत निकाले हँसने लगते हैं। यह देखकर साहब का गुस्सा और बढ़ जाता है।

"क्या हुआ तुम्हें जो हंसने लगे हो?" रुआँई आवाज में उन्होंने कहा।

"अब और क्या हुआ?" जमादार भौंएं चढाते हैं।

"उन लोगो को हंसने को क्या हुआ?" गुस्सा काबू में न रहने से साहब का शरीर काँपने लगता है।

"ए-तुम लोगों को पंचनामा शुरू करने को कहा था न मैंने?" साहब पंचनामा इस शब्द से घबरांता है यह जमादार को ठीक मालूम हो गया है।

"अच्छा, रहने दो, हंसो-हंसो" साहब किसीसे उनको गुस्सा नहीं यह बताने के लिये पैंतलून की जेब में हाथ डालकर मुंह से सीटी बजाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन गुस्सा होने के कारण सीटी ठीक नहीं बजती।

"यह सब झंझट कब पूरा होगा? कुछ ले लेना बाकी रह गया हो तो वह भी ले लो और हमें छुट्टी दो" उस स्त्री को घर की याद सताने लगती है।

"यह मामला कब खतम होगा? कैसे कहूं! यह सब कानून का मामला है। एक के पीछे एक लग जायगा तो भी साल डेढ़ साल तक सब मामला चलता रहेगा—ए ५६८, ३४०-सब लोगों की गवाही ले लेना"

"चलो! अब पैदल ही जाना ठीक होगा-आधा मील तो बाकी है" ऐनकवाला अपनी पत्नी का हाथ-पकडे कहता है।

"कहाँ जा रहे हो?"

"घर। घर जाने के लिये भी परवाने की जरूरत है?"

"ए ३४०, उनके सामान की तलाशी ले लो—"

"अच्छा बाबा! रहने दो। हम ठहरते हैं—" ऐनकवाला पीछे की तरफ़ आकर खड़ा हो जाता है। जैसे कोई भोजन के लिये ठहराया गया हो। "सामान की तलाशी लेने की जरूरत नहीं।"

"तुम कौन हो कहनेवाले? यह चेक नाका है, यहाँ हमारा काम ही है वह"

"अच्छा बाबा! ले लो तलाशी। हमारे पास तो कुछ है ही नहीं"

"कुछ है या नहीं वह हम देख लेंगे। ३४०, गाड़ी की पूरी तलाशी लो?" जमादार कड़ी आवाज से हुक्म देकर ड्रायव्हर का हाथ पकड़कर खिंचता हुआ कहने लगता है, "चलो, चौकी में चलो! अबसिखाता हूं तुझे? गैर-कानूनी काम करना चाहते हो न-"

जमादार और ड्रायव्हर चौकी में जाते हैं। उसके बाद जितों के उपर हमला करनेवाले सैनिकों की तरह ५६८ और ३४० धूम मचाना शुरू करते हैं। हर एक पासिंजरका गाड़ी में रक्खा हुआ सामान मुर्दे की तरह खींच कर बाहर निकालते हैं। हमला साहब के होलडॉल पर होता है। होलडॉल जमीन पर घसीटते देखकर साहब का दिल धधकता हो जाता है।

"अरे, अरे, देखो-देखो ज़रा ऊपर उठा कर लेना!"

"हम क्या कुली हैं?"

"होलडॉल टूट जायगा तो जिम्मेदार कौन?"

"ऐसा हो-तो तुम ही उठाओ न ज़रा"

साहब हार खाकर चुप हो जाता है। ५६८ होलडॉल खोलकर धोबी की तरह उनमें से कपड़े निकालकर झटकने लगता है और पतलून की जेब से चार डिब्बियां नीचे गिर जाती हैं। दूसरा कुछ देखने के पहिले ही साहब उस पर टूट पड़ते हैं और डिब्बियां अपने कब्जे में कर लेते हैं।

"वे डिब्बियाँ मुझे दीजिये!" ५६८ के मन में शक होता है।

"लेकिन वे तो हमारी खानगी बातें हैं—

गीत

चन्द्रकांत सोनवलकर

अँधेरी रात सा लंबा तुम्हारा यह विरह
उषा सा मुख तुम्हारा कब दिखेगा कौन जाने ?

बरसती साँझ सी छाई हुई गहरी उदासी
प्रतीक्षा कर रही हो जैसे कोई नदी प्यासी
भटकता ढूंढ़ता फिरता तुम्हें हूं राम सा
तपस्या कर रहा हूं बना हूँ वन का वासी
मिले दशमुख उसे दूं दंड करता मैं प्रतीक्षा
आयोध्या-तट हमारा कब दिखेगा कौन जाने ?

कदंब फूले वही जमुना राधा न आई
बजी बंसी, रची रासें राधा न आई
हुई क्या आज अनहोनी वही जाने
अभीतक आजतक ऐसी बाधा न आई
चलूँ जाऊँ बसूं मथुरा नगरी में
कि वृंदातट रचेगा रास कब ये कौन जाने ?

न जाने कौन सा दर्पण तुम्हें प्यारा लगे
न जाने कौन सा कंगन तुम्हें प्यारा लगे
तोड़े आज मैंने इसीसे बंधन सभी वे
न जाने कौन सा बंधन तुम्हें प्यारा लगे
उठा तूफान फ़िर से युगों से जो जो शान्त था
कि छूटा तट हमारा कब मिलेगा कौन जाने।

"तलाशी में खानेकी वालें कैसे ?"

"लेकिन—"

"वक़्त बेकार मत गंवाओ—हाओ—दे दो डिब्बियाँ इधर !"

पासिंजर की तरफ पीठ करके साहब चुपचाप डिब्बियाँ ५६८ के हाथों में देता है।

"क्या है इन डिब्बों में ?"

"शू ! शू ! जरा आहिस्ते—"

"अरे खोल के देखो-शराब-होगी—" ३४० की गरदन मुरगे की तरह टेढ़ी हो जाती है।

"इतनी छोटी डिब्बी में शराब कैसी होगी ?"

"अन्दर क्या है वह खोलकर ही देखता हूँ।"

"ठहरो-ठहरो-मत खोलो।"

"तो सच बोलो, डिब्बीमें क्या है ?"

"सच कहता हूँ।—" साहब इधर-उधर देखकर कानाफूसी करता है।

"कंट्रोल की डिब्बियाँ हैं वे।"

"कंट्रोल की डिब्बियाँ ?" ५६८ को वह बात अजीब सी लगती है—

"धीरे-धीरे-" साहब अपनी इज्जत बचाना चाहता है।

"कंट्रोल की डिब्बियाँ ?—आज तक डब्बे का कंट्रोल सुनता था"—३४० भी अचंभे में पड़ जाता है।

"कंट्रोल की डिब्बियाँ ! जरूर यहां कुछ गड़बड़ मालूम होती है।"

"अरे बाबा ! गड़बड़ मिटाने के लिये ही ये डिब्बियाँ हैं।" साहब की आवाज और नरम पड़ जाती है।

"तुम चाहते हो तो उनमें से दो रखलो—लेकिन बोलना नहीं किसी से—"

"ये लेकर हम क्या करेंगे ?"

"पंचनामा कर लेना ?"

"नहीं-नहीं-आप चाहते हों तो मैं फेंक देता हूँ वह-लेकीन पंचनामे में उनको मत लेना"

"फेंक देने से आप छुटकारा नहीं पाओगे पंचनामें में वह तुम्हारे नाम पर ही जमा हो जायगी।"

"जाने दो साब" साहब खुशामद करते हुए जेब से अठन्नी निकालते हैं।

"अठन्नी ?" ५६८ को वह अपनी बेईज्जती मालूम होती है।

"साहब पांच रुपये निकालो—ए ५६८ मिटा दो सब मामला-और तकलीफ क्यों लेते हो ?"

भेलवाले को गंडेरीवाला गवाह। ३४० समझौते की बातें शुरू करता है।

"पांच रुपये ? अरे पांच रुपयोंमें तीन डिब्बियाँ मिलती हैं।" साहब हिसाब करना शुरू करता है।

अनुक्रमणिका

"इतना सस्ता है तो रहने दो पंचनामे के लिये—"

साहब हताश होकर पाँच रुपयों की नोट पुलिस के सामने फेंक देता है और होलडॉल बाँधने लगता है।

दूसरी बॅग हाथ में लेने से ऐनकवाला खंबे के ऊपर से कूदी मारकर आगे आता है।

"कुछ नहीं है-कुछ नहीं है इसमें-खोलने की तकलीफ किसलिये कर रहे हैं?—वह बॅग एक बार खोल दिया तो फिर बंद नहीं होता—"

"ऐसा है तो अभी बंद कैसे हुआ?" ५६० सवाल पूछकर बॅग खोल देता है। बॅग से कपड़ा लिपटी हुई एक बोतल बाहर निकालता है। ब्रँडी की बोतल है यह समझने में दोनों पुलिसों को देर नहीं लगती।

"क्या है इस बोतल में?"

"पानी है—पानी..."

"सिर्फ पानी?"

"हाँ सिर्फ पानी ही...दूसरा क्या होगा?"

"लेकिन सिर्फ पानी का रंग तो बहुत अच्छा लगता है।" बातें बनाना भी अच्छी तरह न आने के कारण बेचारा ऐनकवाला चुप हो जाता है।

"पीकर देखो पानी है या नहीं?" ३४० भला उपाय सुझाता है।

"सच कहता हूँ पानी ही है वह" ऐनक-वाला नाचने लगता है।

५६८ चालाक आदमी है। बोतल खोलकर घूँट-घूँट पीना शुरू करता है। बोतल का पानी धीरे-धीरे कम होने लगता है। बोतल धीरे धीरे खाली होते देखकर ऐनकवाला बुध्दू की तरह "पानी-पानी" करके नाचने लगता है।

"सच पानी ही है?" ५६८ अपने होंट पोंछते कहता है।

"देखूँ-देखूँ!" ३४० उनके हाथ-से बोतल लेकर अपने मुँहको लगाता है और पूरी खाली कर देता है। और फिर "सच पानी ही था–" ऐसा कहकर हँसने लगता है।

ऐनकवाले की आंखें गुस्से से लाल हो जाती हैं।

"अच्छी ब्रँडी पीकर भी पानी कहता है?"

"ब्रँडी?"

"पंचनामा कर लूं?"

"नहीं-नहीं-पानी ही था..." ऐनकवाले का गुस्सा कम होने लगता है।

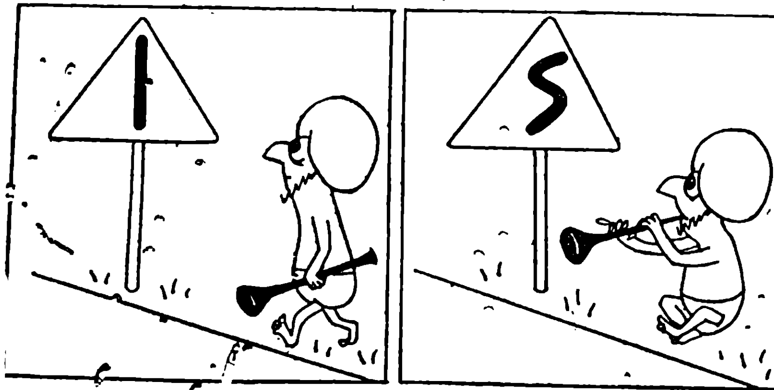
"मैं भी वही कह रहा था...पानी ही था लेकिन अच्छा पानी था"

"पैंसठ रुपयों की ब्रँडी पीकर अच्छा पानी कहता है, शरम नहीं आती" अपनी पत्नी को समझाते-समझाते ऐनकवाला बिगड़ता हुआ मामला सँभाल लेने का प्रयत्न करता है—" चुप-चुप-पानी ही था न—"

"पैंसठ रुपये भी पानी में गये और—" पत्नी के दिल में आग जलने लगी है।

"पैंसठ रुपयों का पानी—?"

"नहीं–नहीं मुफ्त का ही पानी..." ऐनकवाला बोतल की आशा से हाथ धो बैठता है।



यहाँ उनकी पत्नी उनको डाँटने लगी है– "तुमने ही बोतल अच्छी तरह छिपाई नहीं इस-लिए उन लोगों को पीने को मिला—" बेचारा ऐनकवाला पत्नी का डाँटना मजबूरी से सहन करते-करते बॅग बंद करता है।

पत्नी को ३४० घूर के देखता है।

"क्या देखते हो?"

"वह औरत सचमुच गर्भवती है या कुछ दिखावा है?"

"दिखावा क्यों भला!" ऐनकवाला क्रोधित होता है।

"लेकिन उसकी तलाशी लेना मुश्किल है– आज लेडी पुलिस हाजिर नहीं—"

"नहीं तो ट्यूब लिपटा दी होगी पेट से–?"

"ट्यूब! ऐनकवाला क्रोध को सँभालने के लिये नाक से ऐनक निकालकर पोंछना शुरू करता है–इतने में पति को डाँटती हुई वह औरत खाली बोतल उठाकर थैली में रखने को भूलती नहीं।

अब वहाँ दोनों पुलिस की मेहरबानी पत्थर पर बैठे बूढ़े किसान पर होती है।

"क्यों चाचाजी! तुम्हारा थैला तो दिखाना!—"

"कुछ नहीं है बाबा मेरे पास! मैं गरीब किसान मेरे पास क्या होगा दूसरा— मैं चल रहा हूँ डाक्टर के पास—"

"कुछ भी हो—थैला इधर लाओ जरा-हम देखेंगे"

थैला लेने के पहले उनमें से एक बड़ी बोतल नीचे गिर जाती है। ३४० बोतल उठा कर मुंह को लगाता है।

"छी छी छी—"

"क्या हुआ रे?" ५६८ पूछता है।

"छी छी—बिल्कुल नमकीन सा—"

"नमकीन?—ऐसा कैसा हुआ? डाक्टर साब तो कहता था शक्कर है—तो अभी नमकीन कैसा हुआ?" बूढ़ा किसान अचंभे से कहने लगता है।

"हरामज़ादे, पहले क्यों नहीं बोले?" ३४० के चेहरे पर अनेक भाव एकसाथ दिखने लगते हैं!

"मुझे भला क्या मालूम कि तुम जो कुछ मिले वह मुंह में डाल लेते हो?"

३४० किसान को मारने को जाता है—४६८ उसको रोकता है।

"ज़रा सँभल के भाई। डायबीटीस का पेशंट है वह बूढ़ा—एक तमाचे में खतम हो जायगा तो?"

इस समय जमादार और डायव्हर चौकी से बाहर आते हैं। दोनों में समझौता हो गया है। जमादार और दो पुलिस मिलकर हर एक को समान हिस्सा मिलने के लिये पंद्रह रुपयों पर समझौता हो गया है।

लेकिन ड्रायव्हर बड़ा चालाक आदमी है।

वह गाड़ी के पास ही सब पासिंजरों की एक छोटी सी मिटींग ले लेता है।

"अब गाडी शुरू करो—इतनी देर तो हो ही गई है—" साहब कहते हैं।

"यह क्या मेरी ससुराल है? – फिर भी गाड़ी शुरू करना मुश्किल है—" ड्रायव्हर चेहरे पर गंभीरता लाते हुए कह देता है।

"इसका मतलब?" ऐनकवाला अपनी ऐनक नाक पर बिठाते हुए पूछता है।

"जमादार बीस रुपया माँग रहा है। आप हर एक पांच-पांच निकालें तो—"

"हर एक पाँच-पाँच?" ऐनकवाले की नाक पर बिठाई ऐनक नीचे उतरने लगती है— "याने हम दोनों के दस! पहिले तो पैंसठ रुपयों की बोतल खोनी पड़ी और—"

"तुम ही पूरी कर दो जमादार की माँग!" साहब डायव्हर को उपाय बताता है।

"मुझे क्या जरूरत पड़ी है।—हम लोगोंने ऐसे पंचनामे कितने देखे हैं आज तक–तुम लोग ही अब अपना रास्ता निकालो–नहीं तो पंच-नामे के लिये शुरुआत होगी और पूरी रात यहीं निकालनी होगी—" ड्रायव्हर अपने पहने हुये कोट की दोनों जेबों के अस्तर बाहर निकालता है और जोर-जोर से झटकने लगता है।

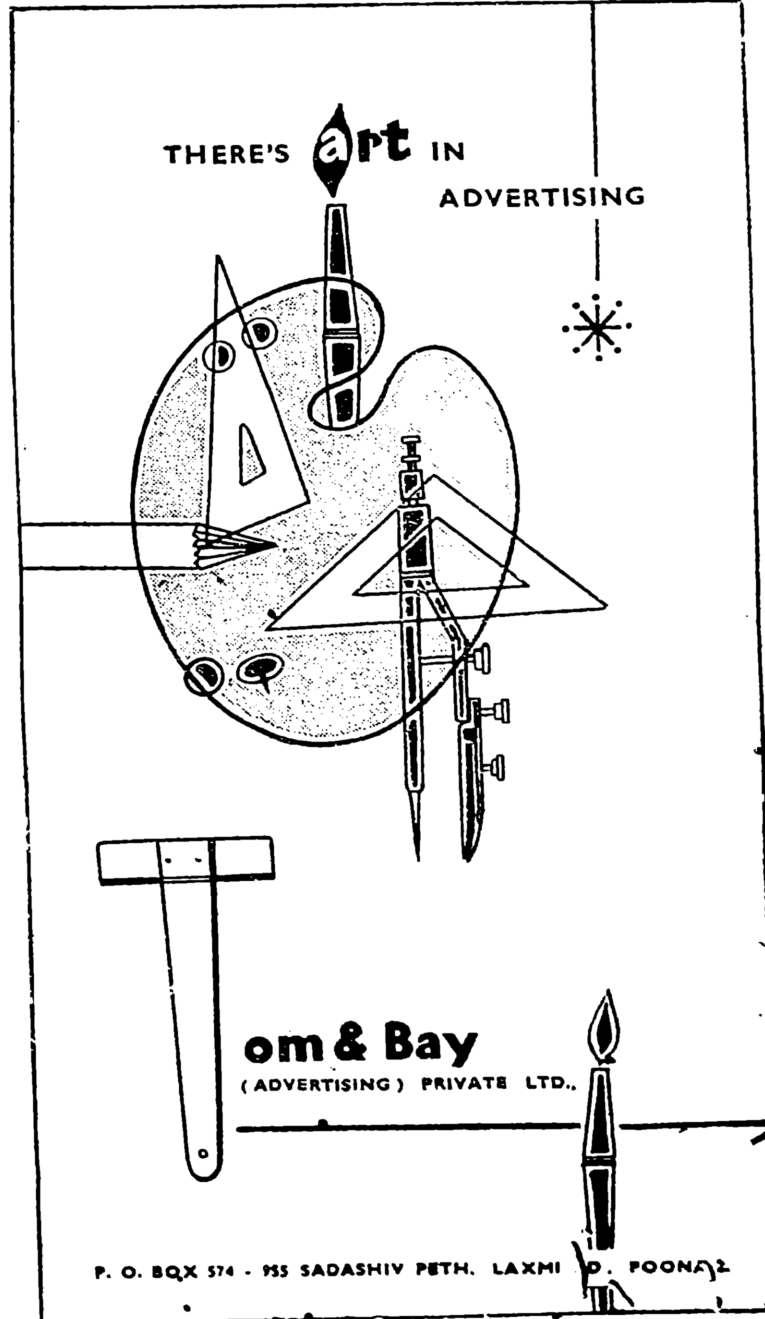
अन्त में ड्रायव्हर को गालियाँ देते देते बीस रुपयोंका जमादार-फंड इकट्ठा हो जाता है। और पासिंजर गनीमतकी साँस लिये गाडी में बैठ जाते हैं।

ड्रायव्हर चौकी में जाता है। और जमादार के हाथ में पंद्रह रुपये रख कर बाकी पाँच रुपये अपनी जेब में रखता है।

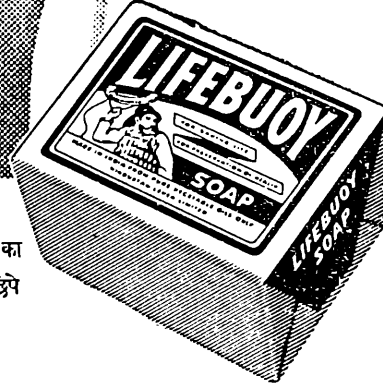
खंबा उठाते-उठाते दोनों पुलिस दबी हुई आवाज में डायव्हर से पूछते हैं—"कितना लिया?"

"तीस ही रुपया दिया है—तुम दस ले लो—" कहते कहते ड्रायव्हर गाड़ी शुरू करता है। और पंद्रह रुपयों की मूल रकम पर तीस रुपयों के लिये होनेवाला झगड़ा मन में ही उसका विचार करते ऍक्सीलेटर ज़ोरोंसे दबाता है। ● ●

रूपा.: मधुकर अमृते







ताज़गी का तराना ! लाइफ़बॉय से नहाइये, आपके तनमन में ताज़गी का तराना गूंज उठेगा ! और मज़ा यह है कि नहाते समय, लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है और आप को एड़ी से चोटी तक तरोताज़ा कर देता है ! जी हाँ, लाइफ़बॉय से आप का सारा परिवार तंदुरुस्त रहेगा !

लाइफ़बॉय है जहाँ, तंदुरुस्ती है वहाँ !

L. 73-X52 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन





दो हाथ और फरिश्ता

उन दो हाथों की मौत थी जो घड़ियों और मोटरों की मरम्मत कर लेते थे। जिन हाथों की कारीगरी से लोहा, लकड़ी और टूटी-फूटी चीज़ें नई शक्लों में ढल जाती थीं......



'स्टैंडर्ड स्टील फैक्टरी' की इस सबसे बड़ी और सबसे लम्बी, लेकिन अन्त में फेल हो गई हड़ताल में अन्य कई साथियों के साथ रतनसिंह भी ज़ख्मी हुआ है और उसकी दाईं बांह दो स्थानों से टूट गई है। फैक्टरी के फाटक के सामने वह रोज़ दूसरे साथियों के साथ जमकर बैठता था ताकि नये भर्ती किये गये मज़दूरों को अन्दर आने से रोका जा सके। और आखिर जब किसी तरह भी फैक्टरी का मालिक उन्हें वहां से न हटा सका तो फिर पुलिस आई और लाठी चार्ज हुआ और उस लाठी चार्ज में पुलिस की कुछ लाठियां गुस्से से भरे मज़दूरों के हाथों में चली गईं। और फिर दोनों ओर से लाठियां चलीं और अन्त में जब गोली चलाई गई तो—रतनसिंह अन्य ज़ख्मी साथियों के साथ अपनी टूटी हुई बांह सम्भाले गिरा पड़ा था।

यह रतनसिंह पिछले बारह वर्षों से 'स्टैंडर्ड स्टील फैक्टरी' में ट्रक का ड्राईवर था।

लेकिन पता नहीं क्यों, दोनों हाथों से स्टेयरिंग को पकड़े, '४४ माडल के फोर्ड ट्रक को चला रहा रतनसिंह मुझे कभी ड्राईवर नहीं लगा था। यद्यपि पिछले बारह वर्षों से वह इस ट्रक की ड्राईवरी करता आ रहा था और उसके बारे में यह भी मशहूर था कि अढ़ाई-अढ़ाई सौ मन बोझ लादे जाने पर भी ट्रक कभी उसके हाथों में डगमगाया नहीं था। स्टेयरिंग को पकड़े उसके हाथ ट्रक को ऊंचे नीचे और पथरीले रास्तों पर भी ऐसे ले जाता जैसे वह पानी में बह रहा हो। चलते हुये ट्रक में उसके साथ बैठा व्यक्ति ट्रक की उस साफ़ रवानी में ऐसे प्रतीत करता, जैसे किसी नई कार में बैठा जा रहा हो।

और आज रतनसिंह के उन दो हाथों की मौत हो गई है जो ट्रक चलाते थे।

यह उन हाथों की दूसरी मौत है।

मैं रतनसिंह को तब से जानता हूं जब से हमने होश सम्भाला और गांव की गलियों में दौड़ना शुरू किया। वह मेरी उम्र का था। चौथी तक हम एक साथ पढ़े। तब वह बहुत छोटा-सा था और पढ़ने में सबसे

सुखबीर





होशियार। उसने कभी मास्टर गुलाम हैदर की मार नहीं खाई थी— मास्टर गुलाम हैदर, जो अपनी मार के लिये मशहूर था और खास-खास मौकों पर लड़कों को अपने काले रंग के डंडे से मारा करता था और कहा करता था कि यह मार तो घी की नलियों के समान है। सर्दियों के दिनों में सुबह जब लड़के एक घुटने के बल बैठे गुच्छम–गुच्छा बने सलेटों पर सवाल कर रहे होते तो मास्टर गुलाम हैदर हाथ में शीशम की ताज़ी छड़ी पकड़े विद्यार्थियों की पंक्तियों में घूम रहा होता और हर विद्यार्थी की पीठ पर एक-एक छड़ी जमाता हुआ कहता— गर्म हो जाओ लड़को, गर्मःहो जाओ...। और गुच्छम-गुच्छा बने लड़के एक-बारगी सीधे होकर बैठ जाते। लेकिन यह छड़ी सबसे आगे बैठे रतनसिंह की पीठ पर आकर रुक जाती। वह कभी उसकी पीठ पर नहीं पड़ी थी।

जब अभी वह तीसरी कक्षा में था तो उस जैसी जिल्दें और कोई नहीं बांध सकता था। लड़के उससे दोस्ती गांठकर उससे अपनी पुस्तकों की जिल्दें बनवाते। उन दिनों वह इतनी सुन्दर कलमें घड़ लेता था कि परीक्षा के दिनों में स्कूल के सभी विद्यार्थी उससे कलमें बनवाते। चौथी में वह प्रान्त भर में प्रथम रहा और उसे छात्रवृत्ति मिली। लेकिन आठवीं के बाद वह आगे न पढ़ सका। हाई स्कूल गांव से आठ कोस की दूरी पर था और छात्रवृत्ति के आठ रुपयों से वहां की शिक्षा और साइकल का खर्च कहीं अधिक था। और उसका पिता अकेला था और अब अकेला ही सारी गृहस्थी का बोझ नहीं उठा सकता था। एक बेटा, बेटियां, मर चुकी पत्नी का गम और गिरवी पड़ी अढ़ाई बीघा जमीन— इन सबने उसके जीवन को जैसे किसी पहाड़ के नीचे दबाया हुआ था और उसकी कमर झुक गई थी और उसे ज़रूरत थी कि उसका जवान हो रहा बेटा अब उसका हाथ बँटाये।

पिछले वर्षों में मैं जब रतनसिंह को ४४ माडल के फोर्ड ट्रक का स्टेयरिंग पकड़े देखता था तो मुझे रह रह कर बचपन की वह एक घटना याद आती थी जब हमारे गांव के चौधरी के लड़के का विवाह था और बरात बैलगाड़ियों में जाने की बजाय मोटरों में जानी थी। दो बसें हमारे गांव में आईं। हम सभी छोटे-छोटे लड़के वहां जमा हो गये, उनके इर्द-गिर्द घूमते रहे और उन्हें हैरान बने देखते रहे। इससे पहले हमने कभी बसों को इतनी निकटता से नहीं देखा था। शायद रतनसिंह को सबसे ज्यादा हैरानी थी और सबसे ज्यादा खुशी और सबसे ज्यादा चाव कि वह उनमें बैठेगा। लेकिन हममें से कोई भी उनमें न बैठ सका। बसों के ड्राईवर हमें वहां से दूर दूर हटाते रहे और हम तरसते रहे कि काश एक बार खड़ी हुई बसों में ही हमें बैठ लेने दिया जाये। फिर जब बरात चली तो हम बसों के पीछे दौड़े और दौड़ते गये और तब तक न रुके जब तक कि उनकी उड़ती हुई धूल ने उन्हें हमारी आंखों से ओझल न कर दिया। उस दिन रतनसिंह घर जाकर बहुत रोया था और जब मां के बार-बार चुप कराने पर भी चुप नहीं हुआ था तो उसके पिता ने, शायद अपनी लाचारी पर खीझकर, उसे बहुत मारा था।

परन्तु पिछले वर्षों से रतनसिंह के हाथ में फोर्ड ट्रक का स्टेयरिंग था और पिछले बारह वर्षों से वह इस स्टेयरिंग के सामने बैठा 'स्टैंडर्ड स्टील फैक्टरी' में पक्की नौकरी पर लगा हुआ था, जहां अब उसकी तनख्वाह बढ़ते-बढ़ते एक सौ साठ रुपये तक पहुंच गई थी और उसका प्रावीडेंड फंड कटता था और साल में एक बोनस मिलता था और साल के बाद एक महीने की तनख्वाह समेत छुट्टी मिलती थी।

पर पता नहीं क्यों मुझे वह उस फोर्ड ट्रक के स्टेयरिंग पर बैठा कभी ड्राईवर नहीं लगा था।

यद्यपि गांव के और साथी, जो बम्बई में अलग कामों पर लगे हुये थे, उसके इस जीवन से ईर्ष्या करते थे कि वह कितना सौभाग्यशाली है कि पिछले बारह वर्षों से पक्की नौकरी पर लगा हुआ है और चाहे बरसात हो, चाहे तूफ़ान, ट्रक चाहे दस-दस दिन गैरेज़ में खड़ा रहे, उसे हर महीने तनख्वाह की बंधी हुई रकम मिल जाती है। और शायद इसीलिये कभी-कभी उनके दिलों में उसके प्रति ईर्ष्या की चिन्गारी चमक उठती थी और जब वे आपस में बैठे होते तो उसका ज़िक छिड़ जाता और कई बार उनकी बातें और मज़ाक उसके हक में न जाते। वैसे रतनसिंह गांव के इन साथियों में और उस बस्ती में रहनेवाले और परिवारों में बहुत हर-मन प्यारा था। वह पिछले दस ग्यारह वर्षों से हर किसी के काम आता रहा था। बस्ती में किसी घर में बत्ती का फ्यूज़ उड़ जाता, वह ठीक कर देता। किसी की घड़ी में छोटा-मोटा नुक्स पड़ जाता, वह मरम्मत के लिये उसके पास आ जाता। किसी को कोई अर्ज़ी करनी होती, वह अर्ज़ी के छपे हुये फार्म की खाना पूर्ति कर देता। किसीको फर्श पर प्लास्टर करने के लिये सिमेंट की ज़रूरत पड़ती, रतनसिंह कन्ट्रोल होने के बावजूद कहीं से सिमेंट का प्रबन्ध कर देता। किसी को डाक्टर इंजेक्शन बताता, मरीज दवाई खरीद कर रतनसिंह के घर आ जाता और इंजेक्शन लगवा लेता और इस तरह डाक्टर से इंजेक्शन लगवाने के पैसे बच जाते। कोई चीज़ जो किसी को कहीं से न मिलती और वह ढूंढ़कर हार जाता था, रतनसिंह वह चीज़ पैदा कर देता। गाड़ी के समय के लिये किसी को टाईम-टेबल देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी, सभी खास-खास गाड़ियों के समय रतनसिंह को ज़बानी याद थे। बम्बई के किसी भाग में आपको जाना हो, वह बता सकता था कि किस रूट की बस वहां जायेगी। कोई बाज़ार, कोई खास जगह, कोई बड़ा दफ्तर उससे भूला हुआ नहीं था। बस एक बार वह कहीं से गुज़र जाता, एक बार किसी चीज़ को वह देख लेता, वह उसके दिमाग पर अंकित हो जाती थी। बस्तीवालों को पता था कि कभी कोई मुश्किल आ जाये, जब तक रतनसिंह वहां था, वह मुश्किल से दूर हो जायेगी।

परन्तु इस सर्वप्रियता के बावजूद ईर्ष्या की एक चिन्गारी जो उसके विरुद्ध गांव के साथियों के दिलों में चमकती रहती थी, वह कभी नहीं बुझी थी। यह ईर्ष्या उसकी पक्की नौकरी के अलावा शायद इसलिये भी थी कि जब कभी कुछ व्यक्ति बैठे बातें कर रहे होते तो उनमें बैठा रतनसिंह अपनी बातों द्वारा सब पर छा जाता। तब ऐसे लगता जैसे उसकी आवाज़ में सभी आवाज़ें दब गई हों और फिर, कुछ देरके बाद

सिर्फ संकट के समय ही
खतरे की जंजीर खींचिए।



डिब्बे में चढ़ने के पहले
यात्रियों को उतर जाने दीजिये।



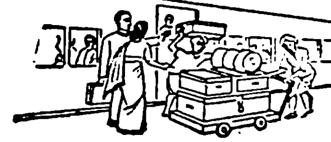
रेलगाड़ी में भिखमंगों और
फेरीवालों को उत्साहित न कीजिए।



सिर्फ थूकदान में ही थूकिये।

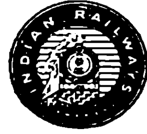


अपने भारी सामानों को
ब्रेक-वान में बुक कराइए।



दीपावली की शुभ-कामनाएं

आगामी वर्ष के लिए आपके सुख और समृद्धि की हम कामना
करते हैं। जब कभी भी आप यात्रा करें,
तो कृपया ऊपर लिखी करने योग्य और
न करने योग्य कुछ बातों की ओर ध्यान दें।
इनसे आपकी यात्रा अधिक सुखद बनेगी और
आप तथा आपके सहयात्री अधिक आराम अनुभव करेंगे।



मध्य और पश्चिम रेलें

अनुक्रमणिका





सभी देखते कि केवल वही अकेला बोल रहा है। वह हर विषय पर बातें कर सकता था और अगर किसी विषय पर वह पूरी तरह बात न भी कर सकता तो बातों-बातों में वह उस बात को अपने किसी विषय पर ले आता और फिर लगातार बोलना शुरू करता और सब पर छा जाता। कभी कोई बात करता कि अमुक होटल में मांस की प्लेट बहुत स्वादिष्ट मिलती है तो रतनसिंह बम्बई के भिन्न-भिन्न इलाकों के भिन्न-भिन्न होटलों का ज़िक्र करता कि किस होटल में किस किस्म का मांस अच्छा मिलता है और फिर वह मुर्गा, बकरा, सूअर, हिरन, खरगोश, बटेर, तीतर, मुर्गाबी आदि भिन्न-भिन्न जानवरों के मांस के स्वाद और गुणों के बारे में बताता और बातों-बातों में सुननेवालों को पता ही न लगता कि कब मांस की किस्मों से हटकर उसने पॉल्टरी-फार्म के बारे में बोलना शुरू कर दिया है कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार की देसी और अंग्रेज़ी मुर्गियां पालकर एक पैमाने पर पॉल्टरी-फार्म खोला जा सकता है और उसमें साल का इतना खर्च और इतना लाभ हो सकता है...। कभी बात शराब के बारे में होती तो यद्यपि उसे कभी किसीने शराब पीते नहीं देखा था, वह शराब की 'खादब्रांड' से लेकर उस शराब तक का ज़िक्र कर जाता जो जहांगीर नूरजहां के हाथों से पिया करता था। और फिर वह उन अलग-अलग किस्मों की शराबों के स्वादों और नशों के बारे में बताता कि किस शराब का नशा किस तरह शुरू होता है, किस तरह चढ़ता है, किस किस्म की हिलोर देता है और अन्त में किस तरह उतरता है। और फिर वह शराब से हटकर अफीम, चरस, भांग, पोस्त आदि के नशों के बारे में बताता और सुननेवालों में से जिस किसी को जिस नशे का थोड़ा बहुत अनुभव होता, वह उसकी बातों की पुष्टि किये बिना न रहता।

इसी प्रकार इन दिनों जब मैं गांव गया तो लोगों से पता लगा कि पिछले वर्ष जब वह गांव आया था तो उन्हें खेतीबाड़ी के नये तरीकों के बारे में बता रहा था कि किस प्रकार नई और अच्छी नसल की फसलें पैदा की जा सकती हैं, किस प्रकार रूसी तरीकों से अनाज की उपज बढ़ाई जा सकती है और धरती में साल की दो फसलों की बजाय चार-चार, छः-छः फसलें पैदा की जा सकती हैं। और उसने उन्हें दूसरे देशों में खेतीबाड़ी के तरीकों के बारे में समझाते हुये बताया था कि कैसे आज वहां के लोग बेर जैसे मोटे दानोंवाली फसल पैदा कर रहे हैं और वहां गेहूं के पौधे इतने ऊंचे होते हैं कि हमारे यहां के बाजरे के पौधों से भी सिर निकालते हैं...। लोग उसकी बातों पर पहले हैरान ज़रूर हुये पर फिर हंसे थे कि बाप के दो बीघा खेत में तो मकई भी कभी गेहूं जितनी बड़ी नहीं हुई और बेटा सारे गांव को बाजरे जितनी ऊंची गेहूं उगाने के बारे में बता रहा है। क्यों नहीं पहले वह अपनी ज़मीन में ही बेर जितने बड़े दानोंवाली गेहूं की फसल पैदा कर लेता।

और मैं सोचता था कि अगर रतनसिंह फोर्ड ट्रक की ड्राईवरी न करता होता तो वह शायद बाजरे से भी ऊंची गेहूं की फसल अपने खेतों में पैदा कर लेता। परन्तु बाप-दादा से चली आ रही अढ़ाई बीघा ज़मीन के उस गिरवी पड़े खेत में वह समा नहीं सका था और आखिर आठवीं पास करने के बाद पढ़ाई छोड़कर उसने अपने बूढ़े बाप के साथ उस धरती की मिट्टी में छः सात वर्ष गला दिये थे और अपनी उठती जवानी के सपने खोकर जो शायद उग नहीं सके थे; नौकरी की खोज में बम्बई आ गया था। शायद इस अढ़ाई बीघा ज़मीन में अपने बूढ़े बाप के साथ वह समा भी जाता, परन्तु उसके पीछे उसकी छः बहनों को एक पंक्ति थी और वह अढ़ाई बीघा ज़मीन उनकी शादियों का दहेज नहीं उगल सकती थी। आखिर रतनसिंह झुकी हुई कमरवाले अपने पिता और चिड़ियों जैसी अपनी छः बहनों को छोड़कर बम्बई आ गया था और पांच-सात महीने इधर-उधर धक्के खाने के बाद उसकी किस्मत चमकी थी और 'स्टैंडर्ड स्टील फैक्टरी' में इस ४४ माडल के फोर्ड ट्रक पर उसे नौकरी मिल गई थी। और गांव के साथी हैरान थे कि उसे ड्राईवरी तो आती नहीं थी, पर नौकरी उसे कैसे मिल गई है।

और उसे यह ट्रक चलाते हुये अब बारह वर्ष हो गये थे और इस अर्से में उसने गिरवी पड़ी अपनी अढ़ाई बीघा जमीन छुड़ा ली थी और अपनी शादी के अलावा अपनी तीन बहनों की शादियां कर लीं थीं और चौथी की शादी अगले वर्ष करनी थी। छोटी दोनों बहनों को वह पढ़ा रहा था और अब उनकी शादियों का ख्याल उसकी आंखों के सामने रात के सघन अन्धकार की तरह नहीं फैलता था और उसके बूढ़े बाप की दिन-दिन झुकती जा रही कमर फिर कुछ सीधी हो गई थी और रतनसिंह सोचता था कि यद्यपि वह स्वयं अधिक नहीं पढ़ सका परन्तु उसके यह चारों बच्चे, जो पिछले बारह सीधी वर्षों में कीचड़ में उगे हुये फूलों की तरह उसके घर की घुटन में खिले थे, शिक्षा से वंचित नहीं रहेंगे...और पढ़-लिख कर वे बड़ी नौकरियों पर लगेंगे और अच्छे घरों में रहेंगे। आज की तरह इस टीन की बनी हुई कोठड़ी में घुटन-भरे जीवन नहीं बितायेंगे...

पिछले बारह वर्ष से रतनसिंह सोच रहा था कि वह इस टीन की कोठड़ी को छोड़ दे, जिसमें कभी हवा नहीं आई, सिवाय बरसात के पानी के कभी पानी नहीं आया और सिवा पिछले एक साल के कभी बिजली नहीं आई। और जब टीन की नीची छत और टीन की घुटन भरी दीवारोंवाला यह कमरा गर्मियों में तपकर आग की भट्टी बन जाता तो इसमें बैठना मुश्किल हो जाता था और आस-पास के घरों के लोग दोपहर का समय बाहर बैठकर काटते। पर रतनसिंह इस कोठड़ी को आज तक नहीं छोड़ सका था। पहले तो मकान ही नहीं मिलता था और अगर कहीं मिलता भी था तो उसकी पगड़ी उसकी एक बहन की शादी के खर्च से कम नहीं थी। सो छोड़ने की बजाय वह आहिस्ता आहिस्ता इस कोठड़ी को सजाता आया था। रात के समय मर्क्यूरी ट्यूब के प्रकाश में, जिसे कि उसने स्वयं ही फिट किया था, यह कमरा आस-पास के कमरों की अपेक्षा कहीं अधिक चमकता था। इस कमरे के सारे फर्नीचर ने उसके हाथों में से ही जन्म लिया था। यह लोहे की स्प्रिंगोंवाली चारपाई उसने स्वयं ही बनाई थी। पता नहीं उसे कहाँ से इसका यह स्प्रिंगवाला फ्रेम मिल गया था। फिर क्या था उसने लोहे की चार मोटी सलाखें लेकर उन्हें कूट-पीट कर उसके साथ फिट कर-

दिया। यह तरकारी रखनेवाली टोकरी उसने स्वयं ही तारों को मोड़-तोड़ कर बनाई थी। यह जूते रखनेवाला बहुत सादा-सा स्टैंड भी उस के ही दिमाग का चमत्कार था। यह मेज़, यह कुर्सियां, यह दो अलमारियां, जिनमें से एक के दो खानों में उसके खरीदे हुये सामाजिक और जासूसी उपन्यास भरे हुये थे, उसने ही बनाई थीं, यद्यपि उनमें किसी अच्छे कारीगर के हाथों के स्पर्श की कमी थी। उसके बारे में मशहूर था कि उसे कोई भी टूटी-फूटी चीज़ मिल जाये, कुछ समय के पश्चात् उससे कोई नई चीज़ बन गई होती। अभी पिछले साल की बात है, उसने मुझे कागज़ के एक टुकड़े पर लिखा एक बॉक्स कैमरे का नाम और माडल और कीमत आदि के बारे में बताते हुये उसके बारे में राय पूछी कि वह ले ले तो कैसा रहेगा। और मेरे राय देने से पहले ही उसने बताया कि उसकी 'फ्लैशलाइट' साढ़े बाईस रुपये की आती है, पर वह तो स्वयं ही बना लेगा। और फिर उसने बड़े विस्तार से बताया कि वह उसकी कौन-कौन-सी चीजें वहां से लायेगा या कैसे बनायेगा और किस प्रकार कुल चार-साढ़े चार रुपयों में वह फ्लैश लाइट तैयार हो जायेगी।

मैं पहले सुनकर कुछ हैरान हुआ और फिर सभी के साथ खूब हंसा और उससे कहा कि अगर तुम फ्लैश लाईट स्वयं बना सकते हो तो फिर कैमरा ही मोल लेने की क्या ज़रूरत है। और अगले दिन मैंने उसे किसी दोस्त का बाक्स कैमरा लाकर खोलकर दिखाया और उसके काम करने का तरीका समझाया। वह हैरान होकर कहने लगा कि बस यही कुछ है। मेरे ख्याल में तो कैमेरा बहुत बड़ा रहस्य था। और इसके कोई पन्द्रह दिन बाद उसके पास एक कैमरा था जिस पर उसके केवल पांच–छ: रुपये खर्च हुये थे।

इसी प्रकार उसने अपने बड़े पुत्र के लिये तीन पहियोंवाली साइकल बनाई थी। कहीं से पुराने पहिये लाया, और एक सलाख के दोनों सिरों को मोड़कर उस पर हैंडल फिट कर दिया और उस पर बहुत अज़ीब किस्म की घंटी लगाई जिसकी आवाज में घूंघरु बजते हुये प्रतीत होते।

काम के अतिरिक्त उसे–अपने बच्चे भी इतने प्यारे थे कि कई बार तो वह आंखे मूंदकर उनके लिये खर्च करता और तब घर में पत्नी के साथ झगड़ा होता। अपनी छोटी बेटी के लिये एक दिन वह बहुत सुन्दर बूट ले आया और फिर जिस दिन अपने लिये छतरी खरीदने गया, उसके लिये फूलोंवाली एक बरसाती भी ले आया। यह देखकर उसकी पत्नी तमतमा उठी कि अभी बिटिया–रानी खड़ी होना तो सीखी नहीं, यह बूट और बरसाती पहनकर वह किन बाजारों की सैर करेगी।

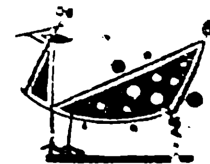
इसी प्रकार अपने दूसरे बच्चों के लिये भी वह कई बार आंख मूंद-कर अज़ीब अजीब तरह खर्च करता रहता और घर में पत्नी के साथ हमेशा झगड़ा होता। पर इन चीजों के बारे में उसने कभी पत्नी की बात नहीं सुनी थी। ऐसे मौकों पर वह घर से खिसक जाता और अपने गांव के साथियों में बैठकर गप्पें मारता। लेकिन कई बार हर विषय पर उसकी लम्बी बातों से वे तंग आ जाते, यद्यपि असलियत यह थी कि वे स्वयं उसके सामने बोल नहीं सकते थे। और वे कई बार उससे बचने की कोशिश करते। उसे आते देखकर वे इधर – उधर हो जाते। कभी वह उनमें आकर बैठ जाता तो वे एक एक कर वहां से जाने लगते कि अब बैठकर क्या लेना है, बातें तो केवल उसी को करनी हैं। और ऐसे मौकों पर वह वहां से उठकर फिर घर आ जाता और बहुत अकेलापन महसूस करता। और फिर कोई जासूसी उपन्यास लेकर पढ़ने लगता, या कभी आसपास के घरों के बच्चों को इकट्ठा कर किसी उपन्यास की कहानी सुनाने लगता। या उस दिन की अखबार में 'मीठा-भुम्मन' का हास्य भरा कालम और चुटकुले सुनाता। वास्तव में वह कभी अकेला नहीं बैठ सकता था। उसे बातें करने के लिये कोई न कोई चाहिये था ताकि वह अकेलापन महसूस न करे।

वह बहुत अच्छा मोटर-मेकेनिक भी था और जब कभी इसके बारे में बातें होती तो मोटरों की गैरेज खोलने के बारे में उसकी योजना पॉल्ट्री-फार्म खोलने से कम मज़ेदार और लाभदायक न दिखती। पहले मैं सोचता था कि नहीं वह स्वयं ऐसी गैरेज या पॉल्ट्री-फार्म या और कोई योजना शुरू कर लेता और बजाय महीने के एक सौ साठ रुपये कमाने के आसानी से पांच-सात सौ या और ज्यादा कमा लेता। परन्तु यह मैंने हौले-हौले अनुभव किया कि वह अपनी पक्की नौकरी छोड़ नहीं सकता था। किसी ऐसी योजना के लिये उसके पास पूंजी कहां थी? हर दो-तीन वर्षों के पश्चात् जो कुछ रुपये वह जमा करता उनसे बहन का विवाह हो जाता और सारी रक़म साफ हो जाती। तीन बहनों के ब्याह कर चुकने के बाद अभी और तीन बहनों के ब्याह करने थे और स्वयं उसके चार बच्चों की शिक्षा और विवाहों का खर्च था। सो उसके पांव उस पक्की नौकरी में फंसे रहते। वह अब उस नौकरी को छोड़ने का खतरा नहीं ले सकता था।

रतनसिंह की इस पक्की नौकरी पर यद्यपि और सभी बहुत खुश थे और उसके भाग्य को सराहते थे, परन्तु पता नहीं क्यों मैं हमेशा यही समझता रहा हूं की यह उन दो हाथों की मौत थी जो घड़ियों और मोटरों की मरम्मत कर लेते थे, जो फ्लैशलाईट और कैमेरे बना सकते थे, जिनमें लोहा और लकड़ी और टूटी-फूटी चीज़ें नई शक्लों में ढल जाती थीं और जिनमें उसके दिमाग का कोई भी विचार साकार होने से नहीं रह सकता था... वे हाथ, जिनमें हुनर के करिश्में थे और जो पिछले बारह वर्षों से ट्रक के स्टेयरिंग पर जमे हुये थे।

इस मौत को केवल मैं ही जानता था।

परन्तु आज जब उन हाथों की दूसरी बार मौत हो गई है तो पास व पड़ोस के सभी लोग एकत्रित हुए सहानुभूती प्रगट कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि रतनसिंह अब क्या करेगा? ● - ●









उस की आँखें भर आईं। संयम को धर्म मानने वाली मेरी उस निर्मल सखीने कुछ क्षण अपना मस्तक मेरे कंधे पर रखा। मेरा हाथ अपने माथे पर जरा देर फेर लिया। केवल दो चार क्षण...और...

[illegible]

वामन चोरघडे

क्या मैं और क्या आप, सबके लिये यह एक रोज़मर्रा का तजुरबा है। बात यह है कि कभी-कभी राह में कोई शकल सामने दिखाई देती है। देखने पर मन में चाहते हैं कि वह मुड़कर देखे अक्सर वह शकल किसी बहाने पीछे मुड़कर देखती है और यूँ ही नज़र मिला देती है।

और भी एक अनुभव। कभी किसी की तरफ देखते ही न मालूम क्यों लेकिन ऐसा लगता है कि उससे दिल खोलकर बातें करें—ऐसी बातें कि जिनमें पूरा दिल उँड़ेल दिया हो। वजह पूछना बेकार है लेकिन ऐसा होता है ज़रूर!

और एक आखिरी बात। कभी मन की हमारे हालत कुछ ऐसी होती है कि हम न किसी से मिलना चाहते हैं न बात करना। अकेलापन मन को अच्छा लगता है; किंतु हाय री तक़दीर! ऐसे समय में आगंतुक बातूनियों का एक तांता सा लग जाता है। यह आया, वह गया! जैसे चींटियों का झुंड निकल पड़ा हो खाने की चीजें बटोरने। दम घुट जाता है। मन ऊब जाता है।

खुली चाँदनी पर खड़े हैं। नीचे के आँगन में सफेद फूलों की बहार तन-मन को लुभा रही है। साँझ सँवला गई है। प्रतिपदा के चाँद की कली खिलने को आई है। और उसकी अठखेलियों में मगन हैं तारों की फुलझड़ियाँ। सितारे हसीन होते ही हैं—फूले हुये, टिमटिमाते हुये, आसमाँ की नीली चादर की शोभा बढ़ाने में एक दूसरे से होड़ लगाते हुये!........

लेकिन यह सब देखते देखते अचानक मेरे मन में ऐसा कुछ चल पड़ा कि मानों इनमें से पाँच-पचास सितारे टूटकर मुझपर गिर पड़े तो क्या हो? उस शांत-सुहावनी वेला में भी जान निकलती सी मालूम पडी। क्यों इस विचार को मेरे मन में स्थान मिला कुछ समझ में नहीं आया। जी घबड़ा उठा। अन्दर कमरे में कुछ आराम करने लौटा तो लगा मानो वहाँ की चारों बत्तियाँ टूट-फूट गई हों। वहाँ से भागकर दूसरे कमरे में जा लेटा। वहाँ

अनुक्रमणिका

मच्छरों की मजलिस ज़ारी थी। देख-सुनकर खुश हुआ और उपहार में शरीर उन्हें सौंपकर नींद की मिन्नतें करता रहा। हाथ पैरों में काँटे से चुभने लगे। यह मारा डंक—यहाँ-वहाँ, सारे बदन में, और अब मलेरिया होने में देर ही क्या?

उठकर ठंडे पानी से हाथ पैर भिगोये। मुँह पर पानी छिड़का और मन में पक्का इरादा कर लिया कि न दीयों की, न तारों की ओर देखूँगा। इसलिये न कमरे में, न छत पर, बीचोंबीच दरवाज़े में खड़ा हो गया।

और मान लो घण्टे-घण्टे के, मिनिट-मिनिट के अन्तर से लगातार सात-आठ व्यक्ति आकर आँखों में प्राण उंड़ेलकर कहने लगें कि—'तुम मुझको बहुत अच्छे लगते हो, मैं तुमसे प्यार करती हूँ, सिवाय तुम्हारे और कोई चाह नहीं'—तो इसका इलाज़? मच्छरों को शरीर सुपुर्द कर देनेसे छुटकारा मिल जाता है किंतु यहाँ तो इस तरह की कोशिश बेकार है। इसलिये और भी दम घुटने लगता है। दूर नभोवितान में चमकते तारे सुंदर दिखाई देते हैं—शीतल, स्निग्ध, स्नेहल! लेकिन कहीं टूट पड़ें तो? और हम पर आ गिरें तो?

अब इतना सब देखने-दिखाने के, करने-कराने के, भोगने-भुगतने के बाद नारी-प्रेम की यह बाढ! सुध-बुध खो जाती है। बाहर की दुनिया से बचने के लिये आँखें बन्द करें तो अन्दर की दुनिया जाग उठती है, सताती-तरसाती है।

स्वादिष्ट, सुरुचि, भांति-भांति के पक्वानों से भरी थाली कहती है कि लो, उठा लो कोई पदार्थ! और मन चाहता है कोई ऐसी चीज़ जो सादी हो, जिस की रुचि कभी जीभ पर चढ़ चुकी हो। ऐसा ही हुआ करता है।

आज न जाने क्यों मुझे उसकी याद आ रही है! उसके बोल-बर्ताव में कभी कोई जोश न था। उसकी चाल में न नाज़ था न नज़ाकत। उसकी भाव-भंगिमा में कोई खास खिंचाव न था। गुलाब की पंखुड़ियों से सजी थाली की मिठाई की तुलना में वह कोई चीज़ ही नहीं थी। इसीलिये शायद मन में हूक उठती है; जिया न जाने क्यों तड़पता है। लगता है कि आज भी इतने सालों बाद यहीं से उसके नाम से पुकारूँ तो वह उसे सुनाई देगी और महसूस होगा उसे कि आज मुझे उसकी सख्त ज़रुरत है।

ताज्जुब है। पूरे चार साल हम दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते रहे लेकिन सिर्फ तीन-चार बार वह मुझ से बोली होगी। उस बोलने में भी कोई खास बात नहीं थी। सुख-दुख का कभी कोई बयान न था। जैसे वह अपना शरीर कपड़ों में ठीक तरह से ढक लेती थी उसी प्रकार उसका मन भी उसने किसीको देखने के लिये खुल्ला नहीं रखा था। फिर भी मेरे लिये जो कुछ था उतना ही काफी था। कॉलिज में भरती होने के पहिले दिन जैसे मैंने अपनी क्लास में पैर रखा, मुझे वह दिखाई पड़ी। उसी क्षण से मन में साध हुई कि उस से जान-पहिचान हो—वह बोले तब भी और न बोले तब भी! क्योंकि मैं अपने तईं खूब जानता था कि उसके बोलने पर भी मैं खुद कोई खास बात न कर सकूंगा—हो सकता है जो बोलना होगा वह रहेगा भीतर और जो न होगा वह आयेगा बाहर।

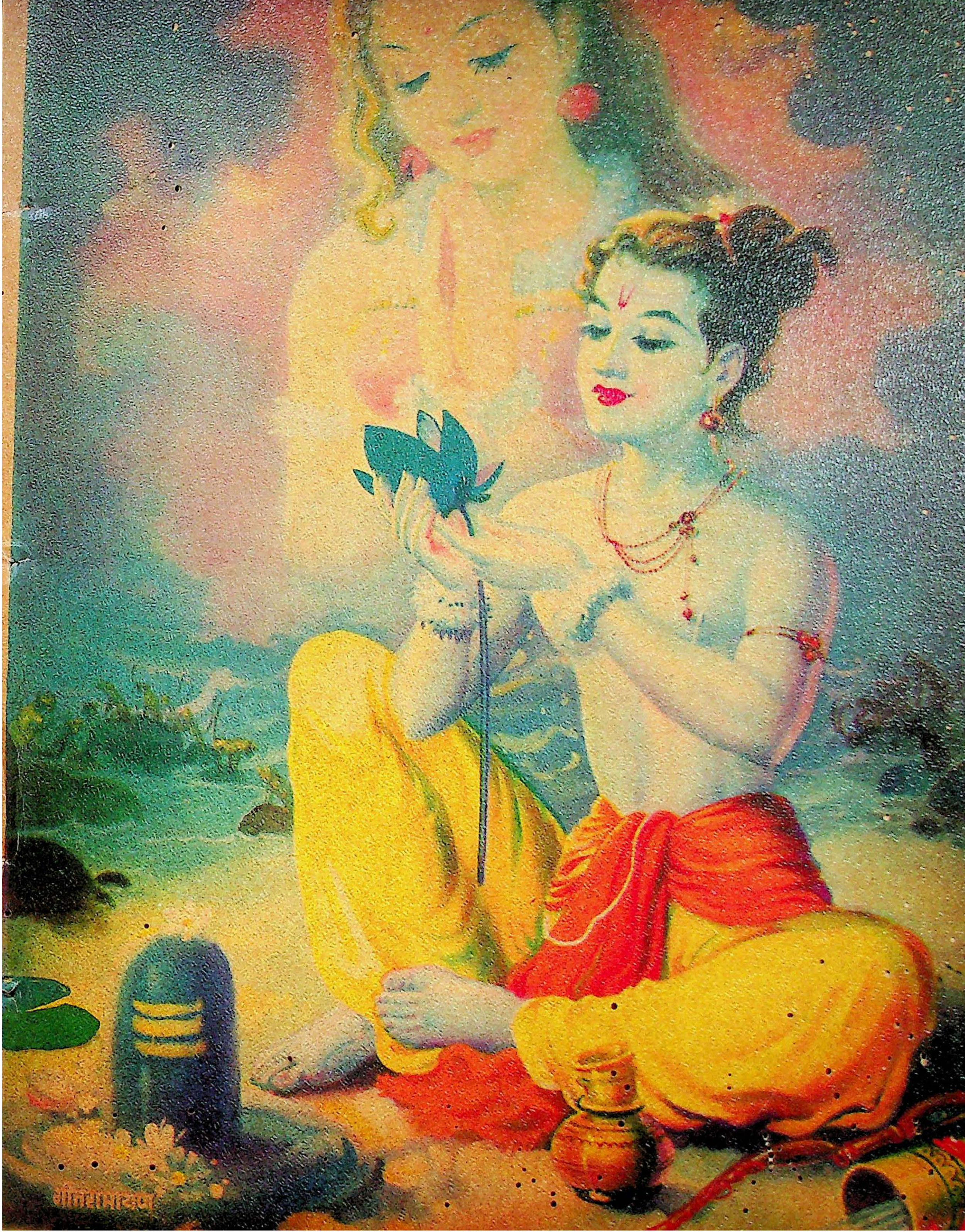
ऐसे ही दूर किसी छोटे से टीले पर चंपे का पेड़ होता है—फूला हुआ, अपनी मस्ती में झूमता हुआ, देखनेवाले को ललकारता हुआ। उसकी ललकार सुनते ही नीचे की ज़मीन पर खड़े-खड़े लगता है कि उसके पास पहुंचें। पहुंचते हैं सो बात नहीं। न पहुंचने पर कुछ नुकसान होगा सो भी बात नहीं। कोई सुंदर मोटर गाड़ी देखते-देखते नज़र के सामने से निकल जाती है, मन में भर जाती है। उसके लिये मन में चाह होती है किंतु इस चाहत के पूरा न होने पर मन रात-दिन रोता-सिसकता हो सो बात नहीं। कहीं से हवा पर लहराता कोई नग़्मा कान में गुदगुदी पैदा कर देता है। मन भी उसके साथ हो लेता है। उसे दोहराने के लिये कुछ प्रयास करने को जी चाहता है किंतु गाने की तर्ज़, गुनगुनाहट न जानते हुये भी जैसा बने उस सुर को मन दोहराता रहता है। रोज़मर्रा के कामों में उससे कोई रुकावट नहीं होती। मन गाता रहता है और कामकाज से हटता भी नहीं। काली-काली घटाओं से आसमान उभर आता है, बरसात के आसार महसूस होते हैं, एकाध बूंद शरीर में न मालूम क्या कर जाती है, मिट्टी से हवा खुशबू ले आती है और किसी ढाबे में रोटी बेलता हुआ गंवार रसोइया कोई तान छेड़ देता है।

बस ऐसा ही कुछ-और वह लड़की सामने की बेंच पर बैठी हुई है। मेरी सीट सबसे पीछे है। बीच दोनों के कितने चेहरे, कितनी सूरतें! कोई मुड़ के देखे तभी उसका दीदार हो। नहीं तो उनकी पीठ देखते रहना—किसीके सिर में टोपी है, किसीके कान में पेन्सिल, कोई गर्दन पर रेंगती हुई चींटी से लड़ रहा है, कोई अपने नाखून का बख्खर सिर के बालों में चला रहा है...!

अध्यापक धीरे सुस्त अपना लेक्चर देते और वह लड़की एक-चित्त से सुनती। वह अगर सुन सकती है तो मुझ को भी सुनना चाहिये।

पूरा एक साल ऐसे ही निकल गया। मैंने और उसने जब कॉलिज में प्रवेश किया था पानी के दो चार झले बरस चुके थे। ज़मीन का रंग बदल गया था। हरियाली ने उसे अपना लिया था। पेड़-पौधे जी गये थे। उसके बाद तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूल हँसने लगे। और कुछ दिन बाद छोटे-बड़े, काले-पीले, सफेद-कबरे परिन्दे आसमान को चुनौती देने लगे थे। और फिर एक दिन सुबह की हवा का झोंका आकर खबर दे गया कि दीवाली का मौसम आनेवाला है। और भी कुछ दिन बीते। सूखी बयार चलने लगी। पके, पीले पुराने पत्ते झड़ने लगे, हवा में उड़ने लगे। यह भी खत्म हुआ। फिर इम्तिहान का दौर शुरू हुआ। वह पास हो गई। मैं भी। लेकिन उस पूरे साल में न उससे कभी भेंट हुई न कोई बातें हो सकी। ध्वनि-प्रतिध्वनि कुछ नहीं।

अनुक्रमणिका



अनुक्रमणिका

दूसरा साल शुरू हुआ। पेड़ों के नीचे मुलायम हरियाली मेहमान बनकर आई। मेरा एक साथी पेड़ के नीचे मेरे पास आ बैठा। चेहरे पर उसके हल्की हँसी थी। उसने कहा:

"तुम्हें अगर एतराज़ न हो तो मेरे एक परिचित से तुम्हारी पहिचान करा दूं।"

"परिचित 'मेरे' हैं या 'मेरी'?"

"खुद ही देख लो न! चलो, घबराओ मत। सूचना मेरी नहीं, उसीकी है"

"लेकिन पहिचान की वजह?"

"कुछ नहीं। ऐसे ही उस दिन बात-बात में तुम्हारी एक कहानी का ज़िक्र मैंने उससे किया। कहानी पूरी होते ही वह कहने लगी कि इस कहानी के लेखक को मैं देखना चाहती हूं। उस दिन मैं चुप रहा। लेकिन दो-तीन बार उसने याद दिलाई। चल मेरे भाई! नहीं तो मुफ्त में मैं मारा जाऊंगा। तुम दोनों की पहिचान करा दूँ और अपनी जान बचा लूं।"

उस दिन पहिचान हो गई। केवल 'नमस्ते जी'! धूप में हम खड़े थे। सोने की रंगीनियाँ चारों ओर दमक रही थीं। उसने कहा, 'ठीक है?' और हम बोले 'शुक्रिया',

बस इतना ही। किंतु इसके बाद मानो वह मुझे दिखाई देने लगी। एक सादा सा स्कर्ट, खुली नीरोग पिंडलियाँ, ऊंची एड़ी के बूट, विपुल केशभार, और गोरा-गोरा सलोनापन! आँखें सदा धरती निरखती-सी। ज़रा ऊपर उठा लेने पर पलकें भींगी-भींगी सी नज़र आतीं। किसीकी ओर देखने पर उसे लगेगा कि आँखें कुछ बोल रही हैं। चेहरे पर मृदुता, एक प्रकार की उदासीन छाया, तितिक्षा! समूची व्यक्तिरेखा में संयम सुथरापन! कक्षा में आये तो किताबें सीने से दबाकर। किताबें भी खुली नहीं, साफ गत्ते में लिपटी हुई। ऊपर किताब का, लेखक का नाम, खरीदने की तारीख सब लिखा हुआ। एक हाथ किताबें सम्हालते हुये जिसकी दो उंगलियों में पेन और बाकी उंगलियाँ मानों किताब को सहला रही हों। आती तो अपने में डूबी हुई। न किसीसे कोई सरोकार। आस-पास इतना पानी है परंतु एक छींटा भी उस तक न पहुंच पायेगा। चेहरे पर यह विश्वास कि इन पत्तों में से कमल-पुष्प सोहता हुआ निकल आयेगा। हर्ष नहीं, विषाद नहीं, कम या अधिक के कोई हाव-भाव नहीं।

इतना सारा वर्णन कर रहा हूँ। हो सकता है कि यह सब मेरे ही मन का हो। वैसा हो, जैसा मैं उसे देखना चाहता हूँ। उसकी तरफ से कुछ भी नहीं, एक चितवन भी नहीं। मेरी कहानी की कोई घटना अगर उसका मन खींच लेती है तो मेरे—उस कहानी के लेखक के लिये थोड़ा सा अपनापन, यूँ ही जरा सी झुकावट!—हैरत मेरी बढ़ेगी नहीं तो और क्या होगा? मैं तो अपना उसी जगह, ताकता हुआ उस चंपे के पेड़ की ओर! आयेगा कभी, न कभी मौका और पहुँचूंगा वहाँ तक!

दूसरे बरस का जुलाई-महीना बीता। उसके बाद हेमंत का सोना-सुहाग देखा किंतु वह बोली नहीं। शरद की ऋतु भी आकर चली गई परंतु उसकी ओर से कोई जवाब नहीं। शिशिर के आगमन की हवा चलने लगी।

दिसंबर की एक सुबह। ठंड मानों हड्डियों में गड़ रही थी। इसे सहने का एक ही इलाज मेरे पास था। एक कुर्ता पहिन साईकिल बाहर निकाली। सात-आठ मील का चक्कर लगा आया। शुरू में तो हवा मनाकर गई बाद में उससे दोस्ती हो गई।

दिन निकल आया। सवेरे कॉलिज लगता था। घर जाने पर देर होगी और कॉलिज जाऊं तो अकेले बैठना पड़ेगा। खैर, बैठेंगे अपने पेड़ के नीचे। सुनेंगे उसकी बातें।—यही कि पिछले साल उसके नीचे ऐसे वक्त कौन बैठा था, उससे पहिले किसने अपने सुख-दुख उसे जतलाये थे...!

विद्यार्थी आने को ही थे। कॉलिज के बगीचे में एक हौज पर जिसमें फव्वारा था सर-सर उड़ता, मैं जा बैठा। तनमन चुस्त था। इसलिये किसी गाने की गुनगुन—उसी समय मुझे लगा कि कोई राजहंस अपनी राजगति से मेरी ओर बढ़ रहा है।

चंद मिनिटों में वह मेरे पास आई। दो बरस बीते थे किन्तु वही हंसता हुआ मुखड़ा, निर्मल मन! आंखों की पलकें ऊपर की ओर ज़रा उठी हुई, कुछ बोलने के लिये उत्सुक! वही विश्वास, वही तितिक्षा!

"आज खूब सर्दी है न? हवा जैसे काट रही है।"

"नहीं तो। मुझे तो कुछ मालूम नहीं पड़ता। मैं अभी सात-आठ मील घूम आया साईकिल पर। मुझे तो गरमी लगती है"

"झूठ।"

"नहीं, बिल्कुल सच।"

उसने सहज में मेरा हाथ अपने हाथ में ले हलके से दबाया।

"हाँ, सचमुच गरम है"

"है न? मैं तो कह चुका था।"

"ऐसा नहीं। कहो कि आज खूब सर्दी है।"

"क्यों भला?"

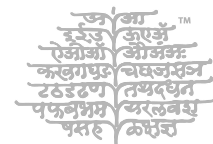
"क्योंकि आज हम क्लास में नहीं जायेंगे। मेरा मन आज पढ़ने को नहीं है। चलोगे मेरे साथ?"

"कहाँ?"

"कहीं भी।"

"इसके माने?"

अनुक्रमणिका





"माने क्यों पूछने लगे ? चलो न। मैं अपने घर ले जाऊँगी तुम्हें।"

"सच ?"

"हाँ, ऐसा ही।"

वह मुझे अपने घर ले गई। जैसा मुझे अंदेशा था, ठीक वैसे ही हुआ। मुझे या उसको बात करने को कुछ सूझा ही नहीं। मन में बहुत कुछ आ गया। — प्रोफेसरों के बारे में, किताबों के, परीक्षा के, आबोहवा, कपड़े-लत्ते, महँगाई, देश की मौजूदा हालत, साईकिल के ऐन वक्त पर पंक्चर होने, चलते समय चप्पल टूट जाने, समारोह में कपड़े पर आईस्क्रिम गिरने के बारे में — ये सब बातचीत का सिलसिला चलाने के विषय थे। किंतु मन ने कहा कि यहाँ नहीं, अभी नहीं, इसके पास नहीं।

इससे भी दूसरी बातें थीं। जैसे बड़े-बड़े खिले हुये सितारे जिन्हें देख लगता है कि हाथ बढ़ाकर तोड़ लें। महाराजबाग़ के फूलों की चमक-दमक, तालाब में धीरे सुस्त मज़े में तैरनेवाली पनमुर्गियाँ, तीतिहरी की आवाज़, कीट्स, बायरन, शेली की कवितायें, आँद्रे मोर्वा, शरद, झोला की अमर रचनायें — किंतु मन ने कहा कि यहाँ नहीं, अभी नहीं, इसके पास नहीं।

इसी वजह से एक ही सोफे पर पास-पास बैठकर भी दोनों में कोई बात-चीत नहीं हुई। उसने अपने टेबुल की दराज़ में से ब्रँडी की एक बोतल निकाली। करीब एक-एक औंस से दो प्यालियाँ भरीं और......।

"अच्छा लगेगा ज़रा लो। काफी ठंड है बाहर। इसके बाद एकेक प्याली गरम चाय पीयेंगे। लेकिन तुम चुप जो हो ?"

"जैसे तुम जो बोल रहे हो।"

"क्या लड़कियों से तुम शर्माते हो ?"

"क्या लड़कों से तुम शर्माती हो ?"

"नहीं तो।"

"मैं भी शर्माता नहीं। लेकिन तुमसे बोलने के लिये कुछ भी सूझा नहीं पाता।"

"यही बात है न ? तो सुनो, हम दोनों में काफी बातें होंगी। केवल शब्दों के भरोसे बात की जाती है ऐसा तो कहीं लिखा नहीं है। अल्फाज़ के अलावा भी बातें होंगी तुम्हारे और मेरे बीच। चलो, कॉलिज चलेंगे।"

"चलो, लेकिन पढ़ना तुम्हें आज पसंद जो न था ?"

"पसंद अब भी नहीं। लेकिन सिर्फ तुम्हारे साथ वहाँ तक ज़रा हो लेती हूँ। फिर वापस लौट आऊंगी।"

"बुरा मत मानो। दिलो जान से मैं चाहता हूँ तुमसे बातें करने को, लेकिन....."

"मेरे ही मन की बात कह गये तुम। नहीं, बुरा मानो ऐसा कुछ भी नहीं। समझते क्यों नहीं साथी मेरे ! अच्छा चलो। कोई किताब साथ लाये थे क्या ?"

"नहीं।"

"फिर मैं भी कोई किताब लेने से रही। चलो।"

सवेरा उजला हो गया था। रास्ते पर कोई ज्यादा आवाज नहीं थी। हम दोनों की साईकिलें तेजी से सर-सर करती जा रही थीं।

"कहीं आगे मत जाना मेरे। बिल्कुल साथ-साथ चलना।"

"कहीं पीछे मत रहना मेरे। बिल्कुल पास-पास चलना।"

"कैसे बोलते हो तुम ?"

"क्यों ?"

"नहीं, यूँ ही। मुझे बड़ा अच्छा लगता है।"

"यह तो मेरे मन की बात है सखी !"

"तुम्हारा नाम क्या है ? कैसे पुकारूं ?"

"और तुम्हारा ? कैसे आवाज़ दूँ ?"

कॉलिज का फाटक आ गया। उसने मुझे दरवाज़े तक पहुँचाकर अपनी साईकिल मोड़ी। विदा लेते समय उसने कुछ इस तरह मेरी ओर देखा कि मेरे आसपास की दुनिया मेरे सामने से ग़ायब हो गई और घंटे दो घंटे मैं मानों उसीके साथ था — न आगे न पीछे !

दूसरे दिन से फिर वही हमेशा का क्रम शुरू हुआ। अपनी किताबें लेकर वह कक्षा में आने लगी और मैं पिछली बेंच पर बैठ लेक्चर सुनने लगा। बीच में आनेवाले वही सिर, वही टोपियाँ, वही सूरतें। हमेशा की तरह मेरी साईकिल मुझे घर से कॉलिज तक और कॉलिज से घर तलक पहुँचाने लगी। वही हँसीमज़ाक, वही फूलों का खिलना, वही बादलों का आना और हट जाना, बगीचे में के हौज से माणिक-मोतियों के फव्वारे बिखरना, दूब पर लाल-नीले फूलों का खिलना !

फिर एक बार पेड़ों से पत्ते गिरने लगे। परीक्षा का मौसम आया और चला गया। गरमी की छुट्टियाँ शुरू हुईं। मैं पास हो गया। उसके भी पास होने की खबर मेरा वह मित्र दे गया। ख़बर पाने पर सिर्फ 'बहुत अच्छा !' इससे ज्यादा कुछ नहीं।

चौथा साल ऐसे ही बीता। रूखा-सूखा ! पर हाँ, एक बात तो ज़रूर हुई — भगवान तिलक की पुण्यतिथि संपन्न हुई। बाद में श्रावण सोमवार की आधे दिन की छुट्टियाँ मिलीं। दीवाली की लंबी छुट्टी में मैं बम्बई चला गया। वहाँ से कुछ चीजें खरीद लाया। — एक शीशा, पेन। इसी पेन से एक नई कहानी लिखी। फिर मार्च का महीना शुरू हुआ। भगत सिंह को फाँसी हुई थी, उसकी याद जाग उठी। दो दिन खाने-पीने की सुधबुध नहीं रही। बाद में सब कुछ ठीक हो गया। ऐसा ही है आदमी का मन।

कॉलिज का यह मेरा अंतिम वर्ष था। इसलिये सब से विदा ली। प्रोफेसरों को, आचार्य को प्रणाम किया। बाबू लोग, चपरासी सब से हाथ मिलाये। सब से अनुनय की कि पहिचान रखना।

लेकिन मिला नहीं सिर्फ उससे। मिलने की बात भी याद नहीं आई। मेरा मित्र बीच-बीच में उसकी खबर देता था। शायद उतना ही मेरे लिये पर्याप्त था।

इसके बाद और दो साल बीते। पेट के लिये मज़दूरी की ज़रूरत पड़ी। एक मामूली-सी नौकरी मिल जाने पर थोड़ा सा प्रेम कर लिया और शादी कर ली। दाल, चाँवल, शाग, रोटी का चक्कर शुरू हुआ। ऐसे ही किसी छुट्टी में फिर बम्बई जाने का काम पड़ा। पत्नी ने कहा कि मेरे लिये सोने की चूड़ियाँ लेते आना। उसकी सहेलियों में से किसीने कहा यह लाना किसीने और कुछ। ठीक समय स्टेशन पहुँचा। पत्नी, सहेलियाँ, नाते-रिश्तेवाले मिलने आये। थोड़ी देर लगा कि मैं कोई बड़ा आदमी हूँ क्योंकि इतने सब मौजूद थे। दोपहर के चार बजे ठीक समय पर रेलगाड़ी स्टेशन में दाखिल हुई। गाड़ी छूटने पर भी मेरी पत्नी कितनी देर तक डिब्बे के दरवाज़े में खड़े मेरी तरफ़ देखती रही। रेलगाड़ी ने ज़ोर पकड़ा और मेरा मन रेल से आगे दौड़ बम्बई पहुँचा।

मेल का पहिला स्टेशन कुछ डेढ़ घण्टे में आया। गाड़ी के रुकने पर चाय पीने की इच्छा से नीचे उतर पड़ा। स्टाल पर जा ही रहा था कि इतने में...!

मैं खुद की आँखों पर भरोसा न कर सका। क्योंकि वही लड़की तीन बरसों के बाद उस स्टेशन पर मुझे दिखाई दी। तेज़ी से पैर बढ़ा वह मेरे ही डिब्बे की तरफ आ रही थी। वही सादे कपड़े। वही सलोनी सूरत! वही पलकें जो कुछ ऊपर उठी थीं और वही धीमी-धीमी मुसकान!

"अरे, तुम यहाँ कैसे?"

"यहाँ मेरे रिश्तेदार हैं, उनसे मिलने आई थी, लेकिन तुम?"

"मैं बम्बई जा रहा हूँ।"

"नहीं, आज न जा सकोगे।"

"इसके माने? मैंने टिकिट जो खरीद लिया है।"

"खरीदा हो तो रखा रहेगा।"

"लेकिन मेरी छुट्टियाँ भी तो सिर्फ दो चार दिन..."

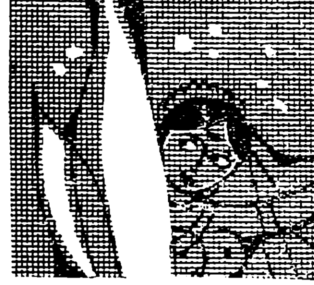
"कुछ भी हो। आज मत जाना। चाहे तो रात की गाड़ी से जाओ।"

"आखिर यह क्यों?"

"क्योंकि तुम्हारे पास भी कोई माने होने लगे? पूछोगे क्यों? तुमसे कुछ कहना है—कुछ बातें करनी हैं।"

"बातें? उस दिसंबर के सवेरे जैसी?"

"वैसी ही सही। तुम पहिले सामान उतारो।"



आखिरी रात के दो चित्र

श्यामसुन्दर घोष

रात औंधे तवे सी काली निस्पन्द है
इक्की-दुक्की रोशनी
समन्दर की लहरों सी पछाड़ खाती है
अंधेरे के ऊँचे कगार से
सिर टकराती है।
गहरे सूनेपन के बोधने
सब कुछ ग्रस लिया है
वातावरण निस्पन्द बेजुबान है।
अभी अभी सगबगाएगी हवा
आँखें मलती, अँगड़ाइयाँ लेती,
आँचल सम्हालती हुई
उठेंगी दिशाएं
मलिन वसन तज कर, हाथ-मुंह धो-पोंछ
बालों को सँवार कर प्रस्तुत हो जायेंगी
ओस लिये चौके के बीच
कारबार जल्दी-जल्दी शुरू होगा
धुँआ उठेगा
गोल-गोल छल्लों से
आकाश सुहाना हो जायेगा
दुध मुँहे बालक अँगड़ाइयाँ लेंगे
पत्तों-लताओं की चारपाइयाँ
हल्के चरमरायेंगी
औंधा तवा शीघ्र उलट जायेगा
प्रभात की सखरी आया
सेकने लगेगी
सूरज की लाल-लाल नरम-नरम आँच में
हल्की-फुल्की गर्म-गर्म रोटियाँ
वातावरण चूड़ियों की मीठी खनकों से
गुंजित हो जायगा।

अनुक्रमणिका

बेचारी मेल गाड़ी छोटा सा मुँह ले चली गई।

"कहाँ चलना होगा? तुम्हारे रिश्तेदारों के यहाँ?"

"नहीं।"

"फिर कहाँ? मैं तो यहाँ पर किसीको जानता-वानता नहीं।"

"तुम्हारा सामान क्लोकरुम में डाल दो और चलो मेरे साथ।"

"लेकिन कहाँ? ज़रा बताओगी भी?"

"फिर पूछने लगे? अच्छा बताती हूँ। पहले स्टेशन के बाहर चलो।"

तब तक शाम हो गई थी। दूर की वस्तुएं धुंधली दिखाई देती थीं। हम दोनों साथ-साथ किसी एक सूने रास्ते से जा रहे थे। रास्ते ने शहर छोड़ दिया। खुले खेत दिखाई दिये। खेतों की सींचाई से ठंडी हवा आने लगी। आदमियों की आहट बन्द हो गई। कहीं इधर-उधर कोई एकाध बैलगाड़ी, कोई एकाध घर की ओर बढ़ती हुई मज़दूरनी—बाकी सब सूना था।

उसने बिल्कुल सहज में मेरा हाथ अपने हाथ में लिया।

"चलो, उस पुलिया पर बैठेंगे।"

"लेकिन तुमको कुछ कहना जो था मुझ से?"

"ओ! कहना जो था। कुछ तो नहीं! मुझ जैसी कह भी क्या सकती है।"

"अब तो ग़ज़ब कर दिया तुमने!"

"अच्छा बाबा कहती हूँ। नाराज़ न होना। धीरज तो बिल्कुल नहीं"

"बात यह नहीं। लेकिन जान-बूझकर मुझे रेल से उतार लिया...।"

"तो इससे क्या हुआ? मैं जानती थी कि मान जाओगे। हुआ न वैसे ही? बस इतना ही। अच्छा यह बताओ कि क्या तुमने कभी किसी से प्यार किया?"

"हाँ, किया।"

"किससे?"

"जो अब मेरी पत्नी हुई है।"

"ऐं! याने तुमने शादी कर ली।"

"हाँ!"

"कब?"

"कुछ दो साल हुए।"

"इसके माने तुम आगे चले गये। याद है मैंने कहा था कि मेरे आगे मत जाना?"

"और याद है मैंने कहा था कि मेरे पीछे मत रहना?"

"इसके माने कि हम साथ-साथ नहीं चल सके!"

समृद्धि का प्रतीक

(अमावस की रात है। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ है। "दीपक की लौ" अंधेरे को चीरती हुई मुस्कराती है। दो हाथ उसके समीप खड़े हैं। हाथों को देखकर दीपक नाक भौं सिकोड़ता है और—)

दूर हटो, अपने आपको मुझसे दूर रखो।

क्यों?—मनुष्य के हाथों ने नम्रता से पूछा।

क्योंकि तुम गंदे हो। मिट्टी से भरे हो। छी: छी: छी:। तुमसे अब भी बदबू आती है। कभी-कभी लाचारी से तुम दूसरे के आगे फैल जाते हो। गंदे काम करना और क्षमा के लिए पाँव पकड़ना ये ही तुम्हारे काम हैं।

हा...हा...हा...जोरदार कहकहा लगाकर हाथों ने कहा, खूब इसीको कहते हैं "दिये तले अंधेरा।" यह न भूलो कि इन्हीं हाथों ने तुम्हें जन्म दिया है। आज जिस मिट्टी के आसन पर तुम विराजित हो वह इन्हीं हाथों की देन है। अपनी उज्ज्वलता में तुम अंधे बन गये हो। अपने जन्मदाता को ही घृणा से देख रहे हो। यौवन के उन्माद में न जाने क्या-क्या बक रहे हो। मिट्टी भरे हाथ गंदे होते हैं यह किसने तुमको बताया? पगले, वे तो वरदान-स्वरूप हैं। विधाता हैं। पास-पड़ोस की चीजों को देखो। किसने उन्हें सँवारा है? ये भव्य प्रासाद, ये उपवन, ये रास्ते, ये बांध...इन्हें सुंदरता किसने प्रदान की? ज़रा सोचो तो...

दीपक ने तुच्छता भरी दृष्टि से देखकर कहा, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना कोई तुमसे सीखे। दूर की बात क्यों? अब की लो न! अब हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है। ऐसे वक्त पर, कौन काम आता है? तुम या मैं? दिवाली की रोशनी को चार चाँद कौन लगा देता है? रात को, विद्यार्थियों को ज्ञान अर्जित करने में कौन सहायता पहुँचाता है? हा...हा...हा...ठहाका लगाकर दीपक ने पूछा।

अरे तुम्हारा अपना अस्तित्व कहाँ है? तुम नहीं, तुममें तेल जलता है। उसीसे तुम प्रदीप्त बने हो।

यह तीर दीपक के मर्म को छू गया। वह आग बबूला होकर कहने लगा, यदि लोहे का टुकड़ा आग में जलकर आग जैसी ताप दे तो तुम क्या कहोगे? आग या लोहा? वैसे ही तेल मुझमें समाकर दीप्त बन जाता है। लोहे को सोना बनाने की शक्ति पारस में होती है, वैसे ही तेल को दिव्यता प्रदान करने की शक्ति मुझमें है। समझे...?

और उसी समय हवा का जोरदार झोंका आया। डींग मारनेवाला दीपक अब पीला पड़ गया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। आर्त स्वर से वह चिल्लाने लगा—"बचाओ...इस बवंडर से मुझे बचाओ।" हाथ कुछ समय के लिए रुके। परंतु दौड़कर उन्होंने दीपक को सहारा दिया। हाथों के सामने हवा की एक न चली। वह दूर हट गयी

दीपक की आँखों में कृतज्ञता के भाव झलकने लगे। उसने कहा, यदि आप यहाँ न होते तो...

हाथों ने उसकी पीठ पर प्यार की थपकियाँ देकर कहा, अरे, अपनों की सहायता करना यह हमारा कर्त्तव्य है। यौवन के नशे में नित्य ऐसा ही होता है। दीपक ने हाथों को चूमकर कहा—अब मेरी आँखें खुल गयी हैं।

हाथों ने प्रसन्न होकर कहा, तुम्हारे सहयोग की हमें आवश्यकता है। संसार की समृद्धि तुम्हारे सहयोग पर निर्भर है। हम और तुम, दोनों मिलकर वृद्धों को दिलासा दे सकेंगे। होनहार बालकों के अरमानों को पूरा कर सकेंगे। सुहाग-रात की उमंगों से युवतियों को भर सकेंगे। विधवाओं को हमीं से सहारा मिल सकेगा। चारों ओर खुशहाली के नज़ारे हमारे कारण दिख पड़ेंगे।

ये बातें सुनकर दीपक में सेवा की ज्योत जग उठी। वह बोला, मैं इस कार्य में सदैव आपके साथ रहूँगा।

तब आओ प्रतीक बनकर, चिन्ह बनकर हम देश के कोने-कोने में फैल जायें। बच्चों को शिक्षा दिलाना, सुंदरियों की माँगों में सिंदूर भरना, बूढ़ों का सहारा बनना, विधवाओं को दुख से मुक्त करना, यही आज से हमारा कर्त्तव्य होगा।

कैसे?—दीपक ने कुतूहल से पूछा।

जीवन-बीमा-निगम का प्रतीक बनकर, और क्या? हाथों ने हँसते-हँसते उत्तर दिया।

और वह हँस दी—वही हँसी, निर्मल, भली, साफ! जिसमें मन की सुगंध होती है। कुछ देर वह मेरे हाथ पर अपना हाथ फेरती रही।

"अच्छा, यह हो गई मेरी बात। अब तुम्हारी भी कुछ सुनूं।"

"मेरी बात! ना। मैं नहीं कहूँगी।"

"क्यों?"

"क्योंकि तुम हँसोगे।"

"नहीं, नहीं हँसूंगा। कहो।"

"नहीं। कहूँ भी तो कैसे? तुमने प्यार किया और शादी भी कर चुके। प्यार तो मैं भी करती हूँ लेकिन शादी का कुछ ठिकाना नहीं।"

"किससे प्यार करती हो?"

"है एक ऐसा ही। वह खूब अच्छा है। बहुत भाया है मुझे। बहुत-बहुत चाहती हूँ। तुम देखोगे तो तुम्हें भी वह अच्छा लगेगा। मुझे वह बहुत प्यार करता है। जी-जान से प्यार करता है। उससे मैंने वचन लिया है...वह मुझको कभी...मैं जो कहूँगी वैसा ही वह करेगा। वचन की बात ही क्या है। वह मेरे बिना कुछ नहीं कर पायेगा। और मैं भी......!"

"तो फिर उससे शादी क्यों नहीं करती?"

"शादी! शादी कैसे करूं? क्योंकि मैं अमीर की लड़की हूँ। मेरे रिश्तेदार बड़े-बड़े ओहदे पर हैं। मेरे माँ-बाप कहते हैं कि अपनी बराबरी का लड़का होना चाहिये। वह ग़रीब है और उसका खानदान हमसे नीचा है। मेरे सब लोग इसे एक चुनौती मानकर बैठे हैं। कहते हैं कि हमारी इज्ज़त का सवाल है। चाहे कुछ भी करना पड़े।"

"वह लड़का क्या कहता है?"

"वह कुछ भी नहीं कहता। उसके माँ बाप कहते हैं कि उसे सुख नहीं मिलेगा मुझसे। और रही प्रेम की बात! कहते हैं कि यह जवानी का प्यार चार दिन—सावन की बरखा ही समझो। वे उसे मुझसे शादी नहीं करने देंगे।"

"परंतु तुम दोनों को इन सबकी पर्वाह करने की क्या ज़रूरत है?"

"तुम भी अजीब हो! तुम्हें ऐसा नहीं बोलना चाहिये। वह लड़का बड़ा शांत है, समझदार है, उसमें धीरज है। और मैं इतना पढ़ चुकी हूँ उसका भी तो कुछ खयाल रखना होगा? नहीं तो सब पढ़ाई बेकार हो जायेगी। मेरी अकेली की खुशी के लिये क्या मैं सबको दुःख में डाल दूँ? हो सकता है कि आगे इस सुख से वह दुःख ही मेरे लिये भारी हो जायेगा। और वह क्या कहता है...?"

"क्या कहता है?"

"वह कहता है कि हम दोनों ऐसे ही प्यार करते रहेंगे। सिर्फ एक दूसरे से ही नहीं, सबसे! सबको राज़ी रखेंगे। हमारे अपने अगर सचमुच हमें चाहते होंगे तो एक न एक दिन वे हम दोनोंका प्यार पहिचानेंगे। हो सकता है इसमें कुछ देर लगेगी। लेकिन लगे तो क्या! वह ठीक ही कहता है। मैं भी जानती हूं—समझती हूँ! संयम और भलाई से बरत रही हूँ। लेकिन...!"

"लेकीन क्या?"

"लेकिन खुदको काबू में रख नहीं पा रही हूँ! सँभलूं तो कैसे? मन पर बड़ा बोझ पड़ता है। सह तो लेती हूँ लेकिन सहूँ तो कब तक? बेताब है सब! उम्मीद है कि मैं उससे पीछे नहीं रहूँगी। परंतु कभी डर हो जाता है कि हम दोनों कहीं दुनिया से पीछे न रह जायें। दम घुटने लगता है। मैं रुकने को राज़ी हूं। पर कितना रुकूं? इसीलिये तो तुम्हें लाई हूँ यह पूछने कि कहीं मेरी ग़लती तो नहीं हो रही है? क्या करूँ मैं और कैसे करूँ? मेरे और उसके यहाँ के सब लोग वैसे बहुत अच्छे हैं और यही मेरे लिये मुसीबत है। तुम उन सबसे पहिचान कर लो न?"

"अच्छा, कर लूंगा। और मुझको क्या करना होगा?"

"तुमको और करना ही क्या है? तुम तो जानते हो मुझे। मैंने कभी मेरे लिये तुम्हें तकलीफ दी है? फिर क्यों ऐसी बात करते हो? तुम्हारे करने की सिर्फ एक बात है...!"

"क्या?"

"ऐसे ही जब कभी मिलोगे और मैं कहूँगी कि चलो मेरे साथ; गाड़ी से उतर जाओ तो ऐसे ही उतर जाया करना। और ऐसे ही कभी मेरी अपनी बात कहने को रोक नहीं सकूँगी तब सब सुन लेना।...और कहीं अगर मैं पीछे रह गई तो हँसना मत। वचन दो कि हँसोगे नहीं।"

कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। संयम को धर्म माननेवाली मेरी उस निर्मल सखीने कुछ क्षण अपना मस्तक मेरे कंधे पर टेक लिया। मन उसका भारी हो गया था। समझबूझ उसके थी और नहीं भी। मेरा हाथ उसने अपने माथे पर ज़रा देर फेर लिया। केवल दो चार क्षण...और...!

"चलो, तुम्हारी गाड़ी का समय हो गया है। तुम्हें जाना जो है। आज मैं तुमसे बहुत कुछ कह गई। आज तक कभी किसीसे मैंने इतनी बातें नहीं कीं। चलो, तुम मुझको शहर तक छोड़ दो और स्टेशन चले जाओ। जब कभी समय आयेगा और मैं कहूंगी तो ऐसे ही आओगे न?"

मैंने हाँ कहा और चलते समय उसके गोरे, सुंदर दोनों हाथ मेरे हाथों में समेटकर ज़रा देर के लिये मैंने भी अपने माथे को लगा लिये।

गाड़ी का वक़्त सचमुच हो गया था। ● ●







कथा

बूढ़े जवानी का सारा मजा तो लूट ही चुके होते हैं लेकिन न जाने इनकी अक्ल क्यों सठिया जाती है और जवानों की राह में रोड़ा बन बैठते हैं...

आबाराव पाटील अपने कमरे में बैठे पान खा रहे थे कि इतने में उनका छोटा लड़का उनकी ओर दौड़ा आया और उनकी गोद में बैठकर कहने लगा,

"पिताजी, जीजाजी आये हैं!"

"कौन से जीजाजी?" आबाराव ने आश्चर्य से पूछा।

"हमारे वे पळसप के जीजाजी!"

"याने पारु का पति न?"

"जी!"

"कब आये?"

"अभी-अभी तो आये हैं!"

"कहाँ हैं?"

"पेड़ के नीचे—भैया से बातें कर रहे हैं!"

आबाराव के चेहरे पर सफेदी छा गई। वे तुरन्त रसोईघर में गये और अपनी पत्नी से कहने लगे,

"देख लो अपने दामाद की करतूत!"

मनसाबाई कुछ समझ नहीं सकीं, उन्होंने पूछा,

"क्या बात है जी?"

"लाट साहब आये हैं!"

"कौन से लाट साहब जी?"

"अरी, पारु का घरवाला—आया है।"

"आठ दिन पहले ही तो आये थे न?"

रं. रं. बोराडे

"आठ ही दिन में बेचैन हो उठा होगा। आया है भागता हुआ यहाँ। लोगों की औरतें चार-चार महिने मैके रहती हैं; मगर वे भूल से भी मैके का मुंह नहीं देखते। और एक यह है जो एक महीना भी बगैर बीवी के नहीं रह सकता। एक महीने में तीन बार आया है सभी लोगों में हमारी बदनामी हो रही है, कहते हैं हमारा दामाद स्त्रीलंपट है—"

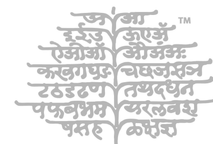
"तो फिर पहुँचा दीजिये पारवती को ससुराल!"

"कैसे पहुँचा दूं? अभी तो महीना भी नहीं हुआ मैके आकर!"

"फिर क्या करने का विचार है?"

आबाराव ने थोड़ी देर सोचकर चुटकी बजाई और कहने लगे, "कल तुम्हें बताया था न

अनुक्रमणिका





वैसा ही करूंगा। इस ओर का रास्ता ही भूल जाएँगे महाशय!"

इतने समय तक पारवती अपने पैर की उंगलियों के नाखूनों को साफ करती हुई खड़ी थी। पिताजी की बातें ध्यान से सुन रही थी। सहमते हुए बोली, "ऐसी कोई बात न कीजियेगा पिताजी...वे मिज़ाज के बड़े तेज़ हैं।"

"क्यों भला? आपस में समझौता कर चुके हो दोनों?" अपनी बेटी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखकर आबाराव ने कहा।

इस पर पारवती इतनी शर्माई कि वह वहाँ एक क्षण भी न रुक सकी। "कैसी बातें करते हैं पिताजी," कहते हुए वह भाग खड़ी हुई।

कुछ देर बाद आबाराव के दामाद अन्दर आये, आबाराव ने हँसकर उनका स्वागत किया, पान खिलाया और बड़े आराम से उनसे बातचीत करने लगे। उस दिन भोजन भी विशेष ढंग से बनवाया गया। शहाजी मन ही मन खुशी से भर गये। भरपेट भोजन किया उन्होंने। फिर आबाराव ने चारमीनार के दो पैकेट शहाजी के हाथों में धर दिये, एक दियासलाई दी और उन्हें सोने का कमरा दिखा आये।

मुंह से सीटी बजाते शहाजी कमरे में आये, साफा उतारकर खूंटी पर लटका दिया, सिगरेट जलाई, एक कश खींचा और उसी धुन में एक रंगीली 'लावणी' गुनगुनाने लगे। पलंग पर लेटकर मुंह से धुआँ निकलने लगे।

वे पलंग पर लेट गये किंतु उनकी बेचैनी बढ़ने लगी, कमरे के दरवाज़े तक जाकर उन्होंने रसोईघर में झांका। रसोईघर में रोशनी थी, अन्दर औरतें कुछ काम भी कर रही थीं। शहाजी की बेचैनी अब और भी बढ़ने लगी। जल रही सिगरेट उन्होंने अपने पैरों से बुझा दी और पलंग पर लेट गये, दूसरी सिगरेट जलाई और जल्दी-जल्दी कश लेने लगे।

शहाजी फिर उठ बैठे, दरवाज़े तक आये, रसोईघर की रोशनी अभी भी कम नहीं हुई थी। आहटें अवश्य कुछ कम होने लगी थीं। वे कमरे में लौट आये और चहलकदमी करने लगे।

बीच ही में चहलकदमी रोक वे दरवाज़े तक आये और रसोईघर की आहट लेने लगे। अब तो वहाँ न तो रोशनी ही थी और ना ही कोई आवाज़ सुनाई देती थी। शहाजी मन ही मन खुश हुए और दरवाज़े में ही खड़े रहे। आधा-घन्टा बीत गया–एक-घन्टा होने आया, पैर दर्द करने लगे तो भी पारवती का पता नहीं था। वे चिढ़ से गये: न जाने कहाँ छिप गई थी।

यह औरत है या तमाशा? काम खत्म होने पर भी देवीजी का अब तक कोई पता नहीं! पता नहीं क्या कर रही है? इतना भी नहीं समझती कि कोई उनकी राह में पलकें बिछाये इन्तजार की घड़ियों में घुला जा रहा है।

हताश हो उन्होंने आखिरी सिगरेट पैरों से कुचल दी और एक बार फिर से पलंग पर लेट गये।

थोड़ी ही देर बाद उन्हें किसी की आहट सुनाई दी। वे तुरन्त उठ बैठे, खुशी-खुशी उन्होंने दरवाज़े पर नज़र डाली, दरवाज़े में आबाराव खड़े थे, उनके चेहरे पर मन्द-मन्द मुस्कान खेल रही थी। उन्होंने पूछा,

"क्यों जी! नींद नहीं आ रही है क्या?"

शहाजी के माथे पर पसीना चू आया। पत्नी की राह देखते-देखते वे तंग आ ही चुके थे और अब यह बूढ़ा टपक पड़ा! कम से कम दस-पंद्रह मिनट तो माथापच्ची करनी ही पड़ेगी; किसी तरह टलनेवाला नहीं, यह बूढ़ा! असल बात तो यह है कि बूढ़े आदमी इस राह से गुजर ही चुके होते हैं; जवानी का सारा मज़ा तो लूट ही चुके होते हैं लेकिन न जाने बुढ़ापे में इनकी अक्ल क्यों सठिया जाती है और जवानों की राह में रोड़ा बन बैठते हैं। जवानों की बेचैनी दुगुनी कर देते हैं। फिर भी हम उन्हें कुछ नहीं कह सकते; उनके सफेद बालों का आदर भी तो करना पड़ता है। शहाजी यह सब सोच चेहरे पर बनावटी हँसी लाते हुए बोला–

"आईये!"

आबाराव कमरे में आये और कंबल खिसकाकर उस पर बड़े आराम से बैठ गये। अपनी जेब से सुपारी निकालकर आबाजी ने शहाजी की हथेली पर रखते हुए पूछा–





" हां तो सुनाओ, क्या हाल हैं ? "

" किसका ? "

" खेती-बारी का । "

" हाँ ! ठीक समझिये । "

" गेहूं की फसल कैसी रही ? "

" ठीक ही रही । "

" बड़ी खुशी की बात है—और उसका...

...क्या हुआ जी ? "

" किस चीज़ का ? "

" तुम्हारे ' कोसा ' बैल का क्या हुआ ? बेच दिया या नहीं ? "

" नहीं । "

" क्यों ? "

इस विषय पर बहुत सी बातें की जा सकती थीं। पिताजी ने बैल बेचने का विचार कैसे किया, शहाजी ने उनका किस प्रकार विरोध किया, दोनों का झगड़ा कैसे हुआ; अपनी ही बात उन्हें कैसे माननी पड़ी, ये सारी बातें विस्तारपूर्वक बता सकते थे मगर चाहते थे कि यह बुड्ढा जल्दी से जल्दी यहाँ से चला जाए तो अच्छा ! इस समय उन्हें अपनी प्रिय पत्नी का इन्तज़ार था। सो उन्होंने बात और न बढ़ाते हुए कहा,—

" यों ही नहीं बेचा । "

आबाराव आगे बढ़े समझाने के स्वर में बोले—

" बैल बेच देते तो अच्छा होता । ऐसा ख़तरनाक जानवर किस काम का? दिखने में उमदा है, मैं मानता हूँ । काम में भी बहादुर है। कल अगर किसीके पेट में अपने सींग घुसा दे तो —आफ़त आ जायगी—समझे ? "

आबाजी बोल रहे थे, शहाजी का मन उथल-पुथल हो रहा था; बूढ़े की बकवास न जाने कब खत्म होगी ! शहाजी सोचते ही रहे। आबाजी भी कुछ कम नहीं थे, दामाद के मन की अवस्था वे पूरी तरह जानते थे-उन्हें भी मज़ा आ रहा था।

" और वह उसका क्या हुआ जी ? " आबाराव फिर से पूछ बैठे ।

अब शहाजी तंग आ गये। कड़ी आवाज में उन्होंने कहा—

" आपकी कृपा से सब खैरियत है, चिंता न कीजिये ! "

आबाराव हँस पड़े उन्होंने कहा—

" गुस्सा आ गया है शायद ? यह बात ठीक नहीं है । कोई भला आदमी आपसे बातें करना चाहता है तो कुछ बातें करनी चाहिये उससे । इतनी दूर से आप आते हैं तो बातचीत करने आते हैं, या दूसरा कोई कारण होता है ? "

शहाजी शर्मा गये—

" नहीं-नहीं, आपके साथ बातचीत करने को ही आता हूं यहा तक ? "

" फिर ? "

" माफ कीजिये मुझे मुझसे भूल हुई।"

आबाराव हँस पडे उन्होंने पूछा—

"अच्छा, अब बताओ उसका क्या हुआ?"

"काहे का?"

"कुँआ खोदने का!"

"कॉन्ट्रैक्ट दे दिया है!"

आवाराव पूछते ही रहे, और शहाजी उनके प्रश्नों का जवाब देते रहे। रात बढ़ने लगी। सारे गाँव की चहल-पहल थम गई थी-शहाजी घबरा गये। बूढ़े के उठने के कोई चिन्ह उन्हें दिखाई नहीं देते थे, उसे भगाना तो जरूरी ही था। कुछ देर सोचने के पश्चात् उन्होंने अपने कन्धे को हाथ से दबाते कहा–

"बदन बहुत दर्द कर रहा है।"

"यकायक क्या हो गया?"

"क्या पता!"

"हमेशा का है क्या यह दर्द?"

"हाँ, हमेशा कन्धा दुखा करता है!"

"अब क्या किया जाये!"

"कुछ नहीं। वह दवा देती है–फिर ठीक हो जाता है!"

"यह बात है! भला उपाय ढूँढ़ निकाला तुमने!" आवाराव ने हँसकर कहा,

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, सब इन्तजाम हो जाएगा!"

आवाराव कमरे से बाहर आये और उन्होंने अपने बड़े पुत्र को आवाज दी "येसो!"

रसोइघर से आवाज आई—

"जी, पिताजी।"

"यहाँ जरा आओ तो!"

"मैं कसरत करने जा रहा हूँ!"

"कसरत फिर होगी–पहिले यहाँ आओ?"

शहाजी के ध्यान में ये बातें न आईं। आवाराव का चेहरा वे ताकते ही रहे! येसो को लेकर आवाराव कमरे में आये और उन्होंने कहा,

"जल्दी करो—लेट जाओ"

"क्यों?" शहाजी ने पूछा,

अपने ससुर की कार्रवाई अब कहीं शहाजी के ध्यान में आई। अपने तगड़े साले को देखकर वे काँपने लगे। उन्होंने कहा—

"जरा सा दुख रहा है, घबराने की कोई बात नहीं है!"

"तकल्लुफ न करो, अरे भई बीमारी से शर्माना क्यों!—लेट जाओ, लेट जाओ जल्दी!"

"आपकी कसम मुझे कुछ भी नहीं हो रहा–"

"भई, शर्मा क्यों रहे हो—"

शहाजी हार गये, पलंग पर लेटकर उन्होंने कहा,

"अच्छा दवा दो पीठ"

आवाराव ने लड़के को इशारा किया। येसाजी तैयार हो गया। शहाजी के पैर छूकर उन्होंने शहाजी की पीठ अपने पैरों से दबाना शुरू किया। शहाजी चिल्लाये—

"मर गया!!"

आवाराव मुस्कुराने लगे, "और ज़ोरों से रगड़ो—" अपने लड़के को आँखों से ही इशारा देते रहे। येसाजी मानो मस्त होकर शहाजी की पीठ की मरम्मत करने लगे। शहाजी की हड्डियाँ नरम हो गईं; वे चिल्लाये—

"अब बस करो-मैं मर गया।"

आवाराव हँस पडे और कहने लगे—

"और दवा लो जी! तकल्लुफ की क्या बात है? बेटे, जरा जोरों से रगड़ो—"

शहाजी की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—

"बस! अब दर्द नहीं रहा—आपकी कसम खाता हूँ अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ।"

"इतने में ही हार गये, येसबा, और ज़ोर लगाओ।"

आवाराव के इशारे पर फिर मरम्मत शुरू हुई। येसबा अब शहाजी की पीठ पर नाचने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने शहाजी से पूछा–

"और चाहते हो?"

"बस! काफी हो चुका। अब कभी नहीं दुखेगी पीठ।" येसबा रहम खा गये। पीठ से नीचे उतरते उन्होंने कहा,

"अब कैसी है तबीयत?"

शहाजी उठ बैठे और सहमे-सहमे कहने लगे-

"ठीक है जी।" आवारावने हँस कर कहा,

"अच्छा, आप सो जाइये! अब हमें भी नींद आ रही है!" बाप-बेटे चले गये। शहाजी पूरे थक गये थे।

थोड़ी देर तक वे पलंग पर लेटे रहे। इतने में दर्वाजे में और किसीकी आहट सुनाई दी। चुड़ियों की आवाज़ भी सुनाई दी सारा दुःख भूलकर शहाजी हर्षित होकर उठ बैठे; और बड़ी आशा के साथ अपनी नज़र दर्वाजे पर लगाई। उनका मन धक्का-सा खा गया। दर्वाजे में पारबती की माँ खड़ी थी! ससुरजी चले गये अब सासजी आ टपकीं। शहाजी ने मन ही मन उनको लाख बार कोसा। अनसाबाई कमरे में घुसीं। दीवाल के आधार से जमीन पर बैठ गईं। सूँघनी अंगुलियों में लेकर नाक में डालते हुए पूछने लगीं—

"कहिये? हमारी समधिनजी के क्या हाल हैं?"

शहाजी पहले से चिढ़े हुए थे। वे बोले,

"आपकी समधिन का आपके लिये संदेशा है कि रात को जल्दी सोया कीजिये।"

शहाजी के ध्यान में न आये ऐसी हँसी अनसाबाई ने हँसकर कहा—

"बड़ी होशियार हैं हमारी समधिन! नींद तो रोजाना आती है! मेहमान तो कभी-कभी आ जाया करते हैं! उनसे बातचीत तो करनी ही पड़ती है।"

शहाजी ने मत्थे पर हाथ रख लिया। यह बुढ़िया भी बुड्ढे से कुछ कम नहीं है! यह भी सीधी जानेवाली औरत नहीं है कुछ तरकीब लड़ानी पड़ेगी! अपना सिर दोनों हाथों से दबाकर शहाजी ने कहा—

"बहुत जोरों से सिर दुख रहा है जरा दबाइये..."

अनसाबाई चकित होकर कहने लगीं,

"पारबती को ही भेज देती हूँ—"

शहाजी मुस्कराये! यह तरकीब अच्छी रही! बुढ़िया चली गयी! दर्वाजे में चूड़ियों की आवाज आयी। शहाजी उठ बैठे। बिस्तरा ठीक

किया, तकिये सिरहाने रख दिये, पारवती अन्दर आयी, दर्वाजा बन्द कर लिया और लचकते अपने पति के पास पहुँची। उसका हाथ अपने हाथों से दबाकर शहाजी ने पूछा—

"इतनी देर क्यों भला की तुमने ?"

पारवती कुछ कहनेवाली ही थी कि दर्वाजे पर खटखट सुनाई दी और फिर आवाज आई—

"पारवती दर्वाजा खोलो"

पारवती घबराहट से बोली

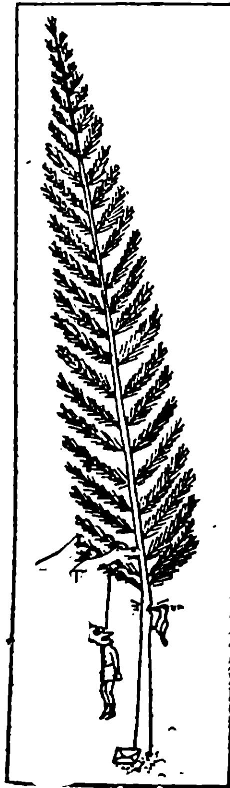
"शायद पिताजी हैं!"

शहाजी गुस्से में आ गये। उनकी आँखें सुर्ख हो गई, उन्होंने कड़ी आवाज में कहा—

"जाओ दर्वाजा खोलो"

पति का चेहरा देखकर पारवती काँपने लगी, हल्की आवाज में उसने कहा—

"क्या जरुरत है? मैं नहीं खोलूंगी दर्वाजा, जाने दो उनको वापिस!"



"क्यों नहीं खोलती हो दर्वाजा? हम कोई चोरी तो कर नहीं रहे?"

पारवती डर गई, ससुर-दामाद में अब ज़रूर कोई झगड़ा होगा! पति की आज्ञा तो मानना ही है, भारी पैरों से वह दर्वाजे तक आ गई और उसने दर्वाजा खोला—

आबाराव कमरे में घुसे और उन्होंने दामाद से पूछा—

"सिर-दर्द ठीक हो गया?"

"अभी नहीं!"

"बड़ा नटखट है आपका सिर! कोई बात नहीं—"

जेब से एक दवा की शीशी निकालकर अपनी लड़की से कहने लगे—

"यह दवा लगा दे सिर पर।"

कुछ गुस्से में ही बाप के हाथ से शीशी पारवती ने अपने हाथ में ली और पति के सिर से दवा मलने लगी। आबाराव ने पानदान खोला और आराम से बैठकर पान खाना शुरू किया।

शहाजी लेटे हुए थे किंतु उनका मन तड़प रहा था। ससुरजी की कार्रवाई अब पूरी तरह उनके ध्यान में आ गई थी। वे भी हार मानने को तैयार नहीं थे। बदला लेने की उन्होंने ठान ली। उठकर उन्होंने आबाराव से पूछा—

"मामासाब, आप उस दामाद की कहानी जानते हैं?"

"कौन से दामाद की?"

"एक देहाती दामाद की।"

"नहीं जी! मैंने तो सुनी नहीं, सुना भी दीजिये?"

आबाराव को कहानियाँ सुनने का बहुत शौक था। वे अगर किसीकी कहानी सुनना चाहें तो अपना काम छोड़कर कहानी सुनने लगते थे। कहानी सुनने में वे सारी दुनिया भूल जाते थे।

शहाजी ने कहानी शुरू की—

"एक थे दामादसाहब। दिखने में ठिंगने से लेकिन बड़े अक्लमंद। एक समय उनकी बहू मायके गई। उससे मिलने के लिये दामादसाहब अपने ससुराल गये। बहू को आनंद हुआ, लेकिन उसका बाप था बेतुका। बाप ने इरादा किया कि बेटी और दामाद किसी भी तरह एकान्त पा नहीं सकेंगे। सारी रात बूढ़ा जागता रहा। बूढ़ा आकर उन दोनों के बीच बैठ गया..." शहाजी कह रहे थे और बड़ी एकाग्रता से आबाराव सुन रहे थे। कहानी में रँग भरा जा रहा था। आबाराव को मजा आ रहा था।

"दामाद ने सोचा ससुरजी अब जाएंगे, थोड़ी देर में चले जाएंगे। ससुरजी लई की तरह जमकर बैठे। उठने के इरादे ही नहीं थे। दामाद भी ऊब गये। फिर उन्होंने मन ही मन बात पक्की कर ली और..."

"और? और क्या?"

शहाजी हँस पड़े और पारु के पास गये...

"वे अपनी बीवी के पास गये, एक हाथ से उसको उठाकर पलंग पर बिठा दिया।"

"और फिर क्या हुआ?"

"फिर? फिर वे आगे बढ़े और..."

शहाजी पलंग पर चढ़ने ही वाले थे, आबाराव चौंक पड़े। अब उनके ध्यान में सारी कहानी आई। उनके मुँह से चीख निकली और कमरे के बाहर दौड़ पड़े। उनकी धोती में उनका पैर अटक गया और वे थोड़ी दूर पर औंधे मुंह गिर पड़े।

शहाजी जोरों से हँसने लगे। पलंग पर रखा हुआ पैर नीचे लाकर वे जमीन पर लोटने लगे। हँस-हँसकर उनकी आँखों में पानी आ गया, पेट दुखने लगा। हँसी रुक नहीं रही थी। आबाराव फिर कमरे मे आ गये शहाजी की हँसी बंद हो गई। शहाजी आबाराव का मुंह ताकते ही रह गये।

आबाराव धीरे से अंदर आये, खिड़की से पान थूक दिया और शहाजी से पूछने लगे—

"और क्या वह दामाद पागल की तरह हँसता ही रहा?" ● ●

॥: निर्मला देशपाण्डे

(दिल और धरती : पृष्ठ ४० से आगे)

शामिल हो जाता था। और उसकी लड़कों की सी मीठी और सुरीली आवाज़ ने उसे किसानों में बहुत प्रिय बना दिया था!

एक दोपहर जब कई दिनों की सख्त मेहनत के बाद सारी फ़सल काटकर जमाकर ली गई। और उसके दो हिस्से कर दिए गए। एक हिस्सा किसानों का था, दूसरा ठाकुरों का। और जब किसानों ने फ़सल का अपना हिस्सा उठाने के लिए छकड़े सामने ला के खड़े कर दिए तो दलीप ने देखा कि मुर्ग़बाज़ चाचा और शायर चाचा और शतरंज खेलनेवाले चाचा और पतंग उड़ानेवाले पृथ्वीराज और चिड़ियाँ पालनेवाले ठाकुर और शराबी चित्रकार सब चले आ रहे हैं। और उनके साथ पुलिस के कई सिपाही हैं!

उन्होंने खेतों पर आते ही किसानों से कहा, "तुम ये हिस्सा नहीं ले जा सकते! इस पर हमारा हक़ है!" ये बड़े ठाकुर थे। जो दिन भर छप्पर के नीचे शतरंज खेलते रहते थे।

किसान व्याकुल हो गए। दलीप ने आगे बढ़कर बड़े ठाकुर से बात करनी चाही, तो रास्ते में शायर चाचा आ गए। और कड़क कर बोले, "ज़मीन हमारी, खाद हमारी, हल हमारे, बीज हमारे फिर इन किसानों को इस फ़सल में से आधा हिस्सा कैसे मिलेगा। हम तो सिर्फ़ एक चौथाई देंगे।"

"मगर मैंने वादाकर लिया था, तुम्हें सब मालूम है।" दलीप परेशान होकर अपने रिश्तेदारों को समझाने लगा।

"हमें कुछ मालूम नहीं।" मुर्ग़बाज़ चाचा उसे झिड़ककर बोले, "तुमने किससे पूछकर वादा किया था। और तुमको किसने इस मामले में पंच और चौधरी बनाया था। बड़े ठाकुरजी की मौजूदगी में तुम इन कोलियों—पासियों और किसानों से बात करनेवाले कौन होते हो?"

पृथ्वीराज बोला, "खुद ही जो जी में आए कर लेते हो, हमसे पूछते तक नहीं!"

"आपको पतंग उड़ाने से फ़ुर्सत मिले तो"...दलीप कहने लगा। मगर चिड़ीमार चाचा ने उसे बीच में रोक दिया—

"खबरदार! हम सबकी तरफ़ से तुम फ़ैसला करनेवाले कौन होते हो? ये ज़मीन तुम्हारे अकेले की नहीं हम सबकी है! बस सिर्फ़ एक चौथाई मिलेगा। इस से ज्यादा किसानों को कुछ नहीं मिलेगा।"

दलीप ने घबराकर कहा, "मगर चाचाजी...?"

तुरंत मुर्ग़बाज़ चाचा गरजे, "चुप रहो, गुस्ताख़! अगर किसीने हमारी फ़सल की तरफ़ हाथ भी बढ़ाया, तो उसको वहीं ढेर कर दूँगा!"

किसानों में बेचैनी बढ़ने लगी। दो—तीन मनचलों ने लाठियाँ संभाल लीं। दलीप परेशान होकर कभी ठाकुरों को समझाता, कभी किसानों को ठंडा करता। मगर मामला सुलझने की बजाय उलझता गया। ठाकुर पुलिस की शह पर गरज रहे थे। और किसानों को अपनी भुजाओं की ताक़त पर गर्व था। सदियों के सताए हुए किसान, स्वतंत्रता की सांस पाकर अपनी लहू और पसीने की मेहनत की कमाई को इस धोखेबाज़ी में कैसे खो सकते थे। वो पुलिस के होते हुए भी मरने—मारने पर तुल गए। देखते ही देखते उन्होंने लाठियाँ संभाल लीं। मारो—मारो की आवाजें चारों तरफ़ से बढ़ीं। और सबसे पहले उन्होंने दलीप ही पर हमला किया क्योंकि उनका

नई इलापनीति



एक बार एक मराडुक-परिवार ने बाग़ में विहार करते समय एक साँड को देखा। उसकी ओर बड़ी उत्सुकता से देखनेवाले मराडूक उसके वैभवपूर्ण विस्तार से ईर्ष्या करने लगे। उस परिवार में एक बूढ़ा परंतु गर्विला मराडूक उनका नेता था। अन्य मराडूकों का उस सांड के विस्तार के प्रति आकर्षण उस बूढ़े मराडूक से सहा नहीं गया। उसने अपना शरीर का विस्तार करना आरंभ किया और उन बाल-मराडूकों को अपने को देखने के लिये आवाहन किया। जब उन मराडूकों ने यह मत प्रदर्शित किया—कि इतने पर भी तुलना में वह साँड निश्चित बड़ा है तब उस वृद्ध मंडूक ने, अपने शरीर का विस्तार और बढ़ाने का प्रयत्न किया। अंत में ईर्ष्या में जलनेवाली उसकी देह फूलकर एकाएक फुग्गेकी-तरह फूट गई और उसका घमंड चूर-चूर हो गया।

अनुक्रमणिका

विचार था, कि दलीप ने दग़ाबाज़ी से काम लिया है। उसने किसानों को आधी फ़सल देने का वादा कर के उनसे मुफ्त काम करा लिया है। और अब कटाई के मौके पर भीतर ही भीतर अपने भाईबंदों से मिलकर उनका हिस्सा हड़प करना चाहता है। उनके गम और गुस्से की कोई हद ही न थी। इसलिए वो सब मिलकर सबसे पहले दलीप की तरफ दौड़े। और पहले इसके कि हैरान और परेशान दलीप अपना बचाव करे उसे लाठियों से मार-मार कर जमीन पर बिछा दिया गया।

मोहन सिंह तीर की तरह भीड़ को चीरता हुआ-ग़म और गुस्से से चीखता हुआ आगे बढ़ा और दलीप तक पहुंचने की कोशिश करने लगा। इसी ठेल-ढकेल में उसकी दाढ़ी उतर गई। कपड़े फट गए। मगर किसानों की टांगों के अन्दर घुसकर वो किसी न किसी तरह दलीप तक पहुंच गया। और उसे बचाने के लिए तुरंत हाथ फैलाकर अपने आपको दलीप पर गिरा दिया। कुछ ही पलों में पूरी घटना समाप्त हो गई। गिरते-गिरते उसके सर पर एक लाठी पड़ गई। और उसकी पगड़ी खुल गई। अगर पगड़ी न होती तो सर खुल जाता। और संभव था दलीप को बचाने की सज़ा में किसान उसका भी सर कुचल देते। मगर उस समय एक अजीब घटना हुई।

मोहन सिंह की दाढ़ी उतरने, पगड़ी खुलने, और कुरते के फटने से जो विस्मयपूर्ण दृश्य सामने आया, उसे देखकर किसानों के हाथ रुक गए और उनकी लाठियाँ हवा में ही लहराती रह गई। और पुलिस के सिपाही भी किसानों पर चार्ज करने से रुक गए, सब लोग चकित थे। और खून से लथ-पथ दलीप सिंह के ऊपर लेटी हुई एक लड़की को हैरत से देख रहे थे!

कुछ क्षणों की मौनता के बाद एक किसान के मुंह से दबी चीख निकल गई। अरे—ये तो एक लड़की है! हमारा मोहन सिंह! इतना कहकर उस किसान ने हैरत से अपने मुंह पर खुद ही हाथ रख लिया।

"हां! मेरा नाम सन्ध्या है।" मोहन सिंह ने उठकर कहा, "मैं मिल-मालिक की लड़की हूं। जिसके वहाँ तुम सब फसल बेचने जाते हो। वो रुकी।



सब किसान उसे हैरत से देख रहे थे! और दिल ही दिल में शुक्र अदा कर रहे थे, कि खैरियत गुज़री, उसे कहीं चोट नहीं आई। वर्ना जाने क्या होता। मिल-मालिक तो बड़ों-बड़ों तक पहुंच सकता है!

सन्ध्या अपने कपड़े झाड़ते हुए, अपने फटे कुरते को अपने दोनों हाथों से समेटते हुए बोली, "मैं तुमसे वादा करती हूँ, तुम हिस्सा लिए बग़ैर यहाँ से चुप-चाप चले जाओ। अगर तुमको ठाकुर हिस्सा नहीं देते हैं, न दें, मैं खुद तुमको तुम्हारे हिस्से दूंगी!

किसानों ने एक पल के लिए सन्ध्या के विश्वासपूर्ण और स्नेह-पूर्ण चेहरे की ओर देखा, और उन्हें विश्वास आ गया। धीरे-धीरे उनकी लाठियाँ ज़मीन पर उतर आईं। और वे सर झुकाकर बिखरने लगे। और अब वो दोनों फैक्टरी के अस्पताल जा रहे थे। सन्ध्या गाड़ी चला रही थी और दलीप पट्टियाँ बांधे उसके निकट बैठा था। खैरियत गुज़री, उसे ज्यादा चोटें नहीं आई थीं। फिर भी सर की चोट के कारण चिन्ता थी। उसे कई दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा। बार-बार वे दोनों एक-दूसरे को मीठी निगाहों से देख लेते। फिर एकदम चौंककर नज़रें फेर लेते। और सामने देखने लगते।

एक लम्बी मौनता के बाद, सन्ध्या ने मुस्कराकर कहा, "एक बात तुम मानोगे। तुमने मुझे पहचाना नहीं! कितना परफेक्ट मेकप था मेरा!"

"बिल्कुल नहीं" दलीप ने तुरंत कहा, "मैंने तुम्हें पहले ही दिन पहचान लिया था।"

"झूठ!" सन्ध्या के मुंह से बेइख्तियार निकला।

"सच कहता हूँ!" दलीप आनंदित होते हुए बोला, "पहले दिन ही पहचान लिया था। दूसरी निगाह ही में पहचान लिया था।"

"फिर मुझे बताया क्यों नहीं?"

"जब तुमने मुझे नहीं बताया, तो मैं तुम्हें क्यों बताता?"

"बताया तो मैंने अब भी कुछ नहीं।" सन्ध्या नज़रें झुकाकर कमज़ोर आवाज़ में बोली।

"अब बताने की ज़रूरत भी क्या है?" दलीप ने प्यार-भरी नज़रों से सन्ध्या की तरफ़ देखते हुए कहा और उसकी कमर में हाथ डाल दिया और उसके जिस्म से बिल्कुल क़रीब लगकर बड़े शरीर लहजे में पूछने लगा, "ये मोटर-रोड कहाँ तक जाती है?"

"जहां तक दिल और धरती जाते हैं!" सन्ध्या ने मुसर्रत और हर्ष-भरे लहजे में ऐसी मीठी आवाज़ में कहा, जैसे चारों तरफ़ हरे-भरे गन्नों की फ़सल का मीठा रस उसके गले में शहद के कतरों की तरह टपक रहा हो!

• •









अनुक्रमणिका



एक ऊंट टेलिफोन

वसन्त सबनीस

नई दुनिया का निर्माण करने का प्रसंग यदि विश्वामित्र की तरह मुझ पर आ जाये तो बाकी सृष्टि का भले ही कुछ हो जाय या जान चली जाय तो भी दो चीजों का मैं कभी निर्माण नहीं करूँगा। एक जूतों को लगाए जानेवाले कील और दूसरा टेलिफोन!! कीलों ने मेरा खून बहाया है और टेलिफोन ने मेरा खून सुखाया है। इसीलिये इन दोनों चीजों का नाम सुनते ही मेरा खून जम जाता है। इन कीलों ने मेरे पैरों को इस तरह छलनी बना डाला है कि वहाँ की आग फौरन ही दिमाग में पहुँचती है। सज्जन चमारों ने प्यार से लगाये हुए ये कील भी खून चूसनेवाले साबित हुए हैं। जूते फट गए उनका नामो-निशान भी नहीं रहा, पर अब भी कीलों की टीस प्रेम-भंग की तरह सता रही है। गनीमत है कि जूते पैरों तक ही सीमित हैं! वर्ना ईसा मसीह बनने में मुझे देर न लगती। चुभनेवाले कीलों को पत्थर से ठोंक सकते हैं पर टेलिफोन के बारे में वह भी नामुमकीन है।

टेलिफोन उपयुक्तता का एक अच्छा साधन है। पर ऐसा क्यों समझते हैं यह अभी मेरी समझ में नहीं आया है। मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा, "मैं ऊँट पाल सकता हूँ पर टेलिफोन नहीं! टेलिफोन समाजवादी है या नहीं इसका निर्णय तो मैं नहीं कर सकूँगा। पर वह सतानेवाला जरूर है और इसके बारे में सब अक्लमंदों की एक ही राय होगी इसमें शक नहीं। न बजनेवाला और न सतानेवाला टेलिफोन अब तक मैंने कहीं नहीं देखा।

कुछ मूर्ख आदमी यह समझते हैं कि टेलिफोन यह एक अमीरी की, और बड़प्पन की निशानी है। आधुनिक सुख-सुविधाओं से युक्त घर में टेलिफोन के बिना पूर्णत्व नहीं आता। ऐसा जो समझते हैं उन बेचारों पर तो मुझे बड़ा तरस आता है। और उस वक्त मैं यह महसूस करता हूँ कि दुनिया में ज्यादातर अज्ञान ही भरा पड़ा है। क्योंकि मैं भी एक बार टेलिफोन का पक्षपाती था। पर अब तो मैंने अपने घर में टेलिफोन की एक जरा सी तार भी नहीं रहने दी।

सच पूछा जाय तो मुझे इस टेलिफोन की कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। पर फोन घर पर होने से मेरी शान बढ़ेगी, इस प्रकार की व्यर्थ ही मैंने धारणा बना ली। और जब शान और इज्जत का सवाल पैदा होता है तो आदमी जिद्दी बनता है। मैंने हर तरह की अच्छी-बुरी कोशिश करके और जिसे अंग्रेजी में वायर पुलिंग कहते हैं, करके टेलिफोन तारों का घर में प्रवेश कराया। मुझसे ज्यादा मेरी श्रीमतीजी का यह खयाल था कि अपने घर में टेलिफोन हो। वजह बिलकुल साफ थी। उसके कारण मेरी श्रीमतीजी की

अनुक्रमणिका

साख महिला-मंडल में बढ़नेवाली थी। अध्यक्ष-पद तो उसे मिलने ही वाला था। सिर्फ़ टेलिफोन के आने की देर थी। बस! टेलिफोन का डिब्बा दरवाजे में दिखाई दिया कि उस पर से टेलिफोन के तार और श्रीमतीजी का अध्यक्ष पद दोनों एक साथ मेरे घर में दाखिल होने वाले थे। श्रीमती प्रधान के पक्ष की चार बहनें सच पूछा जाय तो हमारी श्रीमतीजी के पक्ष की ही थीं। पर सिर्फ श्रीमती प्रधान के यहाँ फोन करने की सुविधा थी, इसीलिये वे उन्हें चिपकी रहती थीं। उन्हें हमारे घर के फोन की खबर मिलते ही वे हमारी श्रीमतीजी के पक्ष से फौरन शहद की मक्खियों की तरह चिपकनेवाली थीं। श्रीमतीजी की साख (सिर्फ मंडल में) बढ़नेवाली थी। फिर भी जब उसने मुझसे कहा कि "मुझे सिर्फ दो गहने चाहिये।" तो मैं घबरा उठा और चिंतित होकर मैंने पूछा, "दो गहने? और वे भी इन दिनों?"

"जी! उसमें से एक मिल ही गया है। सिर्फ दूसरा लेना है।"

मैं कुछ समझ नहीं सका कि मामला क्या है? मैं तो सिर्फ मंदिर के गोमुख की तरह मुंह खोले देखता ही रहा।

"इस प्रकार आप भौंचक्के क्यों हैं? मैंने सिर्फ एक गहने की माँग की और आप......"

सुनते ही मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। सीना तन गया।

चेहरे पर शरद्-पौर्णिमा की चांदनी झलकने लगी। दाढ़ी में से अभिमान नज़र आने लगा। ये सब सुखद मालूम होने लगा जैसे हजामत बनाने के बाद नाई तेल लगाकर सर को थपथपाता है और गरदन की मालिश करता है। फिर भी दूसरे गहने का डर था ही। मेरी श्रीमतीजी के चेहरे पर कुछ इस तरह के भाव थे कि मैं तो देखते ही पिघल गया।

"और दूसरा?" मैंने बेहद उत्सुकता से पूछा।

"टेलिफोन।"

"टेलिफोन? गहना?"

"जैसे आप वैसे ही टेलिफोन"

मुझे ऐसा महसूस होने लगा कि कोई मुझ पर टेलिफोन का काला रंग उड़ेल रहा है।— और मेरी आकृति छोटी होते-होते टेलिफोन में समा रही है। मेरी इस असमंजस हालत को वह शायद समझ गयी।

"याने बात यह है कि इन्हीं चीज़ों से मुझे खुशी मिलती है।" उसने मुझे समझाया।

इस प्रकार फोन घर में दाखिल हुआ! वह चमकीला काला-यंत्र जिस दिन हमारे घर के छोटे टेबिल पर आकर विराजमान हुआ तो उस दिन हमारे घर खुशी की गंगा बहने लगी। श्रीमतीजी महिला-मंडल की जितनी भी महिलाओं को फोन पर बुला सकती थीं उन्हें दूसरों के फोन पर उसने बुलाया और हमारे घर फोन आने की खुश-खबरी बड़ी शान के साथ सुना दी। मेरा खयाल है कि उस दिन हमारी श्रीमतीजी की वजह करीबन सौ-सवासौ घरों में फोन की घंटियाँ बजी होंगी। अर्थात् मैंने भी इस बहती गंगा से थोड़ा लाभ उठा ही लिया। यह बात तो अलग है! यदि आसानी से इंग्लैंड, अमरीका के लोगों को भी हमारे टेलिफोन की इत्तिला दे सकता तो वह भी देता पर वह उतना आसान नहीं था। और इसीलिये दुनिया के ज्यादातर आदमियोंको मैं अपने घर की खुशी बता न सका। वे इस खुशी से महरूम रहे इसका मुझे बेहद रंज हुआ। कहते हैं कि खुशी को जितना ज्यादा तकसीम करो उतनी खुशी बढ़ती है। और इसीलिये हमने उस दिन हमारी जान-पहिचान के हर एक टेलिफोन में थोड़ी-थोड़ी खुशी भर दी। हमारी इस खुशी में इस तरह बाढ़ आ गयी कि हमारे मोहल्ले के हर-रास्ते में यह खुशी भरकर बहने लगी। क्योंकि हर एक घर में हमारे यहाँ टेलिफोन आनेका शुभ समाचार बड़े जोर और शोर से पहुँच चुका था। हर घर से दो चार आदमी आये। टेलिफोन देखा और चले गये। हर एक का चेहरा खुशी के मारे पागल बना नजर आता था। दूसरों के घर में अच्छी चीज को देखकर खुशी के मारे पागल होनेवाले आदमियों को मैं पहली बार देख रहा था! दूसरों के घर में लाई हुई अच्छी चीज को देखकर उसकी अच्छाई जहां तक हो सके मिटाने का भरसक प्रयत्न करनेवाले आदमी सच-मुच बेहद खुश नज़र आ रहे थे। मेरी खुशी में इस तरह खुले दिल से शरीक होनेवाले सज्जनों के लिये मेरे दिल में बहुत ही अपनापन पैदा हुआ। पराई खुशी को अपनी खुशी समझनेवाले ये आदमी याने कोई देव-पुरुष ही थे। मेरा और श्रीमतीजी का आनंद सिर्फ घर में ही समा नहीं रहा था। पर उन महाभागों का आनंद तो आकाश में भी नहीं समा रहा था। टेलिफोन में इतना जादू हो सकता है, इसका मुझे अंदाजा नहीं था। उस खुशी में मस्त होकर मैंने एक गीत बनाया और गाया भी। अब पूरा गीत तो याद नहीं आ रहा है, पर कुछ पंक्तियाँ याद हैं।

वह पूरा दिन हम फोन पर बोलते रहे थे या फोन के बारे में बोल रहे थे। इस तरह खुशी से भरा हुआ दिन सिर्फ वही एक था और दुबारा वह हमें कभी नसीब नहीं हुआ। आनंद और टेलिफोन का संबंध जो उस दिन आया। बस! उतना ही। दुबारा कभी आनंद का जरा भी स्पर्श उस टेलिफोन को नहीं हुआ।

मुहल्ले के आदमियों के इतने दिन रुके हुए काम मेरे घर फोन आते ही जरूरी बन गये इस फोन की वजह से मोहल्ले के सब आदमियों के साथ मेरा इस तरह से भाई-चारा बढ़ गया कि हम खा रहे हों या सो रहे हों, हमें प्यार-भरे अधिकार से उठाते और दरवाजा खोलने पर मजबूर करते। मोहल्ले के किसी भी आदमी को घर आने के लिए देर होनेवाली हो तो वह बिना भूले मेरे घर फोन करता। और इस तरह का संदेशा देता कि, "मैं आज खाने के लिए घर देर से आऊंगा। इतना संदेशा मेरे घर पहुँचा दीजियेगा।" "मुझे आने में दो घंटे देर होगी। इस तरह का संदेशा मेरे घर भेज दीजिएगा।" "मैं जरा बाहर जा रहा हूँ। यह मेरे घर कह दीजिये।" वगैरह-वगैरह और वे सिर्फ मेरे प्यार की खातिर इस तरह किया करते थे। पड़ोस की वत्सला चाची तो पुरोहितजी को और सुआसिनों को निमंत्रित करने के पवित्र और धार्मिक कार्य के लिये मेरे ही टेलिफोन का उपयोग करती। टेलिफोन से होनेवाली मेरी सबसे बड़ी हानी को मैं टेलिफोन के घर में दाखिल होने तक समझ नहीं सका था। फोन घर पर आने के बाद पता चला कि अब अपनी आजादी बंधन में पड़ी है। श्रीमतीजी बेहिचक ऑफिस में फोन करके, "छुट्टी हुई कि नहीं

अभी ?" "आज इधर-उधर न जाइयेगा। सीधे घर आना। आते वक्त थोड़ा लहसून ले आना है। शायद आप भूल जायेंगे। इसलिये टेलिफोन किया।" इस तरह बार-बार मुझे नकेल डाले काबू में रखने लगी। फोन के जरिये अब मेरा पीछा करना उसके लिये बहुत आसान बन गया। मैं एक भालू हूँ और कोई दरवेशी मेरे गले में बहुत ही लंबी रस्सी डालकर अपने घर में बैठा है। ऐसा मैं बार-बार महसूस करने लगा।

बिसुभाऊ डोंगरे तो मेरे घर फोन आने की खबर सुनकर खुशी से पागल हो गये थे। फोन आने के दूसरे ही दिन बिसुभाऊ अपने गोपाल, गोविंद, गणपति, सिंधू, गंगा, चंद्रभागा और भागिरथी—और इन सबकी जननी-जन्म-दात्री को लेकर मेरे घर पधारे।

"कहिये बापूरावजी ?" उन्होंने अपनी उत्साही आवाज में पुकारा।

"आइये, आइये।"

"अजी, हमने सुना कि आपके घर फोन आया हुआ है।"

"जी हाँ। ठीक है।"

"वाह बहुत-बहुत ही ठीक हुआ। अरे साहब, वह जो बाजू की गली में शंकर गोगटे है न, वह बड़ा ही अकड़ा हुआ था।"

"अकड़ा हुआ था ?" मैं—

"हाँ! उसके भी घर फोन है। परसों जरा फोन करने के लिये उसके घर गया तो मुझसे कहने लगा कि, 'यह पोस्ट-ऑफिस का पब्लिक-टेलिफोन नहीं है।' क्या यह इन्सानियत हुई ? अजी आजकल बिना वजह कौन किसके घर जाता है ? फोन के कारण हम जैसे भले आदमी उसके घर जाते हैं—मगर उसे भला क्या कद्र ? ऐंठने दो अब अकेले को फोन को गले लगाकर। तुम्हारे यहाँ फोन आया यह बहुत ही अच्छा हुआ।"

"आज आप बीवी-बच्चों के साथ तशरीफ क्योंकर लाये हैं ?"

"जी हां। वही तो बताता हूँ। बात यह है—हमारे बच्चों को फोन अच्छी तरह से देखना है। और बच्चों की माँ ने भी कभी फोन नहीं

किया है। सोचा, अब बापूराव के घर फोन आया है। चलो सब चलें। मैंने कहा, 'बापूराव क्या हमें पराये हैं ? बापूराव भी अपने और फोन भी अपना।' होने दो बच्चों की तसल्ली एक बार ! बस ! यह सोचकर सबको लेता हुआ चला आया।"

"ठीक है ठीक है।"

"हां तो बच्चो, सब एक साथ इधर आओ। देखा ? यह है फोन ! इसे रिसिव्हर कहते हैं। यहाँ से बोला जाता है और यहाँ से सुना। यहाँ पर जो अंक लिखे हुए हैं इसे कहते हैं डायल। यह घूमती रहती है।" विसुभाऊ क्लर्क के शरीर में मानो शिक्षक का संचार हुआ था।

"हमें घुमाकर दिखाइये...हमें घुमाकर दिखाइये।" इस तरह सब एकसाथ चिल्लाने लगे।

"अरे हां...हाँ...ज़रा ठहरो भी। हां तो सब इस फोन के इर्दगिर्द अर्ध-गोलाकार खड़े हो जाओ" बच्चे अर्ध-गोलाकार खड़े हो गये।

"हां अब गौर से देखो। समझ लो कि मैं दफ्तर में हूँ। कहाँ हूँ ?"

"दफ्तर !" सब...

"मैं दफ्तर गया हूँ।—और कल्पना करो कि तुम्हारी माँ की साड़ी स्टोव्ह पर गिरने से जलने लगी है, तो तुम क्या करोगे ?"

"बुझाने की कोशिश करेंगे।" एक बच्चा बोला।

"जवाब आधा ठीक है। बुझाने की कोशिश तो करनी ही होगी। पर फौरन यहाँ आकर २३४५ यह नंबर घुमाना होगा। जानते हो यह किसका नंबर है ?"

"किसका ?" बच्चे...

"यह है अपने ठेकेदार का नंबर। यह नंबर इस तरह से घुमाया जाता है।" विसुभाऊ समझाने में पूरी तरह मग्न हो गये थे। उन्होंने नंबर घुमाकर दिखाया।

"हूं। लग गया नंबर। देखो हूं अब-हॅलोऽऽ हॅलो...कौन डॉक्टर ठेकेदार बोल रहे है ?"

"जी हाँ।"

"हमारी माँ की साड़ी, स्टोव्ह पर गिरकर सुलग गई है। और वह जल गई है।"

"कौन जल गई माँ या साड़ी ?"

"अजी साहब ! हमारी माँ...इसलिये आप फौरन हमारे घर आ जाइयेगा।"

"आप कौन हैं ?"

"मैं विसुभाऊ डोंगरे का लड़का हूँ।"

"हॅलो...हॅलो...अरे नाम क्या है तेरा। और विसुभाऊ वहां गये हुए हैं ?" डॉक्टर की बड़ी आवाज सुनकर विसुभाऊ में समाया हुआ शिक्षक रफू-चक्कर हो गया। बाद में उन्हें होश आया।

"आं ?—अरे भाई ! डॉक्टर साहब ! माफ कीजियेगा।...मैं...मैं विसुभाऊ ही बोल रहा हूँ। बात यह हुई डॉक्टर कि...हमारे बापूराव के घर नया फोन आया हुआ है। बच्चों को फोन किस तरह किया जाता है यह समझा रहा था। और मिसाल के तौर पर उनसे कह रहा था कि तुम्हारी माँ स्टोव्ह से जली है तो बच्चो डॉक्टर को याने आपको किस तरह फोन करें... माफ कीजियेगा डॉक्टर साहब...असल में बात वैसी नहीं हुई है। समझाने की धुन में मैं तुम्हें फोन कर बैठा..." विसुभाऊ ने शरमाकर फोन नीचे रख दिया। और अपनी फजीहत बच्चों पर जाहीर न हो इसलिये शिक्षक का भाव चेहरे पर लाते हुए बच्चों से कहने..."देखा ! इस तरह फोन किया जाता है। मुझे दफ्तर में कुछ समझाना हो तो ३४५६ यह नंबर घुमा दो। कितना है मेरा नंबर ?"

एक लड़का अनावधान से चिल्ला उठा, "आखिर का !"

"गधा कहीं का !...अभी बताया था न मैंने ?...३४५६ हैं ! सब एकसाथ कहो।"—विसुभाऊ।

"तीन चार पाँच छः।" सब

"दुबारा कहो।"

"तीन चार पाँच छः" बच्चे अंक-ज्ञान की तरह एकसाथ कहने लगे।

"हूं ! अब बस,—तुम यह नंबर घुमाओ और पूछो डोंगरे साहब हैं ? समझ गये ?"

फिर विसुभाऊ ने हर बच्चे की ओर से फोन की रिहर्सल करा ली। अपनी बीबी को भी रेल्वे स्टेशन का नंबर मिलाकर मेल कितने बजे आती है इसकी जानकारी हासिल करने के लिये कहा। और उसे भी फोन का तंत्र समझा कर और करीबन घंटे डेढ़ घंटे बाद बच्चोंका ज्ञान और मेरे टेलिफोन का बिल दोनों को बढ़ाकर विसुभाऊ अपने कुटुंब-कबीले के साथ चले गये।

वैसे देखा जाय तो पोस्ट-ऑफिस में ही

टेलिफोन मेरे नाम पर था। मगर आठ-पंदरह दिन के अंदर-अंदर वह सार्वजनिक गणपति की तरह या उससे भी कहीं अधिक सार्वजनिक बन गया। हमारे घर आये हुये टेलिफोन को देख-कर मुहल्ले भरके आदमी इस तरह क्यों खुश हुए थे इसका कारण अब मेरी समझ में अच्छी तरह से आ गया था। आदमी भूलतः संकुचित-वृत्ति का होता है। पर खाने-पीने के बारेमें और टेलिफोन के बारे में उसे जरा भी संकोच करने की आवश्यता नहीं। यह एक सत्य भी मैं अच्छी तरह समझ सका। मेरा ज्ञान और भी बढ़ गया।

कुछ दिन कम से कम रात के लिये हमें आराम था। मगर हमारे पड़ोस में, जरा दूर नलूताई नाम की एक बहन रहा करती थी। उसके इंजिनियर पतिदेव पूना गये हुये थे। और उन्हें वहीं कुछ काम मिलने की वजह दो एक महिने रहना पड़ रहा था। फौरन नलूताई ने अपने पतिदेव को समझा दिया कि हमारे घर फोन है। और एक आधी रात को टेलिफोन की घंटी लगी बजने! नलूताई के पतिदेव का ट्रंक-कॉल!!! नलूताई के साथ उन्हें बातचीत करनी थी। पड़ोसी-धर्म का पालन करना था। दिन का वक्त होता तो पड़ोस के घरों में खबर करके उनके जरिये नलूताई तक सूचना भेजी जाती। पर आधी रात के समय यह असंभव था। फिर लड़खड़ाता हुआ उनके घर पहुंचा। और धीरे से दरवाजे पर दस्तक दी। पूछा गया, "कौन है?". मैंने जवाब दिया, "मैं बापूराव हूँ।" फिर भी बाईजी ने दरवाजा नहीं खोला। यकीनन् उसके दिल में मेरे लिये शक पैदा हुआ था। अपने पतिदेव की गैर-हाज़िरी में आधी रात के समय-बिना झिचक दरवाजे पर दस्तक लगानेवाले इस पड़ोसी के दिल में कुछ और ही मतलब होना चाहिये। पूरे घर की बत्तियाँ जलाई गईं। पीछे के दरवाज़े से बाईजी ने सब पड़ोसियों को भी जगाया। और इतना करने के बाद सामनेवाला दरवाजा खोला गया। चेहरे पर नफ़रत। यह बला अपने दरवाजे पर क्यों? इस तरह का भाव। माथे पर बेहद बल पड़े हुए। उसकी वह मनहूस सूरत देखकर मुझ से यह कहते भी नहीं बन रहा था कि उसके पतिदेव का फोन आया हुआ है। झक-मारी जो यहाँ आया—इस तरह के विचार तीव्रता से दिल में पैदा करनेवाली उसकी सूरत थी। मैंने बड़ी ही नम्रता से उससे कहा, "आपके पतिदेव का ट्रंक-कॉल आया है" फिर भी उसकी आँखों से शक स्पष्ट नज़र आ ही रहा था। फोन का बहाना बनाकर इस आदमी ने अपने घर में आने की कोशिश की है, इस तरह का शक उसकी आंखों से जाहिर हो रहा था। आखिर मुझ पर ही बड़ी मेहरबानी करने का बहाना करते हुए श्रीमतीजी मेरे साथ आने के लिये राजी हो गईं। वे चली आईं। दुबारा फोन लगाकर उनके पतिदेव का कान (फोन से लगा हुआ) उनके हाथ में आने तक घंटा डेढ़ घंटा बीत गया। तब तक मैं नींद को सम्हाले बैठा था। आखिर फोन आया। बातें हुईं। और फिर आधी रात का समय—इसलिये उन्हें पहुँचाने के लिये फिर से उनके घर तक मजबूरन जाना ही पड़ा। इस तरह यह बार-बार होने लगा। हफ्ते में एक-दो दिन नलूताई के पतिदेव का ट्रंक-कॉल आने लगा।

रात के समय ट्रंक-कॉल के लिये आधा चार्ज लगता था। इसलिये यह बात उस इंजिनियर के लिये फायदे-मंद थी। नलूताई को थोड़ा जागना पड़ता था। पर वह अपने पति के लिये न जागे तो और किसके लिये ? परन्तु इन पति-पत्नियों की प्यार-भरी बातचीत में मैं बेचारा पीसा जा रहा था। मेरी नींद हराम हो रही थी। मुझे तकलीफ हो रही थी पर इसका एहसास न नलूताई को था और न उनके पतिदेव को। मैंने घर में फोन लिया है तो मेरा यह कर्तव्य ही है। ऐसा उस दंपत्ति का विश्वास हो गया था। इस तरह से रात वे रात को मेरे-इंजिनियर के घर-जाने की बात की चर्चा कुछ पड़ोसिनियों ने इस कुत्सितता के साथ की कि मैं तो बिलकुल घबरा उठा। फिर इन बातों को हमेशा के लिये रोकने का मैंने निर्धार किया। और उनको साथ ही उनके पतिदेव को मैंने साफ-साफ कह भी दिया। परन्तु नतीजा यह हुआ कि हमेशा के लिये उनसे दुश्मनी मोल लेनी पड़ी।

पीछे की गली में रहनेवाले आनंदराव पांडरे का एक भतीजा इसी तरह हप्ते में दो-चार बार आकर मेरे टेलिफोन पर बैठता। पहली बार जब वह आया तो उसने बड़ी गंभीरता के साथ मुझसे पूछा कि, "मुझे जरा अस्पताल में फोन करना है। क्या मैं यहाँ से फोन कर सकता हूँ?" अस्पताल नाम सुनते ही जिसके दिल में रहम न पैदा होता हो ऐसा फोन-मालिक इस संसार भर में मिलना मुश्किल ही है। किस पर कौनसी मुसीबत आती है कुछ कहा नहीं जाता। और तो कुछ नहीं, कम से कम फोन से क्यों न हो सहायता की जाये, जिससे बीमार की सेवा का पुण्य मिलेगा। उसके चेहरे पर गहरी चिंता नजर आ रही थी। इससे यह जाहिर हो रहा था कि कोई सिरियस केस अस्पताल में दाखिल करना होगा। मैंने उदारता के साथ उससे कहा कि जब भी तुम्हें अस्पताल में फोन करना हो तो बेखौफ आकर किया करो। पूछ-ताछ की बिलकुल जरूरत नहीं। कृताज्ञता से उसकी आँखें भर आईं। वह तो हप्ते में तीन-चार बार आकर फोन करता रहता था। उसकी कुछ-कुछ बातें मेरे कानों पर आया करती थीं।

"पेशंट की हालत बहुत ही नाजुक है।"

"फिर ॲडमिट कब करोगे ?"

"कम से कम तुम व्हिजिट के लिये तो आओ।"

"मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि जिन ऊपरी दवाओं से कुछ काम बनेगा।"

"यदि तुम पेशंट को ॲडमिट न करोगे तो कुछ आशा नहीं है।"

इसमें कुछ गलत नहीं था। पर दो महिने के ऊपर बीत गये फिर भी इसके पेशंट को कोई ॲडमिट नहीं कर रहा था। इसलिये मैंने जरा ज्यादा मालूमात हासिल करने की कोशिश की तो मैं उसके इस अस्पताल के मामले को समझ

गया। उस पांढरे का यह काला भतीजा उस अस्पताल की एक नर्स के साथ कनेक्शन जमा रहा था। और अस्पताल की भाषा में प्यार की बातें किया करता था। उसके उन सब वाक्यों का अर्थ बाद में मेरी समझ में अच्छी तरह से आया। और जब उसे इस बात का पता चला कि मैं उसका 'प्रेम का मामला' समझ गया हूं, तो उसने मेरे घर आना छोड़ दिया।

उसी तरह उस बेबी की माँ! हमेशा इतनी जल्दी-जल्दी से आती कि देखनेवाले को लगता जैसे उसके घर को आग लगी हुई है। सरसर आती और फर्र से फोन करती...

"हलो मस्ताना टाकीज? आज कौन सा चित्र चल रहा है?" मैंने सर पर हाथ रक्खा।

- "अरे बेबी की माँ, अखबारों में सब चित्र-गृहों की खबरें छपी रहती हैं।" मैं...

"अजी अखबार में बहुत कुछ होता है। और सिनेमा-गृहों में क्या कम पोस्टर होते हैं? पर सुबह-सुबह यहाँ वक्त किसे है जो अखबार लेकर बैठे। फोन किया बस! काम हो जाता है।"

और उस वक्त मुझे कुछ जवाब नहीं सूझता था। जब हमेशा वह इस तरह करने लगी तो आखिर मैंने तंग आकर एक बार फोन के पैसे मांगे फिर उसने हमारे यहाँ आना ही छोड़ दिया।

पर "उस बापूराव की नियत बिलकुल बदल गई है। जरा सा फोन क्या किया कि फौरन दूसरों की तरह फोन के पैसों के लिये हाथ फैलाने लगा। सवाल दो आने का नहीं। उसे दो रुपये भी दे सकती हूँ। पर कुछ इन्सानियत है या नहीं? एक बार नहीं दो बार मैंने पति-पत्नी को सत्यनारायण के मौके पर खाना खिलाया है। फिर भी पैसे माँगता है? शरम नहीं आती? —और देखा जाय तो हरवक्त दो-दो आने दक्षिणा भी दोनों को दी है। लेने दो उसी में से फोन के पैसे काटकर।" इस तरह वह घर-घर जाकर कहने लगी।

—और वह सापळे, किसी गोमटे का इसको एक बार फोन आया। "आपके पड़ोस में जो सापळे है न? आप उनसे कह दीजियेगा कि मैं उनसे आज नहीं मिल सकूंगा।" इसके आने न आने से शायद सापळे का कुछ फायदा-नुकसान होनेवाला हो तो मैं क्यों सुस्ती करूं? इस तरह सोचकर मैं सापळे के घर पहुँचा और उसे फोन की खबर सुनायी। वह तो बड़ा बेवकूफ निकला। मुझको गोमटे समझकर मुझ पर ही बरसने लगा।

"मिल नहीं सकता याने क्या? वह क्या उसका बाप मिलेगा। उससे कह दो मैं कुछ भी नहीं सुननेवाला। अब मैं अदालत में खींचता हूँ उसे"

मैं अचंभे से उसे देखता ही रहा। मैं आया था फोन की खबर सुनाने। अपना सब काम-धाम छोड़कर उसके घर आया। इसका शुक्रिया तो नहीं उल्टे मुझीको हुक्म दे रहा है......गधा कहीं का! क्या यह मुझे अपना मुनीम समझता है? क्या यह मेरा बाप है? जो मुझे इस तरह हुक्म दे रहा है? फिर भी मैंने उसे शांति के साथ कहा, "देखिये—श्रीमान सापळेजी! तुम्हारा वह गोमटे न मेरा ससुर है, न दामाद। और न आप भी मेरे ससुर हैं। आप उसे अदालत में खींचे या जहन्नुम में; या आप दोनों चले जायें!!! मुझे उससे कुछ सरोकार नहीं। मैंने मूर्खता की जो फोन लिया और शतमूर्खता की जो आपसे कहने के लिये यहाँ चला आया। मेरी गलती हुई। मुझे क्षमा करो," इस तरह जवाब दे कर मैं वहाँ से फौरन चला गया।

किसे कैसे रोका जाय यही मेरे समझ में नहीं आ रहा था। मुहल्ले के ज्यादातर सभी आदमियों ने अपना ही फोन-नंबर समझकर बेहिचक मेरा फोन-नंबर दूसरों को दे रक्खा था। पर हर महीने के आखिर में जब फोन का बिल आता तो उसे देखते ही आंखों-तले अन्धेरा छा जाता था।

फोन के लिये खुदकुशी करने का विचार यदि दिल में न भी पैदा होता हो पर उस फोन पर बड़ा सा पत्थर डालकर कुचलने की इच्छा कई बार दिल में जोश खाती है।

एक दफा एक फोन आया। उसने गलत नंबर पर फोन किया था। चार बार मैंने उसे कहा भी। पर दुबारा उसीका ही फोन।

"कौन चाहिये?"

"शंभू कागदे।"

"शंभू कागदे नाम का यहाँ कोई नहीं है।"

"मैं जानता हूँ। वहीं रहता है वह।"

"अजी साहब! इस पूरी गली में शंभू कागदे नाम का एक भी आदमी नहीं है।"

"नहीं कैसे? होना ही चाहिये! उसने ही तो मुझे बताया है!"

"अरे भई, मैं सच कह रहा हूँ। शंभू कागदे आसपास कहीं भी नहीं है।"

"तुम मुझसे कुछ मत कहो जी। वह वहीं है।"

"क्या वह तुम्हारे रिश्ते में है?"

"जी नहीं! पहचान है।"



"होगी! पर वह यहाँ नहीं है।"

"तुम नहीं जानते। वह वहीं है।"

उसकी हठधर्मी देखकर कुछ चिढ़ सी आ। इसे अच्छा सबक सिखाना चाहिये, इस तरह का विचार मैंने दिल में किया।

"तो फिर जरा रुकिये। मैं अभी पूछ लेता हूं।"

"शुक्रिया! ऐसा कुछ तो कीजियेगा—"

मैं थोड़ी देर खामोश बैठा रहा। और दुबारा फोन उठा लिया।

"कौन शंभू कागदे ही ना?"

"जी हां—जी हां—वही!"

"वह मर गया।"

"क्या कहते हैं आप?" उसकी आवाज आश्चर्य से भरी थी।

"हां! मर गया। कुछ ही समय पहले चल बसा।"

"क्या सचमुच ही मर गया।"

"हां बिलकुल सच है। वह सचमुच ही मर गया है।"

"अरेरे! बहुत ही बुरा हुआ।"

"निःसंशय! बुरा तो हुआ ही है।"

"वैसे नहीं—पर मेरी नज़र में तो और भी ज्यादा बुरा हुआ है।"

"मगर वह आपके रिश्ते में भी नहीं था।"

"नहीं था! मगर फिर भी बहुत बुरा हुआ।"

"क्यों?"

"दो रुपये मुझसे उसने उधार लिये थे। अब वे कभी वापिस नहीं मिलेंगे।"

इस तरह मैं बेहद परेशान हुआ था। इस परेशानी की हालत में नरहरी तात्या का एकमात्र सहारा था। फोन का नाम सुनते ही वे आग-बबूला होते थे। उनकी इतनी उम्र बीत गई थी पर उन्होंने उम्रभर में एक बार भी फोन नहीं किया और न फोन पर बात-चीत की। बड़े अभिमान के साथ वे इसका जिक्र हमसे हमेशा करते थे। जिस दिन हमारे घर में फोन आया था, उसी दिन उन्होंने मुझसे कहा था, "अरे बापू! मैं तो सोच रहा था कि तू बड़ा समझदार आदमी है। अरे पगले... इस मुसीबत की जड़ को तू घर में ले ही क्यों आया? इस फोन-वोन की हमें क्या जरूरत? मेरा तो बेटा, इस यंत्र पर जरा भी विश्वास नहीं। सच्चा फोन एक ही! उपर वाले का!! वही सच्चा ट्रंक-कॉल!!! उपर का ट्रंक-कॉल आने की देरी है कि हर एक चल पड़ा! बस, उतना एकमात्र फोन मैं सुननेवाला हूँ। समझे?"

जिस दिन मेरे घर में फोन आया उसके बाद सिर्फ एक दिन खुशी का आया जिस दिन मेरा फोन बिगड़ चुका था। मैं खुशी से कूद पड़ा। चूहे की तरह बेकार ही घर में इधर-उधर दौड़ता रहा। चौखट से सर टकराकर सर में बेहद दर्द होने लगा। पर फिर भी बिगड़ने की खुशी जर्रा बराबर भी कम नहीं हुई। उस दिन सुबह मैंने पूरे गिनकर पंद्रह आदमियों को फोन-बिगड़ने का समाचार खुशी-खुशी सुनाकर वापस भेज दिया। परंतु हमारे इस संसार में असत्य बात आँख मूंदकर स्वीकार की जाती है। सत्य पर कोई यकीन नहीं करता! फोन बिगड़ सकता है इस बात पर ज्यादातर आदमी एतबार ही नहीं कर रहे थे। और जो बचे हुए थे उन्हें मेरे कहने पर एतबार नहीं था। हर एक के चहरे पर मेरी सचाई के बारे में शक!! दो-चार आदमियों ने तो प्रत्यक्ष फोन के पास जाकर आजमाकर देख ही लिया। और दूसरे दो-चार आदमियों ने, "अजी साहब! फोन बिगड़ा हुआ है तो टेलिफोन-ऑफिस में जाकर समझाइये सिर्फ फोन बिगड़ा...फोन बिगड़ा... क्या कह रहे हैं?" इस तरह की पाक-नसीहत भी की। पर मैं फोन बिगड़ने की खुशी किसी भी कीमत पर गँवाने के लिए राजी नहीं था। पर अच्छी बात ज्यादा देर नहीं रही थी। यही सच है। किसी परमदयालु महाशय ने बिना मुझसे कुछ कहे सीधे टेलिफोन-ऑफिस में मेरा टेलिफोन बिगड़ जाने की खबर पहुंचा दी। और इस तरह लोकमत के प्रेशर से मेरा टेलिफोन दुबारा बनाया गया।

फफोले की तरह फोन दुःखदायी है फिर भी इस फफोले के ईर्द-गिर्द बहुत ही मुलायम



भूलें हैं हम संविधान की

—अनिलकुमार

हम न विधाता की ग़लती हैं
भूलें हैं हम संविधान की,
अथवा हैं प्रत्येक व्यवस्था की चक्की में
पिसते-पिसते बच उठने वाले
कंकर हम।
शोषण की आंखों में हम
किरकिरी बनेंगे
यही हमारा जायज हक है!

हम न आज औसत दर्जे की
भेड़-बकरियों के गिरोह में
चर पाते हैं,
हम समाज की चौपड़ के
हर चौराहे पर पीट जाते हैं
सभी तरह से रक्षित अपने
अधिकारों के निजी गेह में
बने, झरोखे से घुस आते
किसी दस्यु द्वारा लुट जाते
यही हमारे लिये सहज है,
क्योंकि बंधुओं,
हम विधाता की ग़लती हैं
भूले हैं हम संविधान की!

हम पटरी पर बैठे-बैठे
परम्परा को उभरी-उभरी
लौह लीक को
मौन भाव से
अपनी गर्दन नहीं सौंपते,
हम न स्वार्थ के चौरस घेरे में बैठी
हर किसी गोट-से,
गोट मिलाते,





हम न किसी अनुचित दुर्मद के
सम्मुख जा खीसें निपोरते—
बगलें झांकते,
हम न किसी भी शासनलोभी—
राजनीति की 'हाँ' में अपनी 'हाँ' भर कर
डुगडुगी पीटते,
हम न सत्य के गले अँगूठा रखे खड़े हैं
ताकि प्रतिष्ठा सदा उतारा करे आरती;
हमने की है भूल जरा सी
दिये शब्द प्रत्येक चुभन को
वाणी दी है उत्पीड़न को।
बंधु,
सचाई के अभिनेता की जमात में
खैर कहां है मुक्त प्राण की?
इसीलिये तो—
भूले हैं हम संविधान को!
खादी की पैनी कटार से

शुद्ध अहिंसक-हत्या के संगीन जुर्म में
हम न कभी संसद के क़ैदी बने
आजतक!
सरकारों के साथ स्वयं की टोपी का भी
रंग बदल कर
सदा तिरंगी मुसकानों में
सब अपनी करतूत लपेटो,
आश्रमवासी-बकरी के निर्दोष दूध पर
भाषण दे कर
द्राक्षासव के परमिट बांटो,
हाथ कता धागा पहना कर
गर्दन काटो,
और जहां तक बने अकेले ही चुपचाप
मलीदा चाटो।
इसी तरह के सपनों में
जीने के खातिर
'दुःशासन के हाथ करो मजबूत अधिक!'—
का नारा रोज़ गुंजाया करते,
उनके अपने धर्मग्रंथ के
हैं सच्चे अपवाद खड़े हम
सीने पर संगीन-अड़े हम!
चिंता है कब हमें प्राण की?
भूले हैं हम संविधान को!!

दिल निकाल कर रखा जेब में
सीने में सिक्का जड़ बैठे
सिक्का चाहे जहां भुनालो
दिल को कहां कहां बदलोगे?
इसीलिये ऐ सिक्केवालों!
हमें मिटा देने से ज्यादा
हमें बदल देना मुश्किल है,
क्योंकि हमारे सीने में तो
जड़ा हुआ छोटा-सा दिल है!
बदल सको तो सिक्के बदलो
तुम अपना यह विधान बदलो
अगर विधाता को बदलोगे
तब फिर तुम्हें बदलना होगा
क्योंकि हमारे नकली भाई!
हम न विधाता की ग़लती हैं
भूले हैं हम संविधान को!!

विनोद की तह जमी हुई है। किसी-किसी वक्त तो इस तरह का शुबह होने लगता है कि टेलिफोन यह विनोद का ही साधन है। टेलिफोन की ईजाद करनेवाला वैज्ञानिक निश्चित रूप से विनोद-प्रिय होगा।

गलत नंबर लगना यह एक इन्सान के जीवन का सच्चा, सही प्रतीक है। बहुत से आदमियों को अपना घुमाया हुआ नंबर सही है या नहीं इसकी जाँच किये बिना ही फोन पर एकदम बोलने की आदत होती है। इन आदमियों के कारण काफी विनोद निर्माण हुआ है। फोन पर बोलनेवाला पुरुष अपना पति ही है। ऐसे निश्चित रूप से सोचकर दो-चार आर्य महिलाओं ने मुझे डांटा-डपटा भी है। कुछ दो-एक लड़कों ने उनका पितृत्व मुझ पर लाद कर मुझे उनके लिये किताबें लाने का प्यार भरा आदेश दिया है। किसी श्रीधर पंत ने, "मेरी लड़की से सगाई करने की तुम्हारी हैसियत है क्या?" इस तरह का बोझिल सवाल भी कर डाला है। एक कृष्णराव ने तो मेरे यहाँ "कांदा-पोहे" की ऑर्डर देकर मुझे सुदामा बना डाला है। पागलों के अस्पताल से बात-चीत करने का इरादा करनेवाले अक्लमंद आदमियों ने पागलों की तरह मुझसे सवाल किये हैं। एक सेठजी ने गॅस की तकलीफ की शिकायत मुझसे की। उस वक्त मैंने उसे गॅस कंपनी का नंबर दिया। पर शायद उसे दवाखाना चाहिये था। यह बाद में मेरी समझ में आया।

फोन करने के लिये रिसिव्हर उठा के कान से लगाओ, किसी आशिक-माशूक का लफड़ा फोन से सफर करता हुआ सुनाई पड़ता है। वह उसे मनाता रहता। मुलाकात के लिये कहता और वह मजबूराना आवाज में कहती, "मुश्किल है मेरे सरताज।" किसी डल-चित्र की तरह यह प्रेम-प्रकरण जल्द खत्म होनेका नाम ही नहीं लेता। जी चाहता है बीच में ही जोर से चिल्लाकर उस मानिनी से कहूँ, "बाईजी, आप मान भी जाईये। हां कहिये। जिससे फोन की लाईन दूसरों के लिये तो साफ हो जायेगी।" कभी कभी बड़ी अजीब बात होती है कि कोई भी नंबर घुमाओ तो रामू हलवाई ही फोन पर आता है। ऐसे लगता है कि राक्षस की तरह हर फोन में यह घुसकर बैठा हुआ है।

पर अब यह किस्सा खत्म हो चुका है। टेलिफोन का बिल वक्तपर अदा न होने से मेरा टेलिफोन निकाला गया है। इस मामले में मोहल्ले भर के लोगों की यों राय है कि...

"फोन का बिल अदा करने की कुव्वत नहीं और साला! चला था टेलिफोन का रूआब करने!" मेरी भी यही राय है। लोकमत मेरी ओर है यह साफ है।

जाहिर तौर से यह मामला यों है पर इस में एक रहस्य छिपा है। जिसका अब तक किसीको भी पता नहीं है। इस फोन से पीछा छुड़ाने के लिए मैंने भगवान से प्रार्थना की है, यह प्रार्थना मैंने मेरे मित्र मनू माने की ओर से खास तौर से बनाली है। वह मेरी प्रार्थना अब सफल हुई। पर इस बात का किसे पता तक नहीं। किसी दूसरे फोनवाले को भी इससे फायदा होगा। निश्चित रूप से फायदा पर राज़ की बात यह है कि प्रार्थना दिल से होनी चाहिये।

रूपा: अब्दुलकरीम अथणीकर

अनुक्रमणिका



सत्य का दीवानापन उतना ही खतरनाक है जितना कि झूठ का प्यार ! वेदों और पुराणों की भारी भरकम मिसालों के सामने भला हमारी क्या चलती !

जयसिंह राठौर

पता नहीं उस दिन हमारी 'वे' लड़ने की कसम खाये हुए थीं, या हमारे ही नक्षत्र पटरी से उतर गए थे कि रात को शयन-कक्ष में पहुंचते ही पति-पत्नी में महाभारत का सूत्रपात हुआ। बात न जाने कहां से शुरू हुई, लेकिन जा पहुंची पिछले वर्ष के 'पत्र-काण्ड' पर, और मामला यों तूल पकड़ गया मानों बारूद के गोदाम में चिनगारी पड़ गयी हो।

पत्र-काण्ड की थोड़ी-सी जानकारी बिना स्थिति की गम्भीरता के नहीं आंकी जा सकती; अतः इस सन्दर्भ में दो शब्द प्रस्तुत हैं—पिछले साल हमारे प्रातः स्मरणीय बड़े साले साहब ने हमारे यहाँ आने की कृपा की थी, तभी की यह दास्तान है। किस्सा यों हुआ कि साले साहब को हमारा घोंसला मालूम नहीं था। जिस चिट्ठी में श्रीमतीजी ने घर को खोज निकालने के लिए नक्शा बनाकर भेजा था, वह हम अपने भुलक्कड़पन के कारण पोस्ट करना ही भूल गये। परिणाम यह हुआ कि साले साहब को शहर पहुँचकर दो दिन धर्मशाला में चूहों और खटमलों के साथ डेरा डालना पड़ा। शहर के कुछ गली-कूचों की धूल जब छान चुके तब कहीं हमारे घर पहुँच सके। भाई की परेशानी का वृतान्त सुनकर श्रीमतीजी ने लावा उगलते ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया। उनके हाथों हमारी जो तत्कालिक फजीहत हुई सो तो हुई, वे असहयोग-आन्दोलन छेड़कर दो माह के लिए पीहर जा बैठीं, तो इधर एक ओर तो विरहाग्नि में पहलू बदल-बदल कर पापड़ की तरह सिकना पड़ा, उधर दूसरी ओर उदरपूर्ति के लिए अपने हाथों रोटियाँ सेंकनी पड़ी सो आटे-दाल का पूरा भाव मालूम पड़ गया। ज़ाहिर है कि इस काण्ड का जिक्र हमें जले पर नमक की तरह लगता है।

श्रीमतीजी किस्सा छेड़कर चुप हो जायं—ऐसा संयोग जब पहले कभी नहीं बैठा था तो उस दिन ही कैसे वे अपनी आदत छोड़ देतीं, गड़े मुर्दे उखाड़ते हुए बोलीं, "चिट्ठी डालना भूल गये सो भूल गये, ऊपर से झूठ और मैंने पूछा तो कसम खाने लगे कि चिट्ठी खुद ही डब्बे में डालकर आया हूं।"

"चिट्ठियां जरूर डाली थीं उस दिन," हमने सफ़ाई की घिसी-पिटी दलील ज्यों-की-त्यों दोहरा दी, "लेकिन हमें क्या पता था कि वह कमबख्त लिफ़ाफा ही दफ़्तर में छूट जायेगा।"

"लेकिन तुमने तो उस चिट्ठी को डाल आने की बात कही थी?" उन्होंने हमेशा की तरह उलझने का बहाना ढूंढा।

हमने टालने की गरज से दर्शन की ओट ली, "कभी-कभी थोड़ा झूठ बोलना भी ज़रूरी हो जाता है, डार्लिंग।"

यों शायद सत्य का गला वे ही अधिक घोंटती हों, किन्तु उस दिन तो बात पर बात आ गई थी, इसलिए मोर्चा लेकर अड़ गयीं। हमने लाख कोशिश की समझाने की, उदाहरण दिये कि सत्य का दीवानापन उतना ही खतरनाक है जितना कि झूठ का प्यार, परिस्थिति-वश धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा 'बोला गया झूठ भी उद्धृत किया, लेकिन सारी दलीलें

(कृपया पृष्ठ १३६ देखिये)




अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका



☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆

भारतीय लोकनृत्य

☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆ ☆

संसार की अनेक विगत तथा वर्तमान संस्कृतियों में भारत की संस्कृति को एक विशेष महत्ता प्राप्त है। भारतीय–संस्कृति का आधार है भारत की विविध-प्रकार की कलाएं। नृत्य-कला यह भी भारत की एक प्राचीन-कला है। यद्यपि सांप्रतकाल में इस नृत्य-कला की आधुनिकता की ओर अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है और उनमें अनेक सुधारों को लाने के प्रयत्न हो रहे हैं तथापि 'भारतीय लोकनृत्य' की ओर किसी का दुर्लक्ष नहीं हुआ है। स्वतंत्रता के उपरांत इस लोकनृत्य की ओर विद्वानों ने ही नहीं परंतु सरकार ने भी ध्यान दिया है। सरकार 'लोकनृत्य' को भारतीय संस्कृति का एक महत्व का अंग मानती है और यही कारण है कि 'लोकनृत्य' का बोलबाला होता जा रहा है। यह कला आज एक विस्मृत–सी बनी थी क्योंकि वह प्राचीन है तथा उनमें अनुशासन की गुँजाईश कम पाई जाती है। मगर इन कमियों के अतिरिक्त भी आज 'लोकनृत्य' कला को फिर एक बार ऊपर उठाने के भरसक प्रयत्न हो रहे हैं। इसी दृष्टि से यहाँ भारत के विविध 'लोकनृत्य' के कुछ चित्र तथा उनका विवरण हम पाठकों के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं।

'लोकनृत्य' एक ऐसा नृत्य-प्रकार है जो भारतीय देहातों के वासियों में विकसित हुआ और जो वंश-परम्परागत चला आ रहा है। उसके लिये किसी विद्वान मार्ग-दर्शक की या अध्यापक की आवश्यकता नहीं पड़ी। नृत्य करनेवालों की मानसिक-प्रसन्नता तथा मन-रंजन ही इस कला का बीज है। दिन-भर के कार्य से थककर घर लौटने पर प्रसन्नता-प्रदान करनेवाले कार्य की आवश्यकता ने इन लोकनृत्यों को जन्म दिया। इसमें प्रेक्षकों को प्रसन्न करने की भावना का लेश-मात्र अंश नहीं। इन 'लोकनृत्यों' द्वारा जिन भावनाओं का प्रदर्शन होता है वे सारी मूल-भावनाएँ हैं तथा स्वाभाविक भी।

आज 'लोकनृत्य' विशिष्ट प्रकार का राष्ट्रीय महत्व रखते हैं। ये राष्ट्र के दर्पण होते हैं। राष्ट्र की कला, संस्कृति, सादगी, सामाजिक-स्तर, रीति-रिवाज, श्रद्धाएँ तथा भावनाएँ इन सब के सामंजस्य का प्रदर्शन 'लोकनृत्य' द्वारा भली-भांति संभव है।

देहातियों को 'लय' का मूल-ज्ञान पर्याप्त-मात्रा में होता है और उनके संगीत के उपकरण विविध-भाँति के तथा विविध-आकार के हुआ करते हैं। इनको बजाने में वे निपुण हुआ करते हैं और ये ही उपकरण नृत्य के समय बजाये जाते हैं। इनके लिये कोई साज-श्रृंगार आवश्यक नहीं होता। इसलिये इनमें एक प्रकार की स्वाभाविकता अवलोकित होती है और इसी स्वाभाविकता ने भारतीय 'लोकनृत्य' को विशेष स्थान प्रदान किया है।

१. महाराष्ट्र मनरंजनात्मक लोकनृत्यों का भंडार ही है। इनमें आदिवासियों के विविधता-पूर्ण नृत्य-प्रकार पाये जा सकते हैं। मंदिरों की संख्या महाराष्ट्र में विशेषकर अधिक है अतः व्रत-त्यौहारों के अवसरों पर नारियाँ भगवान की मूर्ति के सम्मुख नृत्य किया करती

मनोहर चंदावरकर

महाराष्ट्र के 'कोळी-नृत्य' ने एक विशिष्ट स्थान आज प्राप्त कर लिया है। अलग-अलग स्थानों में इसके अलग-अलग प्रकार पाये जाते हैं। इसमें या तो केवल पुरुष ही होते हैं या स्त्री-पुरुष दोनों समान रीति से सम्मिलित होते हैं। इसमें और एक प्रकार है जिसे 'नाखवा-कोळीन' नृत्य भी कहते हैं। एक पुरुष और एक स्त्री द्वारा यह नृत्य होता है। 'नकटा' नामक एक विनोदी नृत्य भी विशेष प्रचलित है। श्रीकृष्ण की स्मृति में गोकुलाष्टमी के अवसर पर 'दही हांडा' या 'दही काला' नामक नृत्य विशेष उत्साही तथा आनंदित वातावरण में संपन्न होता है। 'दशावतार' तथा 'बोहाडा' नामक नृत्य-नाट्य भी यहाँ विशेष आकर्षक ढंग से होते हैं, जिनमें धार्मिक-कथाओं का दिग्दर्शन किया जाता है। 'फुगड़ी', 'लेझिम', 'दिंडी', 'टिपरी', 'गोफ', 'पालकी', नामक किसानों के अनेक लोकनृत्य महाराष्ट्र में प्रचलित हैं जो आँखों को तृप्ति प्रदान करते हैं।

२. प्रसिद्ध 'गरबा' नृत्य का जन्म-स्थान महागुजरात ही है। अनेक त्यौहारों, शुभ-अवसरों पर यह 'गरबा' नृत्य होता है। इसका भव्य स्वरूप, नयनाभिराम दर्शन नवरात्रि के त्यौहार के अवसर पर होता है। श्रीकृष्ण-लीला का 'गरबा' यह एक प्रतीक है। गुजराती-कन्याएँ अपने सर पर मटके लेकर उनमें दीप रखती हैं और लय-बद्ध गीत गाते हुए नृत्य करती हैं। गीत पहले एक गाती है और उसके उपरान्त सब गाया करती हैं। काठियावाड़ में 'रास' नामक 'नृत्य' प्रचलित है 'खारवा' जाति की नारियों का 'टिप्पणी' नामक नृत्य विशेष मोहक होता है। उत्साही वातावरण में अपनी थकान को मिटानेके लिये यह नृत्य होता है। यहाँ के मछुओं के नृत्य को 'पढारा' नृत्य कहते हैं।

३. भारतीय लोकनृत्यों की परंपरा में 'आसाम' की देन अतुलनीय है। ४८० वर्ष पूर्व शंकरदेव नामक एक समाज-सुधारक ने आसाम में सामाजिक तथा धार्मिक पुनरुज्जीवन का महान कार्य किया। उसने स्वयं 'कामरूप लोकनृत्य-कला' को अवगत कर लिया और आसाम के लोक-नृत्य को एक नया मोड़ प्रदान किया। हमारे धार्मिक अधिष्ठान में कृष्ण-लीला को प्राधान्य प्राप्त है। आसाम के आदिवासियों के नृत्य वैचित्र्य-पूर्ण हुआ करते हैं। अप्रैल मास के तीसरे सप्ताह में आसाम में 'बिहु' नामक त्यौहार मनाया जाता है। और इस अवसर पर आसाम के नर-नारी हाथों में हाथ धरे रात-भर 'बिहु' नृत्य करते हैं। आसाम लोकनृत्यों का वैभव-पूर्ण नृत्य-प्रकार शिलांग के आस-पास में स्थित खासी के आदिवासियों का है। इनमें हस्त तथा पदन्यासों में समानता रहना अवश्यंभावी माना जाता है। आसाम के 'नागा' लोगों के 'चित्र-विचित्र' नृत्य, भारतीय लोकनृत्य का एक महत्व का भाग है। पक्षियों के पंख, फूल, सींग तथा पत्थरों से बने हुए अलंकारों को पहनकर किया जानेवाला इनका नृत्य-प्रकार नयनाभिराम होता है।

४. 'भांगड़ा' यह पंजाबी किसान का अतिप्रिय 'नृत्य' है। यह केवल पुरुषों का नृत्य है। धार्मिक त्यौहारों के अवसरों पर अति उत्साही वातावरण में 'भांगड़ा' का प्रयोग होता है। इस सामूहिक नृत्य में कोई पुरुष सम्मिलित हो सकता है। ढोल कमर में बांधे एक पुरुष मध्य में खड़ा रहता है और अन्य पुरुष वर्तुलाकार में नृत्य किया करते हैं। नर्तक किसान तालियाँ बजाते हैं, लड़ बजाकर लय लेते हैं, और लोकगीत भी गाया करते हैं। गेहूँ की फसल कटने पर पूनम की एक रात्रि को युवक एक मैदान में एकत्रित होते हैं फिर नाचने लगते हैं। पंजाबी युवकों की तरह ही युवतियों का नृत्य 'गिद्धा' अति लोकप्रिय है। वर्तुलाकार में गीत गाते हुए जब वे नाचते लगती हैं तो वह दृश्य अति विलोभनीय होता है। भाव-भंगिमा सादी एवं मोहक होती है। पंजाब के 'कूल्लू' की प्राचीन राजधानी सुलतानपुर में विजयादशमी के अवसर पर अति भव्य-उत्सव मनाया जाता है।

५. सागर की शीतल हवा तथा नारियल के वृक्षों के हरे-भरे उद्यान केरल की सृष्टि-सौंदर्य की वृद्धि करते हैं। आठों-प्रहर उद्यान में परिश्रम करनेवाले केरलवासी नवीन वर्ष के आगमन पर 'ओनम' त्यौहार मनाते हैं। केरल-कन्याएँ विशाल मैदान में फूलों का एक वर्तुल बनाती हैं। उसे 'आटाप्पू' कहते हैं। इसीके भीतर नृत्य होता है। नृत्य में भुट्टे के पौधों के उगने से लेकर पककर तैयार होने तक की समस्त स्थितियाँ हस्त-क्रियाओं से दर्शाई जाती हैं। इसे 'काई कोटकल्ली' कहते हैं। इसी प्रकार 'कोलट्टम्' नामक एक नृत्य में नर्तिकाएँ लाठियाँ लेती हैं। मलबार के मोपलों के प्रिय-नृत्य का नाम नाम है 'मोपला कली'। इस नृत्य के समय मोपला मुसलमान प्राचीन लोक-गीत साभिनय गाया करते हैं। इस नृत्य की विशेषता है 'डंडी' का उपयोग। इसमें उत्साह अधिक मात्रा में दृष्टिगत होता है। केरल का अति प्राचीन लोकनृत्य है 'पुलयर कली' नृत्य। इसमें केरलवासियों की शौर्य-परंपरा का संरक्षण किया गया है। इसमें प्रमुखतः पुरुष ही सम्मिलित होते हैं। यह नृत्य हरिजनों का होता है। केरल में हरिजनों को पुलय कहते हैं। कथाकली की प्राकृत आवृत्ति है केरल की 'ओट्टम तुल्लाल'। इसका अर्थ है दौड़ना तथा कूदना। वर्तमान में यह विशेष लोकप्रिय नहीं क्योंकि इसमें सारा भार एक ही व्यक्ति पर होता है।

६. राजस्थान के लोकनृत्य सरस तथा वैविध्यपूर्ण हैं। राजस्थान का अति लोकप्रिय नृत्य है 'घुमर'। दिवाली तथा होली के अवसर पर राजस्थानी युवतियाँ यह नृत्य करती हैं। पूर्व राजस्थान में एक समूह-नृत्य अति लोकप्रिय है। जिसे 'गिंदाड' कहते हैं। होली के १५ दिन पूर्व यह नृत्य होता है।

'खयाल' राजस्थान का ४०० वर्ष पूर्व प्राचीन नृत्य-नाट्य है। मारवाड़ 'कठपुतली' नृत्य के लिये प्रख्यात है। कठपुतलीवाला 'गुड़ियाँ' नचाता है और उसकी पत्नी ढोलक बजाते हुए गीत गाया करती है। 'थर' की मरुभूमि के निवासी, गुरु गोरखनाथ के अनुयायी हैं। वे 'अलाव' बनाते हैं, ढोलक बजने लगती है, तुरही बजती है और नृत्य आरंभ होता। यह 'अग्निनृत्य' विशेषतः गुरु जसनाथ की पुण्यतिथि के अवसर पर मार्च-अप्रैल मास में होता है। राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों के भील लोग विविध-प्रकार के समूह-नृत्य करते हैं। जिनमें विशेषतः युद्ध-नृत्य समाविष्ट रहते हैं। 'बाग्रीया' नृत्य एक विशिष्ट जाति किया करती है जिसे बाग्रीया कहते हैं। इसमें स्त्री नाचती है और पुरुष 'चांग' बजाता है। ● ●



अनुक्रमणिका



अनुक्रमणिका


शिकार
कथाकली
केरल



[अनुक्रमणिका](#)

(साँच को आँच अनेक ! पृष्ठ १२७ से आगे)

उल्टे घड़े पर पानी सिद्ध हुई। उन्होंने 'सांच बराबर तप नहीं' का गुरु-मन्त्र पढ़कर एक खासा तगड़ा धर्मोपदेश झाड़ दिया। वेदों और पुराणों की भारी-भरकम मिसालों के सामने भला हमारी क्या चलती।

लम्बी बहस और काफ़ी गरमा-गरमी के बाद यह तय पाया गया कि एक दिन बारह घण्टे तक सत्य का प्रयोग कर देखा जाय। उनकी रटन थी कि बारह घण्टे में ही हम इतना पुण्य तो कमा लेंगे कि हमारा संदिग्ध परलोक कुछ सुधर जायेगा, और हमारा दृढ़ विश्वास था कि बारह घण्टे की इस बेवकूफ़ी से हमारा इहलोक बारह वर्षों के लिए कण्टकाकीर्ण हो जायेगा।

अगले हफ्ते एक दिन सत्य का सवेरा हुआ। चाहते थे कि देर तक सोते रहें, क्योंकि रात सेकण्ड शो देखकर देर से विस्तर की शरण ली थी, और बाद में जो घण्टे खाट पर गुज़रे थे वे भी बिजली का पंखा खराब होने और गर्मी अधिक होने से खास मजे में नहीं कटे थे। लेकिन भार्या को हमारा यह आलस्य एक आँख नहीं सुहाया। सात बजते-न-बजते वे दुश्मन के तोपखाने की तरह कमरे में आ धमकीं और हमें निर्जीव लट्ठ की तरह झंझोड़ते हुए बड़बड़ाईं, "दोपहर होने को आई, आज क्या सोते ही रहोगे।"

सुबह सात बजे जिस भाग्यवान् की दोपहर हो जाय, उससे बहस न करने में ही कल्याण समझकर हमने सिर्फ इतना ही कहा, "हाँ हाँ, भवानी; उठ रहे हैं।"

आँखें नींद की कमी की वजह से कड़ुवा रही थीं, लेकिन उन्होंने ललाई का ग़लत अर्थ लगाते हुए पूछा, "रात कहीं भंग छनी थी?"

"नहीं तो!" हमने प्रतिवाद किया, "ठीक से सो नहीं सके थे, इसलिए आँखें चढ़ रही हैं।"

"सो क्यों नहीं सके?" उन्होंने इस तरह सवाल किया जैसे कोई सेशन्स न्यायाधीश पहले क़त्ल के मुकदमे में फाँसी की सज़ा सुनाने से पहले अपराधी से पूछ रहा हो कि उसने खून क्यों किया।

हमें मालूम नहीं था कि सत्य बोलने के लिए हमें इतनी कठिन शुरुआत करनी पड़ेगी; लेकिन क्या करें, कसम खा चुके थे इसलिए साहस बटोरकर कहना पड़ा, "तुम रात भर इस तरह खर्राटे भरती हो मानों कान पर कोई चने दल रहा हो।"

"मेरी वजह से आपकी नींद खराब हुई?" वे आसमान से गिरीं।

हम अपना सारा दिन लड़ाई-झगड़े में नहीं बिताना चाहते थे, अतः हमने इस अप्रिय-प्रकरण को हँसी में उड़ाकर यहीं समाप्त करने की गरज से दो-एक मीठी बातें कहने का उपक्रम किया, लेकिन वे इतनी खफा हो गई थीं कि हमारी ज़बान खुलने से पहले ही आग-बबूला होकर पाँव पटकती हुई बाहर चली गईं।

सारी सुबह उनकी भौंहों के गाण्डीव तने रहे। जब हम पहर दिन चढ़े खाना खाने पहुँचे तब भी उनके तेवर तलवार हो रहे थे। सहमे हुए हम आसन मार बैठे।

आज उन्होंने कोई नयी तरह की सब्जी बनायी थी, जिसके बारे में पूछे बिना रह सकना असम्भव था, अतः उन्होंने हमारी ओर न देखते हुए भी हमसे पूछा, "खाना कैसा लगा?"

तारीफ के अतिरंजित वाक्य गले तक आये तो हमें याद आ गया कि हम सच बोलने की क़सम खाये हुए हैं; हमने हरिश्चन्द्र मार्का उत्तर दिया, "पेट तो किसी तरह भर ही गया।"

"क्या मतलब?" वे एकदम भड़क उठीं, "इतनी मेहनत से नयी तरकारी बनाई है, और जनाब यों खा रहे हैं जैसे मुफ्त पर एहसान कर रहे हों।"

हमने फिर भी शान्ति का दामन नहीं छोड़ा, ठण्डे रह कर ही उत्तर दिया, "खाने की बुराई करने का हमारा विचार हो तो क़सम ले लो; मगर तुम पूछ ही बैठीं तो फिर क्या करते।"

उन्होंने आँचल कमर में खोंसकर युद्ध-मुद्रा बना ली और हमें खतरनाक नज़रों से घूरती हुई बोलीं, "आज क्या सपने में बिल्ली लांघकर उठे हो जो सुबह से ही बात-बात पर उलझने की कोशिश कर रहे हो?"

"सुबह क्यों, हम तो दोपहर को उठे थे।"

थाली पर से उठते-उठते हमने देखा कि उन्होंने चिमटा संगीन-चढ़ी बन्दूक की तरह थाम लिया है और मारे क्रोध के उनके नथुने फड़क रहे हैं।

जोरू के हाथ की मार खाने का हमारा कतई इरादा नहीं था, इसलिए हम गुसलखाने में हाथ धोकर पान खाने के लिए भी अन्तःपुर नहीं लौटे, उधर से ही दफ्तर चले गये।

दुर्भाग्य नहीं तो कुसंयोग कहिये कि दफ्तर के बड़े बाबू भी उस दिन

अनुक्रमणिका





शायद अपनी भार्या से झगड़कर आये थे, इसलिए उन्होंने आते ही अपने मातहतों पर भड़ास निकालनी शुरू की। दो-चार चपरासियों और छोटे क्लर्कों पर डाँट-फटकार पड़ चुकी तो हमारे नाम सम्मन आया।

तलबी होते ही हम सामने पहुँचे; प्रश्न हुआ, "आज आप कितने बजे दफ्तर पहुंचे थे?"

हाजरी का रजिस्टर उनकी मेज़ पर रखा और हमने अभी तक उस पर दस्तखत नहीं किये थे। कहने को हम लेट होते हुए भी बड़े बाबू से पाँच मिनट पहले पहुँचे थे, लेकिन सच बोलने की कसम इतनी जल्दी नहीं तोड़नी थी, इसलिए बोले, "जी १०.२० पर।"

"आज फिर देर से!" बड़े बाबू फुफ़कारने लगे, "आपने तो रोज़ाना लेट आने की आदत ही बना ली है।"

"जी, आज बस चूक जाने से बेबस हो गये थे।" हमने उनके आरोप के रोज़ानावाले अंश को ओवरलुक करते हुए आज के लिए सफ़ाई पेश की।

बड़े बाबू ने नाक पर फिसल आये ऐतिहासिक चश्मे के ऊपर से हमें कड़ी नज़रों से देखा, फिर गुस्से में मूँछ चबाई, और बोले, "मैं कुछ नहीं जानता। बस चूक गई थी तो टैक्सी में आते, हवाई जहाज चार्टर कर लेते, मगर लेट क्यों हुए। आपकी एक छुट्टी कटेगी।"

सिर झुकाये हम अपनी जगह पर लौट आए, और सामने रखे फाइलों के पहाड़ पर चढ़ाई शुरू की।

तभी बड़े साहब का चपरासी प्रकट हुआ और सलाम झाड़कर बोला, "साहब ने कहा है, मिस डौली आयें तो कह दिया जाय कि साहब दौरे पर हैं।"

मिस डौली पहले साहब की सेक्रेटरी थीं, लेकिन उन्होंने अपने आपको इतना सस्ता बना दिया था कि जल्दी ही साहब का मन उनसे और उनकी प्यार भरी सेवाओं से भर गया और उनका हिसाब चुका दिया गया। लेकिन मिस डौली के पास साहब के कुछ खत मौजूद थे, जिनके बल पर वे मौके-बे-मौके साहब की नकेल तानती रहती थीं। साहब उनसे छिपना चाहते हैं—यह हम सभी को मालूम था।

उस दिन हमारे ग्रह सचमुच शीर्षासन कर रहे थे। चपरासी की पीठ मुड़ी ही थी कि मिस डौली आ पहुँची। "हलो, मिस्टर ठाकुर। हाऊ डू यू डू?"

"अ—अच्छे ही हैं।" हमने काँपकर हकलाते हुए उत्तर दिया।

हम मन-ही-मन राम मना रहे थे कि वे साहब के बारे में हमसे न पूछें, वरना सच बोलकर हम मुसीबत मोल ले लेंगे, लेकिन सिर्फ़ स्वार्थ-वश टेर लगानेवालों की भगवान कब सुनता है! हमारी प्रार्थना भी अकारथ गयी। मिस डौली ने भीतर आते हुए पूछा, "मिस्टर प्रृथ्वीराज तो अपने कमरे में ही होंगे?"

क्षण भर को हमें लालच हुआ कि चपरासी का वाक्य दोहराकर इस चक्कर से बच निकलें, लेकिन कसम तोड़कर हम अपनी ही नज़रों में गिरना भी नहीं चाहते थे; इसलिए हमने जानते-बूझते अपने पांव पर कुल्हाड़ी मारी, "जी हाँ, भीतर ही हैं।"

कठिन सच बोलकर जो हम गर्व से फूले तो हमारा सीना कई इंच चौड़ा हो गया, लेकिन साथी कर्मचारी हमारी हिम्मत की दाद न दे सके। उल्टे उन्हें शंकायें होने लगीं।

मिस डौली के जाते ही मुरारी बाबू बोले, "मौत ने धक्का दिया है क्या?"

"गरमी ज्यादा है," रमा बाबू ने अपनी तूती बजायी, "थोड़ी बरफ़ मंगवाकर खोपड़ी पर रखो। भेजे का टेम्परेचर चढ़ गया है।"

अक्सर मौन रहनेवाले सुकुमार घोष भी आज तो बोले बिना न रह सके, "कोई दूसरी नौकरी तलाश कर ली है, महाशय?"

इतने लोगों का ध्यान आकर्षित कर हम घमण्ड से फूलकर कुप्पा हो गये। हमने नाटकीय ढंग से कहा, "आज से हमने बिल्कुल सच बोलने का निश्चय कर लिया है।"

मुरलीधर खजान्ची ने चश्मा ठीक करते हुए अफ़सोस के साथ हमारा नख-शिख सर्वे किया— फिर एक ठंडी सांस लेकर कहा, "तुम्हारा हिसाब पहले से ही जोड़े लेता हूँ।"

हम और कुछ कहें उससे पहले ही साहब का चपरासी हमारा वारण्ट लेकर आ पहुँचा।

कमरे में घुसते ही साहब ने हमारा जलती आँखों से एक्स-रे किया, फिर निहायत ज़हरीली आवाज में कहा, "मिस्टर ठाकुर!"

"हाज़िर हैं, सर!" हमने शरीर और मन की कँप-कँपी पर काबू पाने के लिए दांत भींचकर धीरे से हाज़िरी बोली।

"डौली के आने के पहले मेरा चपरासी आपसे मिला था?" साहब ने चार्ज शीट का पहला आरोप पढ़ा।

मौन स्वीकृति का लक्षण होता है, यह सोचते हुए हमने दम साधकर जुर्म का इकबाल किया।

साहब डौली की बात पर क़ायदे से हमें कुछ नहीं कह सकते थे, इस-लिए उन्होंने कुएँ के बजाय हमें खाई में ढकेलने की नीयत से कहा, "मून शाइन कम्पनी की दोनों चिट्ठियाँ कहाँ हैं?"

"जी, वे तो हमने फाड़कर फेंक दीं!" हम सोच रहे थे कि सत्यवादी युधिष्ठिर तथा राजा हरिश्चन्द्र को भी इस प्रकार की अग्नि-परीक्षा नहीं देनी पड़ी होगी।

"क्या-क्या कहा?" साहब गुस्से की बौखलाहट में उछलकर खड़े हो गए।

हमने पलायन की तैयारी में एक क़दम पीछे हटते हुए उत्तर दिया, "ठीक ही अर्ज़ किया है, सर।"

साहब ने लिफ़ाफे खोलने की प्लास्टिक की छुरी मज़बूती से पकड़ते हुए पूछा, "चिट्ठियाँ तो मैंने आपको डिस्पोज़ल के लिये दी थीं?"

"सम्बंधित कागज़ात न मिलने पर यहाँ चिट्ठियों के डिस्पोज़ल का यह तरीका है?" हमने प्लास्टिक की छुरी के वार से बचने के लिए कुर्सी को ढाल की तरह उपयोग करने की गरज से एक कुर्सी पास खिसका ली।

साहब का मुखारविन्द क्रोध की तमतमाहट से बीरबहूटी हो गया। उन्होंने दांत पीसकर कहा, "मिस्टर ठाकुर, आपको १५ दिन के लिए सस्पैण्ड किया जाता है।"

"जी, इस अर्से में हम हेड-क्वार्टर छोड़ सकेंगे?" हमें याद आ





गया कि सारी खुदाई से दुश्मनी मोल न लेने के लिए हमें जोरू के भाई की शादी में ससुराल जाना है "स्टेशन-लीविंग की आज्ञा मिल जाती तो—"

"आपने ज्यादा गुस्ताख़ी की तो मैं आपको डिसमिस कर दूँगा।"

साहब ने छुरी को इस तरह घुमाया मानों किसी काल्पनिक बकरे की गरदन झटका पद्धति से कलम कर रहे हों।

"ज़रा ससुराल जाना था, सर।" हमने डरते-डरते गुस्ताख़ी के कारण पर प्रकाश डाला।

साहब ने दूसरे बकरे की गरदन उड़ाते हुए कहा, "जेल जाना हो तो यहाँ खड़े रहिए; वरना गैट आउट!"

'गैट आउट' की दहाड़ लगाकर वे दफ़्तर की जीर्ण-शीर्ण इमारत को न कंपाते तब भी हम विदा ले ही रहे थे, क्योंकि बड़े घर जाकर चक्की पीसने के लिए हम कतई तैयार नहीं थे, लेकिन वे हमें जाने भी कहाँ दे रहे थे। उनकी आज्ञा का पालन कर अभी हमने कमरे से बाहर पाँव रखा ही था कि उनकी आवाज की एक और गोली हमें आकर लगी, "मिस्टर ठाकुर।"

हम अबाउट-टर्न करके फौरन कमरे में दाखिल हुए और उनके सामने जा खड़े हुए! वफादार कर्मचारी होने के नाते हम उन्हें राय देना चाहते थे कि इतने जोर से बोलने से उनके गले को नुकसान होने का खतरा तो खैर है ही, पुराने-भवन की छत बैठ जाने का भी अन्देशा है; लेकिन प्रकट में हमने जो शब्द कहे थे, वे थे, "यस सर?"

"यह कुर्सी आप कहाँ लिए जा रहे हैं?"

हमें अचानक ध्यान आया कि छुरी के वार से बचने के लिए जिस कुर्सी को हमने ढाल बनाया था, हमारे हाथ उसे अभी तक मजबूती से पकड़े हुए हैं।

हम दावे के साथ कह सकते हैं कि यदि साहब उस समय बोल सकते तो उनके मुंह से पहला वाक्य यही निकलता कि 'यू आर डिस-मिस्ड!' लेकिन उन्हें मौका नहीं मिला। किसी बड़ी कम्पनी का मैनेजर ठीक उसी समय उनसे भेंट के लिए आ पहुँचा।

हमने कुर्सी को धता बताकर प्राणरक्षा के इस मौके से फ़ायदा उठाया और रफूचक्कर हो गए।

सांझ को थके-हारे घर पहुँचे तो 'वे' दरवाजे पर ही खड़ी थीं। पता नहीं सुबह की बातें वे दरअसल भूल चुकी थीं, या नई साड़ी में सजे अपने रूप की प्रशंसा सुनने की उनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने गुस्से का आभास तक हमें नहीं होने दिया और 'मोना—लिसा' अन्दाज से मुस्कराती हुई बोलीं, "कैसी रही यह साड़ी? दोप-हर को ही ली है फेरीवाले से।"

सच बोलकर कटुता फैलाना हम नहीं चाहते थे, इसलिए टालते हुए बोले, "नहा—धोकर ताज़ा होलें, फिर बताएंगे।"

"नहीं नहीं, पहले ही बताना पड़ेगा।" बच्चों की तरह मचलकर उन्होंने हमारी राह रोक ली।

उनकी भुवन—मोहिनी मुस्कान के भविष्य पर हमें तरस आ गया, इसलिए हमने कड़वे सच पर आवाज़ की मिठास का शुगर-कोटिंग करते हुए आहिस्ता से पूछा, "तुमने कभी पूँछ-कटी बँदरिया देखी है, डार्लिंग?"

श्रीमतीजी की मुस्कान काफ़ूर हो गई और वे आवे में पकी ईंट

नई—इसापनीति



एक परिवार के बालक हमेशा अधिकारों के लिए लड़ा करते थे। परिवार के प्रमुख दादा ने नीति, समन्वय तथा पारिवारिक एकात्मता के संबंध में अनेक बातें सुनाकर समझाया-बुझाया; परंतु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। मन-मुटाव दिन-दिन बढ़ने लगा। अंत में एक दिन दादा वन से लकड़ियाँ लाये और परिवार के सब व्यक्तियों को बुलाया। लकड़ियों का वह गुच्छा उन्होंने अपने सभी लड़ाकू पुत्रों को दिया और कहा वे उस पर अपनी शक्ति आजमाएँ। काफ़ी प्रयत्न करने पर कोई भी पुत्र तोड़ना तो दूर रहा उस गुच्छे को मोड़ भी नहीं पाया। फिर दादा ने उन लकड़ियों को अलग-अलग किया और हर एक को एक-एक लकड़ी देकर अपनी शक्ति लगाने के लिए कहा। हर एक लड़ाकू पुत्र ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कम-अधिक समय में लकड़ी को तोड़ा। इस प्रत्यक्ष उदाहरण से दादा ने पारिवारिक एकात्मता का महत्व उनके गले उतार दिया और उनसे प्रार्थना की कि वे एक-दूसरे के रास्ते में रोड़ा अटकाने का काम न करें।

की तरह लाल-ताती होकर बोलीं, "देखो, समझाए देती हूँ! हाथ से रोटियां ठोंकनी हों तो मुझसे ऐसा मज़ाक करना।"

हमारा अनुमान था कि हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदलकर हम चाय की प्याली के लिए चौके में हाजरी देने पहुँचेंगे, तब तक उनका पारा उतर लेगा लेकिन हमारी यह धारणा सौ फीसदी ग़लत साबित हुई। उनका बैरोमीटर अभी तक ख़तरे के बिन्दु पर था। हमें देखते ही बोलीं, "उल्टी कमीज़ पहने हो, छज्जू के बापू।" फिर कुछ सोचकर कहने लगीं, "बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?"

"बुरा मान भी जायं तो क्या; मजबूरी है, तुम्हारे साथ तो निभानी ही है।" हमने बुझी हुई आवाज़ में कहा। "कहो, क्या बात है?"

"सच पूछो छज्जू के बापू, तो तुममें अक्ल बिल्कुल भी नहीं!"

"शादी के पहले तक तो थी," हमने उत्तर दिया, "लेकिन तुम जानो, सोहबत का असर तो होता ही है"

"क्या मतलब?"

"यही कि साथ जो रह रहे हैं वर्षों से।"

सुबह से वे बराबर हार रही थीं। इस बार भी दाल नहीं गली तो उन्होंने अमोघ अस्त्र चलाया, "पाँच बजे घर में आए हो। आज तो शनिवार है, दफ्तर डेढ़ बजे ही बन्द हो गया होगा। कहाँ रहे इतनी देर?"

दफ्तर में ही देर हो जाने का बहाना इस वक्त संकट टाल सकता था, लेकिन हमें सच जो बोलना था, इसलिए हमने 'आ बैल मुझे मार' की उक्ति के अनुसार चल कर मुसीबत को निमंत्रण दिया, "सरोज मिल गई थी रास्ते में; चाय पिलाने के लिए घर खींच ले गई।"

"हाँ हाँ। घर और में तो तुम्हें काटने को दौड़ते हैं न। सौतों के साथ गुलछर्रे उड़ाया करो।" उन्होंने चाय की केतली इस जोर से जमीन पर पटकी मानों वह उनकी सौतों में से एक हो।

हम कुछ बोलते तो झगड़ा होता, और झगड़े से उनके दिल के गुबार निकल जाते; हम चुप ही रहे। हमें मौन-व्रत धारण किए देख उनकी झुंझलाहट यहाँ तक बढ़ी कि वे आँचल से मुंह ढांपकर आँसू बहाने लगीं। इस पर भी हम अपनी ज़बान होल्ड किये रहे तो वे सिसकियों के बीच बोलीं। "हमें मैके पहुँचा दो।"

"तुम नाहक रो-रोकर हलकान हो रही हो।" हमने समझाया, "मैके जाने की धमकी का भला इस वक्त कोई असर पड़ सकता है जब कि साले की शादी में दो दिन बाद तुम्हें ही नहीं, हमें भी वहाँ चलना है।" उन्हें खिझाने में दर-असल हमें मज़ा आ रहा था।

"नहीं नहीं। मैं तो आज ही जाऊँगी। उन्होंने रूमाल में नाक का बिगुल बजाकर आँसुओं से सराबोर आवाज़ में कहा, "सत्यपाल भय्या को तार दे दो।"

"उन्हें अपने जानवरों से ही फुरसत कहाँ होगी?" हमें सत्यपाल भाई का कबूतर-प्रेम याद आ गया।

"तो क्या वे चौबीसों घण्टे ही जानवरों से जूझते रहते हैं?"

और क्या। हमारा तो खयाल है भगवान थोड़ी सी भूल कर गया जो उन्हें दुम नहीं दी; वरना वो खुद भी खासे जानवर ही हैं?"

"क्या कहा? जरा फिर तो कहना।" श्रीमती जी चोट खाई हुवेल मछली की तरह तड़फ उठीं।

"ठीक तो कह रहे हैं" हमने आग को पंखा झला।

"दर-असल उन्हें ही देखकर हमें डारविन की थ्योरी पर विश्वास हुआ है कि आदमी बन्दरों का वंशज है।"

जीत की आशा धूमिल देख वे उठ खड़ी हुई। "ऐसी ही बात है तो मैं छज्जू को लेकर चली जाती हूँ। मेरे भाई-बन्द बन्दर ही सही, लेकिन विश्वास रखिए, उनमें से किसी का मुँह अब आपको नहीं दिखेगा। आपको कसम है जो मेरे मरे पर भी आवें।"

मामला दर-असल संगीन हो गया था।

तभी घड़ी ने सात बजाए, हमें याद आया कि सुबह सात बजे से शुरू हुए सत्य-भाषण के बारह घण्टे समाप्त हो चुके हैं। हमारी कसम भी यही थी कि आगे भले ही सत्य से परहेज करें, कम से कम बारह घण्टे तो झूठ के करीब भी नहीं फटकेंगे।

सत्य से पहले ही जी भर चुका था—उन्हें गृह-त्याग की तैयारी करते देखा तो रहा-सहा जोश भी हिरन हो गया। पिछली बार अकेले रहने की मनहूसियत मन के पर्दे पर उभर आई और खुद रोटियाँ सेंकने की विभीषिका सामने आ खड़ी हुई। उनके विरह में घर सचमुच भूतों का डेरा हो जाता है; अतः हमने दौड़कर अपनी पूरी लम्बाई उनके सामने ज़मीन पर नापी और उनके चरणकमल थामकर शहद सी मीठी आवाज़ में उलाहना दिया, "भला कोई मज़ाक-मज़ाक में भी यों बुरा मानता है, डार्लिंग?"

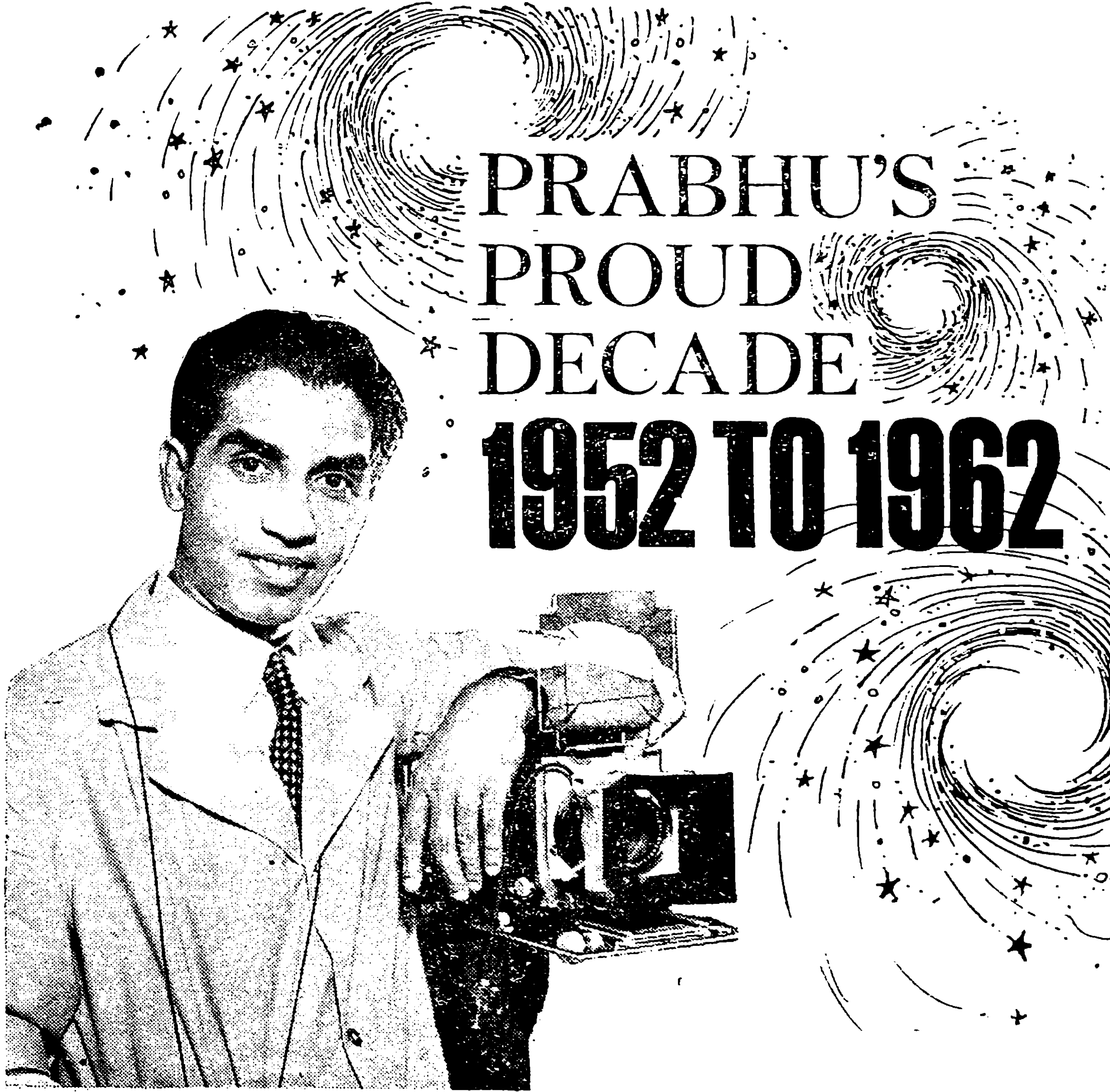
इस घरेलू नाटक पर हम यहीं यवनिका गिराते हैं, क्योंकि उन्हें मनाने के लिए उनकी तथा साले साहब की और उनकी सात स्वर्गवासी पीढ़ियों की झूठी तारीफों में जमीन-आसमान के जो कुलाबे मिलाने पड़े उनका पूरा विवरण लम्बा हो जाएगा। संक्षेप में यों समझ लीजिए कि बारह घण्टे सत्य बोलने का प्रायश्चित हमें सैकड़ों झूठ बोलकर करना पड़ा, शाम को होटल में खाना और सेकेण्ड शो के पैसे खर्च कर मुफ़लिसी में आटा गीला करना पड़ा, सो अलग। और दान के बाद जिस प्रकार दक्षिणा जरूरी हो जाती है, उसी प्रकार गृह-कलह के बाद जब पति-पक्ष हथियार डाल देता है तो मुकम्मिल सुलह के लिए कोई उपहार भी आवश्यक हो जाता है। हमें भी मित्र से रोकड़ उधार लेकर नई साड़ी लानी पड़ी, तब कहीं घर में सहअस्तित्व संभव हो सका।

घर में तो फिर भी बात बन गई, टूटे तार जुड़ गए,—क्योंकि हमारी 'वे' हमसे बेहद प्यार करती हैं; लेकिन दफ़्तर के बड़े साहब को हमसे ऐसा कोई रेशमी लगाव नहीं था, इसलिए वहाँ दण्ड से बच न सके। सस्पैण्ड या डिसमिस तो ख़ैर नहीं हुए; लेकिन साहब की नज़रों से सदा के लिए गिरे हुओं की ब्लैक-लिस्ट में ज़रूर आ गए। साथ ही साहब के मन में यह शक भी कर गया है कि हमारे कुछ दिमाग़ी पुर्ज़े गायब नहीं तो ढीले ज़रूर हैं।

अनुक्रमणिका







STUDIO R.R. PRABHU

110 ZAVERI HOUSE MEADOWS STREET BOMBAY 1 Phone 25[illegible]919

शिवाजी राजा नीचे झुके, माताजी के पाँवों पर उन्होंने सर रखा, जिजाबाई ने उन्हें हृदय से लगा लिया, पीठ सहलाई। आसपास की शांति भंग हुई और माता के मुँह से दो शब्द फूट पड़े, "विजयी भव"...



—दत्ता कदम

वक्त कीमती था और इसीलिये दूसरों के ऊपर भरोसा रखने के बदले शिवाजी महाराज ने खुद किले का इन्तजाम किया। चौराहे हुक्म के मुताबिक रोक दिये गये थे। इन चौराहों की देख-भाल करने के लिये उन्होंने रघुनाथ बल्लाळ सबनीस को नियुक्त किया था। उनकी पीठ ठोंकते हुए शिवाजी महाराज ने उन्हें सतर्क किया था। तब सबनीस बड़े अदब से बोले, "स्वराज्य-धर्म-स्थापना में बुद्धि और जीत दिन-ब-दिन ज्यादह होती जा रही हैं। महाराज, ऐसे समय में अफ़ज़लखान की तो बात ही क्या है?"

मुस्कराते हुए शिवाजी महाराज ने कहा, "दूसरों की बात का जवाब हमारी कलाइयों में है। बेकार के शब्दों का जाला बनाने से क्या फायदा? जो काम जँचता है उसे दिल से किया जाय। इसके बग़ैर दूसरा रास्ता नहीं।"

शिवाजी महाराज की इन बातों को सुनकर सबनीस ने सोचा कि वह ऐसा सवाल न लाता तो ठीक होता। उसने अनजाने में शिवाजी महाराज को सलाम किया। उसके सलाम को मंजूर करते हुए शिवाजी महाराज ने नेताजी पालकर से कहा, "सेनापति, खान के ज़मीन पर गिरते ही तोपों और सेना को नष्टकर देना चाहिये। घाट से सेना को आने देना नहीं चाहिये। बड़े-बड़े पेड़ों को तोड़कर ज़मीन पर गिरा देना चाहिये और रास्ते रोक देने चाहिये। चढ़ आये तो उन्हें वैसा करने से रोकना चाहिये।

पालकर ने हुक्म को मान लिया शिवाजी महाराज ने सब लोगों का उत्साह जब देखा तब उनका गौरव करते हुये वे बोले, "तुम सब सूरमा हो। हमारा सारा भरोसा तुम पर है। एक मस्त हाथी है और उसके सर पर मणि है मगर कोशिश करके उस पर चढ़ना मनुष्य अनुकूलता से ही कर सकता है। यह राज्य जितना बढ़ता जायगा उतना सारा तुम्हारा ही होगा।"

यह सुनकर मोरोपंत पेशवा से लेकर त्रिंबक भास्कर तक सभी उत्साहित हुये। शिवाजी महाराज ने फिर से कहा, "हमने भी होड़ लगायी है। खुदा जरूर कामयाबी देगा। —और किसी भी कारण से हमारे रास्ते में कुछ मुश्किलें आ जायें तो बिना डरे, तय किये मुताबिक खान को और उसकी फौज को डूबा देना चाहिये। और अपने राज्य की हिफ़ाज़त करनी चाहिये।"

शिवाजी महाराज का यह कहना हर-एक के दिल में घर कर गया। उनके मुँह से मुश्किलों की बात निकलते ही कुछ लोगों की आँखें पानी से भर आईं। मोरोपंत पेशवा से रहा नहीं गया। उन्होंने कहा, "महाराज, आपके दिल की शक्ति महान है। आप मुश्किलों की बात दिल में न लायें।"

चारों ओर देखकर शिवाजी महाराज ने जवाब दिया, "पेशवा, जो कुछ बुरा हो सकता है उसको भी दिल में पैदा होने देना चाहिये। हम यहाँ से चले भी जायें तो स्वराज्य रहेगा। भावना के वश होकर हम अविवेकी न बनें।" शिवाजी महाराज के ये शब्द नगाड़े की आवाज की

अनुक्रमणिका

तरह घूमे और वीणा की झंकृति की तरह झंकृत हुए। इनके व्यक्तित्व के सामने पेशवाओं का कुछ चल न सका।

नाके और चौराहों के इन्तजाम की देख-भाल करके महल की तरफ लौटते समय शिवाजी महाराज एक जगह रुके। सामने वाई दिखाई दे रहा था। बाईं ओर खड़े सैनिकों से उन्होंने कहा, "यहाँ बुर्ज़ का होना हमारे लिए फायदेमंद होगा। हमारी नज़र में यह जगह आज तक आयी क्यों नहीं भला?"—और शिवाजी महाराज इसी जोश में आगे बढ़े और बोले, "प्रताप, तुम्हारी गोद में बैठे हुए हम बच्चे हैं। वक्त आने पर आप हमें जरूर सँभाले। हमें अपनी गोद में बिठायें।" शिवाजी महाराज ने बड़े आदर के साथ हाथ जोड़कर नमस्कार किया। पेशवा ने पूछा, "महाराज, आपने नमस्कार किसे किया?" महाराज ने कहा "आज प्रतापगड़ हमारे लिये पिता की तरह है और उसीको नमस्कार किया मैंने।" सबको ऐसा लगा कि राजा का अपना खास वर्ताव होता है और वह राजा ही कर सकता है, दूसरा नहीं।

शिवाजी महाराज महल में आये। तय किए अनुसार वकील की तरफ़ से खान के पास जाने की उन्होंने तैयारी करनी शुरू की। सेवक को बुलाने के इरादे से उन्होंने ताली बजाई मगर खुद माता जिजाबाई ने कपड़े हाथ में लिये प्रवेश किया। शिवाजी महाराज ने पूछा, "माताजी, आपने इतनी तकलीफ़ क्यों की?"

जिजाबाई ने कहा, "सभी सेवक हाज़िर हैं, मगर बेटे, यह मौका ही ऐसा है जब कि सेवक वस्त्र न दे। श्रीभवानी ही हमारे पीछे खड़ी हैं तो फिर हमें डर काहे का? बड़े भाई को दंगाखोरों ने मार डाला उसका बदला जरूर लो। सैनिकों की पूरी वीरता के दर्शन से मेरी आँखों की प्यास तो बुझा दो। तुम जो कुछ तय करते हो, उसमें ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करता है। तुम तो मेरी कोख से पैदा हुए एक कुलदीपक हो। वीर पुत्र की माता बनना ही एक बड़ी मोक्ष-प्राप्ति है।"

जिजाबाई के इन शब्दों से शिवाजी की आँखें भर आईं मगर उन्होंने अपनी भावना को प्रकट होने नहीं दिया। वह आगे बढ़ीं, उन्होंने लड़ाई पर जाने के लिये आवश्यक सारी पोशाक अलमारी से निकाली। 'बाघनाखून' भी निकाले। जिसने बच्चे को प्रत्यक्ष जन्म दिया वही माता आज मृत्यु से चार हाथ करने को भेजने के लिये तैयारी करने लगी। माता के अलौकिक तेज से शिवाजी राजा बड़े ही प्रभावित हुए।

"माँजी, यह सारी पोशाक पहनने के लिये ही निकाल रही हैं न आप।" अलमारी से निकाली हुई चीजों की ओर देखते हुए राजा ने पूछा—

"फिर क्या विचार है तुम्हारा?"

"खान तो हमेशा की पोशाक में ही भेंट के लिये आनेवाले हैं।"

"यही न? परंतु उसके छल-कपट को तुम्हें ध्यान में रखना चाहिए। भेंट के लिये पूरी तैयारी के साथ जाओ। मैं अपने हृदय को कितना भी कठिन बना लूँ, तो भी माता के हृदय की ममता कभी कम नहीं होती।"

शिवाजी महाराज ने तुरंत जिरहबख्तर और अन्य पोशाक पहन ली। ढाल को पीठ की तरफ बांध लिया। बाघनाखून ले लिये। नमस्कार करके भवानी तलवार को स्पर्श किया। उनका रूप भयंकर दिखने



अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

लगा मानों भवानी ने ही स्वयं उनके शरीर में प्रवेश किया हो। अपनी उँगलियाँ शिवाजी के चेहरे के पास जिजाबाई ले गई और दूसरे ही क्षण अपने गले का हार उनके गले में डाल दिया।

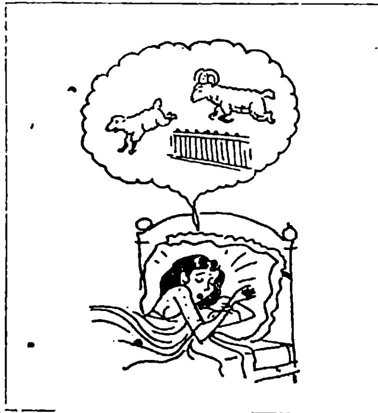
"यह क्या कर रही हैं माँजी?" माता की आँसू से भरी आँखें देखकर शिवाजी ने पूछा।

"आज तुम्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिये। भगवान पूरी सफलता देगा।"

शिवाजी राजा झुक गये, माताजी के पाँवों पर उन्होंने अपना सर रख दिया। जिजाबाई ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया, पीठ सहलाई। आसपास की शांति भंग हुई और माता के मुँह से दो ही शब्द फूट पड़े "विजयी भव"।

अपनी पत्नी को धीरज बँधाकर नन्हें संभाजी को प्यार करके और भवानी माता को नमस्कार करके शिवाजी महाराज अपने साथियों के साथ महल के दरवाजे के पास आये। वहाँ का वातावरण इतना करुणामय हो गया था कि करुणा भी शायद इसे देखकर थक जाती। युद्ध का नगाड़ा बज उठा।

शिवाजी महाराज ने चारों ओर नज़र फेरी लेकिन अपनी प्रिय घोड़ी कहीं भी नज़र न आई। उसके बदले उनके सामने पालकी आयी। शिवाजी राजा ने तुरंत मोरोपंत से पूछा, "पेशवा, किले के पास माताजी तो आनेवाली नहीं हैं तो फिर यह पालकी काहे के लिये?"



"महाराज, आज तक मराठों के लिये कोई राजा न था। आज आप मराठों के राजा की हैसियत से खान की भेंट के लिये जा रहे हैं। इसलिये पालकी में बैठकर जाना योग्य ही तो है। हमारे दिल में यह बात आयी; इसलिये यह पालकी लाई गई है। आप कृपया इसे स्वीकार करें।" मोरोपंत ने बड़ी नम्रता से बताया।

"पेशवा, मगर समय युद्ध का सिद्ध हुआ तो फिर पालकी का भला क्या प्रयोजन।"

"महाराज, कुछ भी हो, आज आप पालकी में बैठकर ही भेंट के लिये जायें। वे भी ज़रा देख लें हमारे नेता का बड़प्पन और आदर। ये तानाजी मालुसरे, येसाजी कंक, हिरोजी फर्जंद, जिवबा माहला, पंतोजी पंत वोकील इन सभी लोगों पर तो आपकी ज़िम्मेदारी है; इसलिये इस बार आप हमारी बातों को ज़रूर मानें।" पेशवा ने गिड़गिड़ाकर कहा।

शिवाजी राजा उलझन में पड़ गये। स्वराज्य के कार्य में साथ देनेवाले साथियों के कर्तृत्व पर उनको भरोसा तो था; परंतु उन पर वे अवलंबित भी थे। किसी भी परिस्थिति में निर्णय लेने की उनमें क्षमता क़ाफी थी। अपने सम्मुख की समस्या की विशेष बात को वे पहले विचार में लाते थे। लोगों को कुछ बताना हो तो पहले उनकी सुनना चाहिये इसे वे मानते थे। गर्दन हिलाते हुए शिवाजी राजा मुस्कराते हुए बोले, "ठीक है, ठीक है। तुम सब की आदरयुक्त आज्ञा हमें स्वीकार है।"

और शिवाजी राजा पालकी में बैठ गये।

भेंट के स्थान पर एक तरफ़ से शिवाजी महाराज आये तो दूसरी तरफ़ से अफ़ज़ल खान आया। खान का वैभव अतुलनीय था जब कि शिवाजी की ज़िद अनुपम थी। खान ताड़ की तरह ऊंचे लगते थे जब कि शिवाजी राजा की ऊँचाई खान के कन्धे तक ही थी।

सजे हुए मण्डप के दरवाज़े पर आते ही खान ने वकील से पूछा, "लोग जिसे शिवाजी, शिवाजी कहते हैं वह यही शख्स है?" कृष्णाजी पन्त के सर हिलाकर हाँ कहते ही शिवाजी महाराज ने पंताजी पन्त से पूछा, "क्या खान यही हैं?" पन्ताजी पन्त ने भी 'हाँ' कहा। खान मुस्कुराते हुए आगे बढ़े और शिवाजी राजा भी आगे बढ़े। उस समय शिवाजी राजा के मन में केवल भवानी माता का चित्र था, अपनी जिजामाता का चित्र था। अफ़ज़ल खान ने आगे बढ़कर यकायक शिवाजी महाराज को खींचा और बगल में दबाकर रख दिया और पलक उपर उठने के पहले शिवाजी महाराज के उपर कटार से आघात किया। मगर यह वार शिवाजी के ज़िरह-बख्तर से लगकर खरखर ऐसी आवाज़ आई। यह घटना दूसरों के ध्यान में आने के पहले ही शिवाजी महाराज ने परिस्थिति को भली-भांति जान लिया और तुरन्त अपने बाघनाखूनों को खान के पेट में घुसा दिया। मक्खन पर छुरी चले, बिलकुल वैसी ही बात हुई। खान की आंतें बाहर निकलने लगीं। खान की पकड़ ढीली हुई। तुरंत शिवाजी महाराज ने अपनी गर्दन को उसकी बगल से छुड़ा लिया और खान को धकेल दिया। 'धोखा, धोखा,' चिल्लाते हुए खान ने अपने बाँये हाथ से पेट को संभालते हुए शिवाजी राजा पर तलवार चलाई। शिरस्त्राण ज़रा सा टूट गया और बिल्कुल थोड़ा सा ज़ख्म हुआ। बड़ी ही चतुराई से उन्होंने खान के वार से अपने को बचा लिया और चक्कर खानेवाले खान पर उन्होंने भवानी तलवार से वार किया। उस समय सैद बंडेखान ने जल्दी की और वह उस जगह पर हाज़िर हुआ। वह शिवाजी राजा पर टूट पड़ा। परंतु येसाजी कंक ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया। खान के गिरते ही उनका नमकहलाल गोविंद पंत दिवाण आगे बढ़ा मगर उस समय तानाजी मालुसरे और जिवबा माहला ने उस पर तलवार चलाई। शिवाजी राजा को वह पसंद नहीं आया। उन्होंने चेतावनी दी, "यह नौकरी करनेवाला ब्राम्हण है। फिर ऐसा न करें।" गोविंद पंत शरण में आया। इसी बीच भोई खिदमतगारों ने खान के





अनुक्रमणिका

मुर्दे को पालकी में डालकर ले जाने की कोशिश की। परंतु येसाजी ने उनके सर ही काट दिये। महाराज को उन्होंने किले की तरफ़ भेज दिया और खुद सेना का सामना करते हुए डटे रहे।

जिजाबाई भवानी माता की ओर आँखें लगाये बैठी थीं। दासी ने आकर शिवाजी राजा की जीत की खबर उन्हें सुना दी। वह अपने आप को भूल-सी गयी। शिवाजी को गले लगाते हुए कहने लगीं, "तुम आये।" शिवाजी राजा भी बच्चे की तरह माता की गोद में कुछ समय के लिये बेहोश से हो गये। उनकी आँखें भी भर आईं।

"शिवबा, भेंट हुई खान से? सच, आज का दिन हमारे लिये स्वर्ण-दिन ही तो है।" शिवाजी को थपथपाते हुए जिजाबाई ने कहा। क्षणभर वह मावळों को भी भूल गई। फिर सर पर लगे जखम को देखकर माँ ने पूछा, "बेटे, यह क्या हुआ?"

"माताजी, यह यादगार है अफ़ज़ल-खान के वध की।" हँसते हुए राजा ने जवाब दिया।

"ठीक है। मगर पहले कोई वैद्य को बुला लाये। जखम बढ़ गया तो क्या होगा।" जिजाबाई के यह कहते ही मोरोपंत पेशवा ने जल्दी से उसका इन्तज़ाम किया।

इस पर शिवाजी राजा बोले, "यह कौन सी बड़ी बात है? डर भला क्यों? युद्ध में जखम अघटित है। इस मेरे जखम के कारण अपनी ज़िम्मेदारी कोई भूल न पाये।"

शिवाजी की ज़िम्मेदारी की बात ऊँची। तोपों की आवाज होते ही खान के सैनिकों ने समझा कि खान-शिवाजी की भेंट होने के उपलक्ष्य में यह तोप की आवाज़ है। यह आवाज़ सुनते ही मावळे सरदार खान की सेना पर टूट पड़े। अपनी विजय निश्चित है यह मानकर बेसुध बनी खान की सेना को धक्का-सा लगा। मावळों ने खान की सेना तथा तोपों को नष्ट कर दिया। खान की हार की बात सुनते ही उसकी सेना ने भागना शुरू किया मगर खंडोजी खोपड़ा ने खान के कबीले को अपने घर पर बड़ी सुरक्षितता से पहुँचाया। मगर उसके हाथ आते ही खंडोजी को मार डाला गया। वह मावळा ही था मगर खान से मिला हुआ था। शिवाजी राजा को चौदह हजार घोड़े, पौना सौ हाथी, दो-तीन हजार ऊँट, बैल, तीन लाख के गहने, सात लाख की रोकड़ रकम प्राप्त हुई। कृष्णाजी पंत को कैद किया गया। बड़े-बड़े पुराने वृक्षों को गिराकर रास्ते रोक दिये गये थे; इसीलिये यह जीत संभव हो सकी।

जिवबा तथा वैद्य शिवाजी राजा का जखम बाँध रहे थे। तब येसाजी कंक और तानाजी मालुसरे वहाँ हाज़िर हुए। वे दोनों खान का सर रुमाल में बांध लाये थे। वह भयंकर सर देखकर जिजाबाई ने आश्चर्य से पूछा, "क्या खान ऐसा था?"

शिवाजी राजा ने विनोद में कहा, "तो क्या फूल की तरह था?"

"शिवा...तुझे तो सब मामूली लगता है। भवानी माता का आशीर्वाद था इसी-लिये सब कुछ निभ सका," जिजाबाई ने रुँआई आवाज में कहा।

कृष्णाजी पंत, गोविंद पंत और अन्य सरदार जो कैद किये गये थे; उन्हें शिवाजी राजा ने कपड़े-धन आदि देकर वापिस भेज दिया। मोरोपंत पेशवा को वैरियों का भी सत्कार करने की पद्धति पसंद नहीं आई। राजा से उन्होंने इसके बारे में कहा भी। शिवाजी राजा ने जवाब दिया, "वे भी हमारे ही आदमी हैं। अभी तो वे रास्ता भूल गये हैं। कभी न कभी उन्हें पछतावा ज़रूर होगा। बदला लेने की भी एक पद्धति होती है।" पेशवा तिसपर चुप हो गये।

पेशवाओं से लेकर माळवों तक सभी लोगों को शिवाजी राजा ने कपड़े-धन दे दिया। उनके वेतन बढ़ाए, ज़ेवरात दे दिये। जिजाबाई का कहना कि तुम थे इसलिये शिवाजी राजा खैरियत से लौटे हैं। इस को मानों सिद्ध करने की कोशिश शिवाजी ने की। जिन माळवों को जखम हुए थे उन्हें दवा आदि देने का इन्तज़ाम करवाया। लड़ाई में काम आये हुए लोगों के घरवालों को नौकरी पर रखना, उन्हें आर्थिक मदद देना आदि का इन्तज़ाम किया। पंताजी पंत गोपिनाथ बोकील नामक वकील ने खान को भेंट के लिये लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया, इसलिये उसे उसका गाँव मौजे हिवर ईट इनाम में दे दिया और तिसपर एक लाख रुपये रोकड़ दिये। इस अवसर पर अज्ञान दास ने स्वाभाविक आदर भावना से प्रेरित होकर कुछ गीत कह दिये और इसीसे खुश होकर शिवाजी राजा ने उसे एक सेर सोने के गहने दिये और साथ-साथ एक घोड़ा भी भेंट दिया।

जिजाबाई से खान की वह खोपड़ी देखी नहीं गई। येसाजी को उसने वहाँ से ले जाने के लिये कह दिया। रुमाल में येसाजी फिर से बाँध ही रहा था कि शिवाजी ने पूछा, "कहाँ ले जाओगे?"

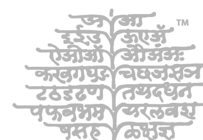
"कहाँ ले जाऊँगा? शत्रु की खोपड़ी के लिए एक ही जगह है कुत्तों के मुँह में।" येसाजी ने जवाब दिया।

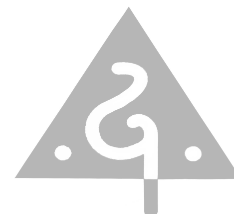
शिवाजी राजा को येसाजी का यह जवाब नहीं जँचा। उन्होंने सोचा, यह खोपड़ी कुत्तों को खाने के लिए डाली जाये बड़ी अजीब ही नहीं बल्कि भयंकर बात है यह। अफ़ज़ल खान को उसके घमंडीपन का फल तो मिला ही है; मगर उसकी वीरता, प्रशंसा करने योग्य ज़रूर है। कुत्तों-भालुओं





अनुक्रमणिका





के मुँह में खोपड़ी डालना ठीक नहीं। हमारे पूर्वज, शत्रु के हाथ में शस्त्र न रहने पर उसे शस्त्र देकर फिर धर्म की लड़ाई-लड़ते थे। धर्म के बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता और स्वराज्य धर्म के बिना हो तो उसकी कुछ क़ीमत नहीं रहेगी। धर्म कौन सा हो सकता है—जो कुछ हम बर्ताव करते हैं, वही तो धर्म है। दोनों की रक्षा के लिए हमने खान के पेट को फाड़ डाला; मगर मृत्यु के बाद वैरी का अपमान करना ठीक नहीं लगता, वह रीति-रिवाज के मुताबिक नहीं...वह योग्य नहीं,...योग्य नहीं......

"येसाजी!" शिवाजी ने बुलाया।

"जी महाराज!" येसाजी ने नम्रता से सर झुका लिया।

"तुम्हारी चिढ़ को हम अच्छी तरह जानते हैं येसाजी! मगर तुम्हीं सोचो कि धर्म-युद्ध का अंत क्या इसी तरह हो? वैरी की खोपड़ी कुत्तों-भालुओं के मुँह में डालने के बदले दूसरा कोई रास्ता नहीं ढूँढ़ सकते हो क्या?" शिवाजी राजा ने पूछा।

येसाजी भला क्या बोलेगा। उसने मोरोपंत पेशवा की तरफ़ देखा। पेशवा दो कदम आगे बढ़कर बोले, "महाराज, आपका मतलब मेरे ध्यान में आया है। मैं तो अल्प-मति हूँ, तथापि कहने का साहस कर रहा हूँ। वैरियों के सेनापतियों को आपने अलंकार-धन देकर भिजवाया। यह तो हिंदवी रिवाज़ के अनुसार योग्य हुआ। मगर तांबों को जब पता चलेगा कि खान की खोपड़ी को कुत्तों के मुँह में डाल दिया है तब वे डर जाएँगे। और धर्म की बात चली इसलिये बताता हूँ—विजयनगर के राज-पुरुष की खोपड़ी तांबों के रिश्तेदारों ने गुसलखाने का पानी बाहर जाने के रास्ते पर डाल दी थी। यह आप ध्यान में रखें।"

"पेशवा, वह सारा ठीक है, परंतु मेरा मन ही तैयार नहीं। स्वराज्य तथा धर्म-रक्षण के कार्य में जो हमारे शत्रु बने उनको हमने जान से मार डाला, यहीं हमारा काम पूर्ण हुआ। मगर मानव होने पर उसकी खोपड़ी का अपमान करना हमारे लिये योग्य नहीं। खान की खोपड़ी का अपमान न करने में ही हमारा ही नहीं बल्कि समस्त मराठों का इसमें गौरव है। पेशवा, आप फिर से इस पर विचार कीजिये।"

"महाराज, आपकी बात हमारे लिये सिर-आँखों पर है।" पेशवा ने जवाब दिया।

तब शिवाजी राजा ने माता से पूछा, "माँजी, आपका क्या कहना है इस बात पर?"

जिजाबाई ने कहा, "मैंने तुम्हें जन्म दिया इसलिए मैं कोई ज्ञानी नहीं हूँ। शिवा, तुम जो कुछ करोगे वह ठीक विचार करके ही करोगे इसपर मेरी पूरी श्रद्धा है।"

जिजाबाई की बात सुनकर शिवाजी राजा विचार में लीन हो गए। प्रत्येक के चेहरे पर कौतूहल नज़र आने लगा। राजा की आँखें उस खोपड़ी की तरफ़ मुड़ीं। खान की आँखें खुली थीं पर उनमें दृष्टि का अभाव था।

—और सबकी तरफ़ देखकर शिवाजी राजा निश्चयी-स्वर में बोले, "पेशवा, खान की खोपड़ी कुत्तों के मुँह में न दीजिये। वाई की तरफ़ क़िले में 'बुर्ज़' है। वहाँ यह खोपड़ी दफ़ना दीजिये और उस स्थान को 'अफ़ज़ल बुर्ज़' के नाम से पुकारिये। और जिस जगह पर खान का मुरदा गिरा था वहाँ कब्र बांध दीजिये और दिया-बत्ती की उचित व्यवस्था कीजिये।"

शिवाजी राजा की आज्ञा दिशाओं को चीरते आगे बढ़ी; काल भी विचार करने लगा।

● ●

रूपा : अँटोनी डिसोझा

नई इसापनीति



प्रबल वनराज की आ..मक-वृत्ति का सामना करने की दृष्टि से तीन स्वतंत्र बैलों ने एकत्र होकर एक संघ की स्थापना की। मैदान में चरते समय एकत्र रहने के उनके विचार के कारण उनकी स्वतंत्र-कमज़ोरी को बल-सा प्राप्त हुआ। इस पर शेर की एक न चली। तब उसने चालाकी से उनके संघटन को तोड़ने के प्रयत्न शुरू किये। सर्व-प्रथम उसने हर एक की आम सभा में प्रकट प्रशंसा की। इस प्रशंसा से हर्षित एक वृषभ-श्रेष्ठी को उसने फिर अपने यहाँ सामुदायिक भोजन के लिए निमंत्रित किया, अन्य वृषभों की बदनामी की और उनकी क्षुद्रता विदित की। किसी के सींग किसी के कूबड़, किसी के खुरों तो चाल की विशेषता, ऐतिहासिक-महत्व तथा सांस्कृतिक-श्रेणी रसमय वाणि से सुनाते समय उस वनराज ने अन्य दो वृषभों की हीन-श्रेणी का इस संघटना से मेल कितना अनुचित है यह उस वृषभ को जता दिया। इन बातों के जहर का फैलाव होते ही वृषभ संघटना टूट गई और उनके बीच गाली-गलौज शुरू हुआ। आगे से वे तीन वृषभ मैदान में अलग-अलग स्वतंत्रता से चरने लगे तब शेर एक-एक पर टूट पड़ा और उसने अपनी भूख मिटा ली। और इस प्रकार स्वाभाविकत: पक्ष-विसर्जन करवाया।







हमारी आँखों का सोना

प्रेम कपूर

लेकिन हर आदमी अपनी औरत को सदाचारिणी देखना चाहता है; पर दूसरे की औरत उसके लिए खेल होती है ...

मन भी क्या है कि हर समय यहां-वहां हर जगह उधेड़बुन करता रहता है। जाले बुनता ही रहता है। जिस समय दूर पटरियों पर मैं इस फास्ट लोकल को दौड़ती आती देखती हूँ, मेरा कलेजा अंदर-ही-अंदर डूबने लगता है। तुम आ रहे होगे इस कल्पना के पूरा होते-होते गाड़ी की स्पीड धीमी पड़ जाती है। सामने ही रुकता है मेरा डिब्बा। वहीं उसी जगह हाथ में मोटा-सा पोथा लिए तुम खड़े रहते हो। उस दिन की याद आती है जब मुझे देर हो गई थी। गाड़ी आ चुकी थी। मैं हांफती-भागती प्लेटफार्म तक ही पहुँच पाई थी कि गाड़ी चलने को हो उठी। डिब्बा ठसाठस भरा था। गेट पर ही तुम खड़े थे। तुमने लाख चाहा था कि मुझे अंदर आने की जगह मिल जाए। बहुत सिमटे-सिकुड़े तुम। फिर भी पूरी जगह नहीं बन पाई। मैंने भी अपने साथ जबरदस्ती की। लेकिन तुम्हारे शरीर का धक्का उस समय मुझे कितना खराब लगा था। कैसी ईर्ष्या जागी थी मन में। तुम भी उन फूहड़ों में शामिल थे जो फब्तियां कसते हैं। शब्द-बाण चलाते हैं। कालेज के अधकचरे छोकरे। अंदर घुसते हुए तुमने जिस निगाह से मुझे देखा था उसकी सफाई दे सकते हो? मैंने उस निगाह की कड़ी आलोचना की थी अपनी सहेलियों से मैंने तुम्हारी निंदा की थी—मेरी जली-कटी बातें सुनकर एक सहेली ने चुटकी भरते हुए पूछा था, 'शायद तुम अनजाने में उससे प्यार तो नहीं करने लगी हो।'

आग लग गई थी मेरे शरीर में उनकी बातें सुनकर। फिर उस रात मुझे नींद नहीं आई। तुम्हारे प्रति उठी हुई घृणा अपने आप ही तिरोहित हो गई और अंधेरे में चमक ही रही थीं तुम्हारी दो आँखें। आज भी जब–जब मैं गाड़ी पर पैर रखती हूँ तो मेरी रूह कांप जाती है। तुम मरदों की आँखों में ऐसा न जाने क्या होता है? मैंने लाख चेष्टा की तुम्हारी आँखों से बचने की, लेकिन तुम पहाड़ की तरह वहाँ अड़े-खड़े थे।

रोज वहीं खड़े रहते हो। मैं नहीं जानती तुम कौन हो, क्या करते हो? पहले तुम्हारे हाथों में लिखी कापियां देखकर सोचा था किसी कालेज में होगे। मुझ जैसी कितनी छात्राओं को तुमने पढ़ाया होगा। मैंने भी घंटों शीशे में अपना मुंह निहारना शुरू कर दिया—मैं सुंदरी नहीं हूँ। फिर भी तुम्हारे मन में अनुराग का अमृत क्यों फूट पड़ा—घंटों मैंने अपने जी को समझाया है सुंदरी-सुकुमारियों की दुनियां ही दूसरे ताने-बाने की होती है। उनके नियम-विधान हम जैसों के नहीं होते। सर्व-साधारण के लिए वह सहज उपलब्ध भी नहीं होती। लेकिन

अनुक्रमणिका

तुम तो सर्व-साधारण में नहीं आते। तुम्हें देखकर मन में जो जुगुप्सा जागती है, पिंडलियों में जो कमजोरी महसूस होती है—वह किसी को भी अनुभव हो सकती है। रंभा, ऊषा और मेनका के ऊपर भी सौंदर्य की अगर कोई क्लास-कल्पना की जा सकती तो उसकी एकाई भी मेरे ही जैसा अनुभव करती।

तुम लांछना लगा सकते हो कि मेरी नजर में चोर है। पर क्या इस बात से इंकार किया जा सकता है कि आंखों के तीर चलाने में अब पुरुषों का नाम आगे नहीं। मैं अदालत में इसकी कितनी गवाहियाँ पेश करा सकती हूं, क्योंकि मैं खुद घायल हूं। मेरी गवाही अतिरंजित न मान ली जाए इसलिए तुमको तुम्हारे किए की याद दिलाऊंगी, फिर लोग लड़कियों को बदनाम करना छोड़ देंगे। गाड़ी में चलते हुए सारे रास्ते तुम हाथ में ली कापियों को उलटा करते हो। ऐसा इसलिए करते हो कि लोग समझें कि तुम पढ़ रहे हो लेकिन मुझे बताओ फुल-स्केप शीटों के पीछे से तुम इस तरह घायल करनेवाली निगाहों से क्यों देखते रहते हो।

कई बार जी में आया कि तुमसे कह दूं इस तरह किसीकी मजबूरियों से लाभ उठाने से कोई फायदा नहीं। पर मैं अवसर ढूंढ़ती ही रह जाती हूं। तुम कापियां पढ़ने में रह जाते हो। समय निकल जाता है। न जाने क्या पढ़ते रहते हो तुम! तुम सोचते होगे नारी को कितनी सुविधाएं प्राप्त हैं। पर यह कोई मुझसे पूछे कि तुम आदमियों का समाज किस तरह हम पर हावी है। मैं पी. एच. डी. कर रही हूं। ग्रुप डाकना मिक्स पर—समाज शास्त्र का विषय है। क्यों चौंक पड़े तुम। मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। कहकर मुकर जाना हमारे स्वभाव में शामिल है। इस तरह क्यों सोचते हो कि हर नारी प्रेम के लिए बनी है। सच, तुम्हारी चोरी मुझे अच्छी नहीं लगती। एकांत में किए गए प्रेम का क्या मूल्य? जिस प्रेम में सांस्कृतिक और सामाजिक महत्त्व नहीं होता पास-पड़ोस, साथी-हमजोली जिसके लिए नुक्ताचीनी नहीं करते उसमें रस नहीं आता। खुल-खेले बिना, बिना लोकचर्चा के प्रेम का संपूर्ण आनंद नहीं मिलता, डियर। यदि ऐसा न होता तो प्रेम दीवानी मीरा के गीत आज बीसवीं सदी तक सभी भूल गए होते। जायसी और पद्मावत युनिवर्सिटी में न पढ़ाए जाते।

क्षीण कटि और शहदभरी आंखोंवाली लड़की—मेरा मतलब जिस लड़की से है तुम समझ गए होगे—वैसी ही कई और कमनीय सौंदर्य की पुतलियां, जो अपने रूप का भार नहीं ढो पातीं—खुली-बिखरी पड़ती हैं—यदा-कदा इस डिब्बे में चढ़ आती हैं। उन्हें देख तुम्हारी आंखें ताक-झांक करने लगती हैं। तुम्हारी भौंरे-सी प्रकृति मुझे कितनी अच्छी लगती है—क्योंकि मैंने स्पष्ट देखा है कि उस समय तुम्हारी आंखों में वह चोरी नहीं होती, जो मेरे लिए होती। मैं अपने को इन सौंदर्य-प्रिया से ऊपर अनुभव करती हूं। उस समय मैं गर्व से फूल उठती हूं कि तुम मेरे हो।

मुझसे एक-आध साल ही सीनियर रहे होगे। कभी कालेज में हमारी-तुम्हारी भेंट क्यों नहीं हुई। लगता है कहीं बाहर पढ़ा है तुमने। काश पहले भेंट हुई होती तब शायद वह खिंचन जो आज अनुभव कर रही हूं न जागती। एक दिन तुम्हारे पास से निकल इस सीट तक आते हुए तुम्हारी उन कापियों की ओर झांककर देखा है—तब समझ में आया कि यह परीक्षा की कापियां नहीं थीं। क्लास के लड़कों की होम-वर्कवाली कापियां भी नहीं थीं। उस दिन तक तुम्हें हिंदी का प्राध्यापक ही समझती रही। पर तब पता लगा-तुम लेखक-बिरादरी से संबंधित हो। प्रेस से संबंधित हो। इसलिए इतना जुल्म करते हो, ऐसे गुम-सुम रहते हो। प्रेस की कापियां रहती हैं तुम्हारे हाथों में। कहानी और लेखों की पांडुलिपियां पढ़ते चलते हो तुम, क्या गंभीर विषय नहीं होता उसमें? मैं तो गाड़ी पर पढ़ ही नहीं पाती। लाख चेष्टा करती हूं—पर तुम लोग रहते हो झुंड-के-झुंड अपनी आंखों के जोड़े को गड़ाते हुए। कल्पना आगे-से-आगे मन में धागे लेकर उड़ने लगती है फिर सारा कुछ पढ़ा-लिखा पीछे छूट जाता है। मैं ज्ञान का अनपच स्वीकार नहीं करती। जो कुछ पढ़ा है उसे आत्मसात करने के लिए भी तो समय चाहिए।

मैं जानती हूं तुम मेरी किसी बात में बाधा नहीं दे सकते। हम दोनों के बीच की दूरी लंबी है। शीघ्र ही वह टूट जाएगी। कई बार मैंने उसके लिए अवसर दिया है। दुःख होता है तुम औपचारिक विधान को तोड़ नहीं पाए, पुरुष हो न तुम! कितनी वासना है मेरे मन में तुम्हारे विचारों को जानने की। मैं भुलावे में नहीं रहना चाहती। भुलावा देने से चेतना को ठेस लगती है। समझ, मेरा ज्ञान इसमें बाधक होता है। साफ कही हुई बातों से भ्रम नहीं होना चाहिए। यह सच है कि तुम्हारा पौरुष किसी भी युवती को संतोष देने के लिए काफी है। फिर अवरोध कहां है। तुम्हारी आंखों के सामने यह स्वेटर लिए बैठी हूं। सलाइयां तो हाथ चलाते हैं। फंसते-उतारते फंदों के बीच में अपने मन का मंथन करते-करते जब भी आंखें ऊपर उठाती हूं तुम वहां नहीं होते जहां खड़े हो। तुम अपनी आंखों में उठते हुए ज्वार के रंगीन पंखों पर तैरते हुए किसी अल्प दिगंत की यात्रा में तल्लीन रहते हो।

मुझे बताओ, तुम्हारे घर का काम-काज नौकर-चाकर ही देखते हैं? तुम अकेले हो? कितनी कठिनाई होती होगी तुम्हें। लेकिन नहीं, यह मैंने क्या सोच लिया। हो सकता है तुम्हारी घरवाली हो, बच्चे भी हों। लेकिन तुम्हारे रहने-सहने को देखकर मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि तुम अकेले हो। तुम्हारे नौकर घर-व्यवस्था चलाने में असमर्थ हैं। उस दिन बिना बटनवाली कमीज़ तुम पहने थे। विचित्र लगती थी तुम्हारी भटकती कालर। फिर एक दिन बिना सिली हुई कफ की बाहों को देखकर मुझे हँसी आ गई थी। लाख चाहा था मैंने कि तुम्हारी बाहों को सलीके से मोड़ दूं। दूसरे दिन तुम्हारी कमीज़ में पीठ की तरफ खरोंच देखी थी। बड़ी-सी फोंक। शायद जल्दी में पहन आए थे उसे। अगले दिन जब मैंने फिर तुम्हें उसी कमीज में देखा तो बरबस तुम्हें घुमाकर देखने की अपनी इच्छा को मैं मार न सकी। डिब्बे से उतरने के लिए तुम घूमो, बेकरारी से मैं इन्तजार करती रही। बड़े फोंकदार बेशऊर टांके डालकर उसे सिया गया था। अनभ्यस्त हाथों की कारीगरी थी वह। तब विश्वास पूरा हो गया। किसी पत्नी का आदमी इतना लापरवाह नहीं हो सकता। जानना चाहोगे कैसी राहत मिली थी उस समय, कितनी हँसी थी मैं! तुमसे कितनी निकटता अनुभव हुई थी।

उस दिन मैंने ईश्वर से कितना मनाया कि तुम दादर पर मत उतरो। पर शायद मेरा कोई ईश्वर नहीं है। मैंने कभी उस अनंत पर आस्था ही नहीं की, और इसीलिए वह मेरी सहायता को नहीं आया, मेरे लाख न चाहने पर भी तुम दादर पर उतर आए। तुमने वह सब देख लिया, जो तुम्हें नहीं देखना चाहिए था। मैं साल भर बाद आए हुए अपने पति और बच्चे को लेने दादर गई थी। वे लोग मेरे पहुँचने से पहले ही स्टेशन पर पहुँच चुके थे। तुम पतलून की जेबों में दोनों हाथ डाले खड़े थे। मेरा बच्चा पैरों से आ चिपटा था। माना बच्चों के लिए मेरे अन्दर मां का ममत्वभरा दिल नहीं है फिर भी ऊपर का दिखावा भी तो कुछ है। तुमने समाज द्वारा दिए गए मेरे उनको देखा था। तुम्हारे आँख की किरकिरी तीखी हो उठी थी। तुम बराबर मेरी आँखों में प्रश्न भरी-दृष्टि से घूर रहे थे। मैंने जाते-जाते घूम-घूम कर देखा था। तुम्हारी आँखों की जलन कैसी बढ़ती ही गई थी। कलेजे में खौलते हुए लोहे का रंग तुम्हारी आँखो में छलछला आया था।

फिर दूसरे दिन नहीं आए। मैं जानती हूँ तुम क्यों नहीं आए। मेरे वह जिनकी अवस्था तुम्हारे पिता के समान है, उन्हें देखकर तुम कुढ़ गये होगे। तुम्हारी सूचना के लिए कह दूं; स्वतंत्र-विचार के नाते मैंने सभी को संतुष्ट रखने का प्रयास किया है। एक कनफेशन करूंगी। मेरी आदत खराब है। बिना सहयोगी के मुझे नींद नहीं आती। उसका उपचार तुमसे नहीं चाहती थी। लाख बहाने ही सही पर हैं तो। चौंको नहीं। मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं है, जो तुम्हारी तरफ देखा करती थी। फिर भी एक गहरा असंतोष न जाने क्यों मेरे मन पर छाया रहा। तुम्हारी आँखों के सामने मैं हलका अनुभव करती थी। क्या यौन छिपाकर पुरुष से मैत्री नहीं की जा सकती?— काम-पिपासा ही क्यों केंद्र बने। मेरी ऐसी चाह थोथी लगेगी तुम्हें। क्यों? पर तुम तो क्रोधाग्नि में जल रहे थे। विक्षुब्ध इस समय जब मैं यह सब सोच रही हूं, तुम कहां होगे? कोई अपने अंक में सुलाकर हल्की-हल्की थपकियां दे रहा होगा या तुम अपने उस नौकर पर खीझ रहे होगे जिसने तुम्हारा बिस्तर ठीक से नहीं लगाया होगा। नींद पड़ने के बाद बिस्तर के काटने और न काटने का अंतर पता नहीं लगता। जब तुम दूसरे-तीसरे और चौथे दिन नहीं आए तो मैं रह-रह कर उतावली होने लगी। फिर बात केवल मेरे बस की नहीं रह गई। जी हलका करने के लिए कहीं न कहीं बात कहनी ही थी मुझे।

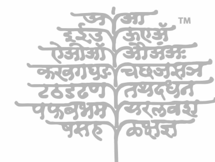
मैं जानती थी मैं परिस्थितियों से बंधी हूं। लेकिन परिस्थितियों के आगे मन का समर्पण हो जाना चाहिए। इच्छाओं का वध हो जाना चाहिए। मैं बहुत तो नहीं चाहती थी। जीवन से नवीनताएं कौन नहीं चाहता। यह संयोग की बात थी कि तुम सामने पड़ गए। मैं एक नहीं अनेक सहेलियों के यौन-जीवन से परिचित हूं। दिन में सुबह दस से रात ग्यारह बजे तक चर्चगेट से मैरीन-ड्राइव तक ऐसी अनगिनत बालाओं को तुम खरीद सकते हो, जो तुम्हारे पैसों के इशारे पर सब कुछ दे सकती हैं। पैसे से शरीर खरीदा जाता है, डियर। आत्मा नहीं। क्या सेक्स के सुपर-मार्केट की बालाएं सदाचारिणी नहीं हैं? शरीर पर अत्याचार सहकर घर वापस आ गृहस्थी पालनेवाली स्त्री सन्यासिनी नहीं है? तर्क से भावना को मत काटो। चेतन के मूल में तर्क का नहीं भावना का एकछत्र राज्य है। नैतिक-समस्याओं को गहराई से देखो। शरमाकर भागने की अपेक्षा जड़ पर ध्यान दो। क्यों मान बैठे हो कि विनाश से उत्पत्ति होती है! विनाश ही अधोगति तो नहीं। यह जानते हुए भी मैं तुम्हारे लिए उद्भ्रांत और अशांत क्यों हो उठती हूं? तुम्हारा स्थूल मुझे प्रिय है या तुम्हारे सूक्ष्म से मुझे लगाव है? मैं कहूंगी असंतोष के हाथ वर्षों-युगों से खड़ी नैतिकता की दीवार धराशाई हो रही है। अब पता लगता है कि आज तक पानी और बालू की कटती नींव पर मैं खड़ी थी। कभी मेरे साथ आओ। देखोगे यौन पिपासा और कुतूहल को मिटाने के लिए कितने रमणीय स्थलों की रचना हो चुकी है। अब वह सभी कुछ व्यापारिक धरातल पर हो रहा है, जिसे कल पाप समझा जाता था। अभाव किसे नहीं है? सभी पूर्ति चाहते हैं। अभाव अधिकांश काल्पनिक ही होता है। खूब अतिरंजित करता है। याद आता है कालेज में सहेलियां गंदी-आलोचनाओं में कैसे मजे लिया करती थीं। कोई खुलकर प्रेम कथाओं में रस लेती है, कोई चुप-चुप मन में डूबती-उतराती है।

उस दिन पति-बच्चे के साथ मुझे देखकर तुमने क्या नहीं कहा होगा। 'कलंकिनी, दुराचारिणी—।' मेरी समझ से सदाचार केवल अबोध बालकों में ही होता है। पर मुझे तो नियम तोड़ने में मजा आता है। मैंने उन्हें तोड़ा है, उनका आनंद लूटा है।

तुम्हें अपने से सज्जन और प्रतिभावान जानकर कामना की थी। लेकिन तुम उस दिन गोद में छः महीने का बच्चा लिए भागे जा रहे थे। तुम्हारे आगे-पीछे तले-ऊपर के तीन बच्चे पापा जी, पापा जी करते चले जा रहे थे। आधे घूंघट में एक फूहड़-सी औरत तुम्हारे पीछे थी। मेरे सामने पड़ते ही तुम्हारा सारा साहस काफूर हो गया। तुम तिलमिला कर भागे थे। मेरी हथेली बिल्ली के पंजे की तरह दबकर रह गई। तब मैंने सोचा किसी-किसी व्यक्ति पर समय के परिवर्तनों का, उमर का जैसे असर ही नहीं होता! व्यक्ति चट्टान की तरह अटल खड़ा रहता है। समय की लहरें उफनकर आती हैं और उससे अपना सिर धुनकर बिखर जाता है। वह ज्यों-का-त्यों रह जाता है। तुम शायद कुछ ऐसे ही थे। तभी तो मेरी आँखों ने धोखा खाया—तुम्हें कुंवारा समझा।

कुंवारे थे और किसी के साथ सात फेरे फिरे हुए, क्या फर्क पड़ता है। लेकिन हर आदमी अपनी औरत को सदाचारिणी देखना चाहता है पर दूसरे की औरत उसके लिए खेल होती है। ऐसे खेल बड़े नगरों में पैसों की चोट पर रोज खेले जाते हैं। लेकिन तुमसे मुझे क्या मिला? यह याद कर मैं खीझ उठती हूँ। मैं उस सुपर-मार्केट में ही भली थी जहां हर चीज का नियमित मूल्य तो है। जहां खुशी के बदले सब कुछ बेचने के बाद भी आँखों का सोना सुरक्षित था—मेरी आँखों का सोना, जिसे तुम लूट ले गए। मुझे ठग गए। मेरे इस असंतोष का कहीं बदला नहीं है, मित्र! तुम दुश्मन बन कर भी मेरे कितने प्रिय हो मेरे कितने अपने, अन्तर्मन के कितने निकट...जिसे लाख चाहने के बाद भी, तुम्हारी लाख खामियों के बाद भी काट नहीं पाती। ● ●

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

